श्रीहरिः

श्रीमद्भागवत-दर्शन—

भागवती-कथा

(छियालीसवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

—:०:—

लेखक
श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

—:०:—

प्रकाशक
सङ्कीर्तन-भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

संशोधित मूल्य २-०० रुपया

—:※:—

संशोधित मूल्य

तृतीय संस्करण
१००० प्रति] ज्येष्ठ—२०२३ विक्र० [मू० १-२५ पै०

प्रकाशक
संकीर्तन भवन धार्मिक न्यास (ट्रस्ट)
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)
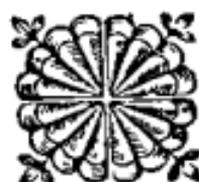
मुद्रक
भागवत प्रेस
८५२ मुट्ठीगंज (प्रयाग)

विषय-सूची

अध्याय संख्या | विषय क्रम | पृष्ठ संख्या

विरह-वेदना

(भूमिका)

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० २७, श्लो०)

छप्पय

विरह प्रेमको सार हार हिय इन्दु मधुरिमा ।
सुमनगन्ध घृत दुग्ध प्रकृतिकी सुखमय सुषमा ॥
प्रियतमको प्रिय मिलन सरसता सुख सरसावै ।
पुलक अंग हिय हरष नीर नयननिमहँ छावै ॥
किन्तु विरह सुखस्रोत तो, छिन छिन हिय उमड़त रहत ।
होहि वियोग न निमिषभर, मिलै रहत प्रियतम सतत ॥

संगीत और साहित्यमेंसे करुणरस निकाल दिया जाय तो फिर उसमें कुछ भी शेष न रह जायगा । क्योंकि रसशास्त्र कोविदों-का कहना है कि करुणही एकमात्र रस है शेष शृंगार, हास्यादि तो उसके पोषक हैं । करुण रसकी उत्पत्ति विरहसे है । हमारे समस्त सद्काव्यों का पर्यवसान विरह में ही हुआ है । प्रेमरूपी पादपका

* श्री उद्धवजी गोपिकाओं से कह रहे हैं—"हे महाभागाओं ! भगवान् नन्दनन्दन के वियोग से तुम्हें उनकी ऐकान्तिक भक्ति प्राप्त होगयी है, उसी वियोग को प्रदर्शित करके तुम सबने मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह किया है ।"

विरह-वेदना

विरहही अत्यन्त मधुर परिपक्वफल है। विरहविहीन प्रेम उस पादपके सदृश है जो हरा-भरा तो बहुत है, सुन्दर भी है सघन भी है किन्तु फलसे रहित है। विरहके परम मर्मज्ञ कबीरजी कहते हैं—

विरहा विरहा मत कहो, विरहा है सुलतान।
जिहिघट विरह न ऊपजै, जो घट जान मसान ॥

यथार्थमें वह हृदय श्मशानके तुल्य है जहाँ विरह उत्पन्न न हो। प्रेमका तो निकेतन विरह है। विरहमें ही प्रेम रहता है। विरहके बिना प्रेमकी सत्ता नहीं। विरह परोक्षमें होता है। प्रियतम अपनी आँखोंसे ओझल हो जायँ, तब वे दूसरा रूप रखकर विरह बनकर आते हैं। स्थूल शरीरके मिलनेके लिये तो नेत्र, हस्त, हृदय, मुख आदिकी आवश्यकता होती है, किन्तु विरहके मिलनको तो इनकी भी अपेक्षा नहीं। बाह्य मिलनमें तो विछोहकी भी शंका रहती है किन्तु विरहके मिलनमें तो विछोह्की सम्भावना ही नहीं। हृदयसे निरन्तर मिले रहते हैं, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते सदा प्रियतमसे सटे ही रहते हैं, सदा हृदयसे उनमेंही तन्मय रहते हैं।

शरीर से पृथक् रहने परही विरह होता है। यह भी आवश्यक नहीं। स्थूल शरीर पासमें ही हो तो भी वियोग सुखकी अनुभूति होती है। श्रीवृषभानुनंदिनीको ऐसा विरह प्रायः होता था। एक समय नित्य निकुंजमें श्रीजी श्यामसुन्दरके अंकमें विराजमान थीं। वे प्रियतमके वदनारविन्दको जोह रहीं थीं। श्यामसुन्दरकी चकोरी बनी आँखें श्रीजीके वदनारविन्दपर गड़ी हुई थीं। सहसा भावजगत में श्रीजीको ऐसा भान हुआ कि प्यारे मुझे छोड़कर चले गये। श्रीजी निद्रामें हों सो भी बात नहीं। उनके नयन खुले थे। सहसा वे चिल्लाने लगीं—"प्यारे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?"

श्यामसुन्दर बारम्बार उनके सिरको सुहलाते हैं, छिन-छिन गाढ़ालिङ्गन करते हैं, केशपाशोंको सुलझाते हैं। उनके कान कहते हैं—"प्यारीजी ! चेत करो—चेत करो। मैं कहीं गया नहीं हूँ, तुम्हारे पास ही हूँ, तुम्हारे श्री अंगसे सटा हूँ।" किन्तु श्रीजी को चेत नहीं होता, नहीं होता। वे नयनोंसे निरन्तर नीर बहाती हैं, अव्यक्त भाषामें बड़बड़ाती हैं, प्रियतमके अंकमें बारबार करवटें बदलती हैं, हाथ-पैर पीटती हैं, हाय-हाय करके चीत्कार करती हैं। उष्णउष्ण उच्छ्वास छोड़ती हैं। श्यामसुन्दर उन्हें जितनाही धीर बँधाते हैं, वे उतनीही अधीर होती हैं। इसका नाम है प्राप्त संयोगमें भी विरहानुभूति। यह बहुतही ऊँची स्थितिकी बात है। सामान्यतया विरह होता है वियोगमें। दोनों ही ओरसे विरहानुभूति होती है। वेदनाकी तीव्रता जितनीही अधिक होगी, विरहका आनन्द भी उतनाही उत्तोरत्तर बढ़ता जायगा। वियोगकी आर्ति सबको नहीं होती। किसी भाग्यशाली को ही विरह मिलता है। जैसे अपनी ऐकान्तिक निधि अपने प्रियतमको ही दी जाती है, उसी प्रकार भगवान् विरहको भी सभी प्रेमियोंको नहीं देते। अपने परम सुहृद ऐकान्तिक भक्तों कोही कृपाकर उसे प्रदान करते हैं।

श्यामसुन्दर स्थूल देहसे वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले आये। इधर मथुरामें वे भी विरह सुखका अनुभव करते, उधर गोपिकायें भी निशिवासर श्यामसुन्दरके विरह सागरमें डूबी रहतीं। उसमें निमग्न रहनेसे वे बाह्य जगतको भूल ही गयीं।

अपने पास कोई अमूल्य वस्तु हो और सम्मुख उसका योग्यपात्र आजाय तो उदार चेता महानुभावों पर रहा नहीं जाता, वे उसे दे ही डालते हैं। हम भोजन करने बैठे हैं, ज्योंही कोई अत्यन्त भूखा आ जाय यदि हम अत्यन्त स्वार्थी, क्षुद्र, उदरम्भर नहीं होंगे तो हमसे रहा ही न जावेगा, तुरन्त उसके

सामने थाल सरका देंगे। उसे भोजन देकर हमें अपने भोजन करनेसे भी अधिक तृप्तिका अनुभव होगा।

श्यामसुन्दर ६४ दिनमें ही पढ़-पढ़ाकर मथुराजी आ गये। उनके नाना उग्रसेन तो नाममात्रके राजा थे। राजकाज तो सब भगवान् वासुदेवको ही करना पड़ता। दिन भर लोगोंकी भीड़ लगी रहती। महाराज ! हम आपके दास हैं, अनुचर हैं, भक्त हैं, शरण्य हैं, किंकर हैं, सेवक हैं। हमें यह दीजिये, वह दीजिये, कृपा कीजिये, अनुग्रह कीजिये।"

श्यामसुन्दरके यहाँ कमी ही किस बातकी थी। आठों सिद्धियाँ, नवों निधियाँ हाथ जोड़े आज्ञाकी प्रतीक्षामें खड़ी रहतीं। वे सबपर कृपा करते, सबके ऊपर अनुग्रहकी वृष्टि करते, सबकी इच्छित वस्तुओंको देते। इससे सभी प्रसन्न रहते। याचक नित्य आकर स्तुति करते। स्तुति-विनय करनेवालोंके झुन्डके झुन्ड आते। सब अपनी मनमानी वस्तुओंको पाकर चले जाते।

उन सबमें एक उद्धवजी ही ऐसे थे, जो न कुछ माँगते थे न कुछ चाहते थे। वे निरन्तर श्यामसुन्दरको जोहते रहते। श्यामसुन्दर अच्छे बुरे कैसे भी काममें जायँ उद्धवजी छायाकी भाँति उनके साथ हो लेते। कुब्जाके घर बहुत लुक छिपकर गये, किन्तु उद्धवजीने वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा। उन्हें कुब्जासे कुछ लेना नहीं था। कुब्जाकी बाततो पृथक् रही कुब्जाके प्रेमी श्यामसुन्दरसे भी वे कुछ नहीं चाहते थे। कुब्जाने बैठनेको आसन दिया। उनको तो आसन-फासनकी आवश्यकता ही नहीं किन्तु छटते ही यह कैसे कहते—"मुझे तेरा आसन-फासन कुछ नहीं चाहिये।" उसके हृदयको ठेस लगती। अपने स्वामीके प्रेमियोंको ठेस पहुँचाना सेवकका धर्म नहीं। उन्हें श्रद्धा सहित कुब्जाके दिये आसनको छूआ, माथेपर चढ़ाया और उसे छोड़कर भूमिपर ही बैठ गये। अब वहाँ क्या हुआ, इसे तो श्यामसुन्दर जानें, कुब्जा

जानें, उद्धवजी जानें। यह तो अपना विषय नहीं, हम तो उद्धवजी की निस्पृहताकी बात कर रहे थे।

हाँ, तो उद्धवजीने कभी कुछ भी नहीं चाहा वे श्यामसुन्दरके सर्वदा साथ रहते। यही उनकी सेवा थी, यही पूजा, यही अर्च यही बन्दना। कोई वेतन नहीं, कोई पुरस्कार नहीं, कोई घंधा नहीं, कोई वृत्ति नहीं। श्यामसुन्दर भोजनकर चुके तो उनके पत्तल पर जो भी कुछ बच गया उसे ही पा लिया। रानियोंने दास दासियोंने और कुछ देनेको कहा, तो वे कह देते—"बस, मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है। इतनेसे ही मेरा काम चल जायगा।"

जो कुछ भी नहीं चाहता, जो कुछ भी नहीं माँगता, उसके स्वामीपर बहुत बड़ा भार पड़ जाता है। जो वैतनिक है, उसे नियत तिथिपर नियत वेतन दे दिया, उत्सव पर्वों पर पुरस्कार दे दिया, इतनेसे ही काम चल जाता है, किन्तु जो कुछ लेता ही नहीं, उसका स्वामीको प्रतिपल ध्यान रखना पड़ता है। उसने खाया कि नहीं। उस पर वस्त्र हैं कि नहीं। उसने माला पहिनी या नहीं। इसी प्रकार श्यामसुन्दरको भी उद्धवजीका निरन्तर ध्यान बना रहता। माला पहिनेको आती तो पहिले आप पहिन लेते। फिर उसे उतारकर उद्धवजीके गलेमें पहिनाते। सम्मुख लगे हुए बड़े आदर्श (शीशे) में स्वयं देखते और उन्हें दिखाते। फिर हँसते हुए कहते—"उद्धव! यह माला तुम्हारे कंठमें बड़ी सुन्दर लगती है, इसे तुम पहिने रहना भला।"

हाथ जोड़कर उद्धवजी कहते—"जो आज्ञा, महाराज।"

भगवानको चन्दन आता। रानियाँ पहिले श्यामसुन्दरको लगातीं। तब श्यामसुन्दर सैनोंसे संकेत करते—"उद्धवजीके भी लगाओ।" स्वामीके प्रसादी चन्दनको मना कैसे करते। रानियाँ श्यामसुन्दरसे भी सुन्दर तिलक उनके लगा देतीं।

कोई वस्त्र आता। १०।५ दिन श्यामसुन्दर उसे पहिनते।

फिर उद्धवसे कहते—"उद्धव! देखना, यह अंगरखा तुम्हारे ठीक आता है न? मुझे पहिनकर दिखाओ तो।"

उद्धवजी उसे पहिनते। श्यामसुन्दर स्वयं उठकर अपनी पगड़ी अपने हाथों से पहिनाते उसपर पेचकस कस देते, अपना पीताम्बर उनके गले में डाल देते। फिर हँसकर कहते—"वाह उद्धवजी! अब तो आप बड़े सुन्दर लगते हैं।" इतने में ही कोई रानी आ जाती और कहती—"उद्धवजी सजे तो बड़े सुन्दर हैं, अब इन्हें एक दुलहिन और ला दो।"

तब श्यामसुन्दर कहते—"एकसे कैसे काम चलेगा इनके लिये भी सोलह सहस्र एक सौ आठ लानी चाहिये।" यह सुनकर उद्धवजी कान बन्दकर लेते।

कोई कंठा सुन्दर बनकर आया है, हाथके कड़े आये है। गोप, तगड़ी चिपकन, मुरकी, कुन्डल कोई भी आभूषण आया है। १०। २० दिन श्यामसुन्दरने पहिन लिया। फिर बोले—"उद्धव! ये कड़े मेरे कुछ ढीलेसे हैं। देखना, तेरे ठीक बैठते है। इतना कहते-कहते बलपूर्वक उनके हाथों में पहिना दिये।"

इस प्रकार भगवान्की उपभुक्त माला, चन्दन, वस्त्र तथा अलङ्कारोंसे तथा उनके उच्छिष्ट महाप्रसादी भोजनसे ही उद्धव-जीके सब काम चलते। उनका भी रंग श्याम ही था। वस्त्राभूषण भी श्यामसुन्दरके ही पहिनते थे। उनकी चाल-ढाल, उठन-बैठन सब श्यामसुन्दरकी ही जैसी बन गयी थी, इसीलिये दूरसे कोई यह नहीं कह सकता था कि ये श्यामसुन्दर नहीं हैं। वे तदा-कार हो गये थे। श्यामसुन्दर चाहते थे ये हमसे कुछ क्षणको दूर रहें किन्तु वे सोने, बैठने, घूमने, फिरने, घरमें रहने तथा स्नान, क्रीड़ा और भोजनादिमें सदा साथ ही बने रहते। इससे उन्हें बड़ा सुख मिलता।

जो सर्वथा अपने आश्रित हैं, उसकी स्वाभाविक [illegible]

आदि इहलौकिक वस्तुओंकी ही चिन्ता नहीं रहती परलोककी भी चिन्ता रहती है। एक दिन हँसते हुए श्यामसुन्दरने कहा—"उद्धवजी! आप तो सर्वथा निश्चिन्त ही बने रहते हैं। कुछ आगे की भी चिन्ता है ?"

उद्धवजीने चौंककर पूछा—"कैसी आगे की चिंता प्रभो!"

भगवान्ने कहा—"अरे भाई! यही कि हमारी यह माया बड़ी प्रबल है इसे जीतनेका भी कोई उपाय सोचा है ?"

उद्धवजीने मेघ गम्भीर वाणीमें दृढ़ता से कहा—

त्वयोपभुक्त स्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि॥

महाराज! आपकी भोगी हुई मालाओंको पहिनकर, आपके लगाने से बचे हुए प्रसादी चंदनको मस्तकपर लगाकर, आपके धारण करके उतारे हुए वस्त्रोंको पहिनकर, आपके प्रसादी अलंकारोंको धारण करके तथा आपके भोगमे बचे हुए उच्छिष्ट सीथ प्रसादी भोजनको पाकर हम आपके दास आपकी मायाको अवश्यमेव जीत लेंगे। यह राँड़ माया हमारा बिगाड़ ही क्या सकती है ?"

यह सुनकर भगवान हँस पड़े। अब उनकी ममता उद्धवजी के प्रति अत्यधिक बढ़ गयी। इसे न संसारका भय है, न कुछ पारिश्रमिक चाहता है, न पुरस्कार, पारितोषिक तथा उपकारकी-ही इसे इच्छा है। इसे कुछ देना चाहिए। दें भी कोई ऐसी अमूल्य वस्तु जो सर्वत्र न मिलती हो, अड़े समयपर काम आवे। अभी तो मेरे दर्शनोंसे इसका क्षण-क्षणमें आह्लाद बढ़ता रहता है। जब मैं स्वधाम पधार जाऊँ, तब भी इसे सन्तोष रहे, इसके लिये मैं इसे अपनी समस्त अमूल्य वस्तु दे जाऊँ। ऐसा विचार श्याम-सुन्दरके मनमें उठा।

सोचते-सोचते उन्होंने निर्णय किया, मेरे पास एक ही वस्तु

अत्यन्त अमूल्य है। उसका नाम है 'विरह' यदि किसी प्रकार उद्धव विरहका रहस्य समझ जाय, तो इसे सब कुछ मिल जाय, किन्तु विरह अत्यंत कठिन है। शुष्क हृदयमें विरह होता नहीं। विरहके लिये सरस हृदय चाहिये। साधारण प्रेम में भी विरह नहीं होता। हृदय प्रेमसे सर्वथा परिपूर्ण हो, प्रेम उसमेंसे छल-छल करके छलकता रहता हो उसी हृदयमें विरह होगा। स्त्रियोंका हृदय स्वभावसे सरस और कोमल होता है—उसमें विरह टिकता है। विरह मेरे हृदयमें भी है, किन्तु व्रजवनिताओंका-सा विरह मुझमें कहाँ? वे व्रजवनिता ही धन्य हैं जो मेरे विरहमें आठों पहर निमग्न रहती हैं। उस विरहमें उन्हें यह दृष्य प्रपंच दिखाई ही नहीं देता। किसी प्रकार उद्धव उन भावमयी विरह वेदनामें विकल बनी व्रजाङ्गनाओंके समीप चला जाय, उनका इसे सत्संग प्राप्त हो जाय तो यह कृतार्थ बन जाय।"

यही सब सोचकर श्यामसुन्दरने उद्धवजीको बुलाया और कहा—"उद्धव! तुम तनिक व्रज तक चले जाओगे क्या?"

उद्धवजीने कहा—"महाराज। ऐसे क्यों पूछते हो, मैं तो जन्म जन्मांतरोंके लिये आपका क्रीत दास हूँ, जहाँ भेजोगे वहीं चला जाऊँगा, किन्तु मुझे दर्शनोंसे वञ्चित न किया जाय।"

भगवान्‌ने कहा—"भैया, ऐसा ही आवश्यक काम है, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा उसे कर नहीं सकता।"

उद्धवजीने पूछा—"ऐसा कौन-सा कार्य है कृपानिधान?"

भगवान्‌ने कहा—"माता-पिताके लिये सन्देश भी पठाना है और एक गुप्त सन्देश भी है।"

"गुप्त सन्देश किसके लिये है, दीनबन्धो!" उत्सुकताके सहित उद्धवजीने पूछा।

भगवान्‌का हृदय भर रहा था, नेत्र अश्रुओंसे परिपूर्ण हो रहे थे, वाणी अवरुद्ध-सी हो रही थी, वे अपने भावको छिपाना

चाहते थे, किन्तु प्रेम और रोष छिपानेसे छिपता नहीं। भगवान् के रोम-रोमसे अनुराग फूट-फूटकर निकल रहा था, कौशलसे आँसू पोंछकर भरायी वाणीमें बोले—"कुछ व्रजकी गोपिकायें हैं, उनके लिये सन्देश भिजवाना है।"

भौचक्केसे होकर उद्धवजीने पूछा—"इनसे आपका क्या सम्बन्ध ?"

श्यामसुन्दर रो पड़े। उनसे रहा नहीं गया। अत्यन्त कष्टके साथ वे रुक-रुककर बोले—"वे मेरी प्रियतमा हैं।"

उद्धवजीने कहा—"आपका शत्रु कौन है, आप तो प्राणी मात्रके सुहृद हैं।"

भगवान्ने कहा—"उद्धव ! ज्ञान मत बघारो। गोपियोंके सदृश संसारमें मेरा कोई प्रिय नहीं। वे मेरी सर्वस्व हैं, उन्हें मैं सोते जागते एक क्षणको भी नहीं भूल सकता।"

उद्धवजीने पूछा—"तो क्या वे गाँवकी गँवारिन भी आप अखिलात्मासे प्रेम करती हैं।"

भगवान्ने कहा—"उद्धव ! प्रेम करना तो गँवारिनिही जानती हैं। जिन्हें अपनी विद्याका अभिमान है, वे क्या प्रेम करेंगी। वे तो भैया पतुरिया हैं, पतुरिया। जिस हृदयमें किसीभी बातका तनिक भी अभिमान है, जिसका किसी दूसरेसे तनिक भी लगाव लपेट है वह चाहे स्त्री हो पुरुष हो प्रेमकर ही नहीं सकता। पुरुष तो प्रेम जानता ही नहीं, प्रेम तो स्त्रियाँ ही करती हैं, वे भी निराभिमानिनी। सभी प्रकारके अधिकारसे रहित सर्वस्वत्यागिनी मेरी व्रजकी गोपिकायें ऐसी ही हैं। उनका चित्त अन्य किसी विषयका चिन्तन करता ही नहीं। सदा मुझमें ही उनका चित्त लगा रहता है। उन्होंने जितने लौकिक सम्बन्ध हैं उन सबको त्याग दिया है। एकमात्र मेराही उन्हें अवलम्ब है।"

उद्धवजीने कहा—"जब महाराज ! वे सब कुछ छोड़कर

आपका ही चिन्तन करती रहती हैं, तो उनका भरणपोषण कैसे होता होगा ? इन्द्रियाँ तो मनके द्वारा काम किया करती हैं। मन दूसरी ओर लगा रहे तो इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं, उनके संसार यात्राके काम कैसे चलते होंगे ?"

भगवान्ने कहा—"उनके भरण पोषणका समस्त भार तो मेरे ऊपर आपड़ा है। उनकी इन्द्रियोंमें बैठकर मैं सब काम करता हूँ। जैसे पति धनोपार्जनमें लगा रहता है तो उसके भोजन आदि की समस्त चिन्ता पत्नी करती है, पतिको उधर ध्यान ही नहीं देना होता।"

उद्धवजीने कहा—"महाराज ! धृष्टता क्षमा हो आपका उनका सम्बन्ध क्या है ?"

भगवान्ने कहा—"उद्धव ! क्या बताऊँ। प्रेममें दो सम्बन्ध होते ही नहीं। वे मुझे अपना सर्वस्व समझती हैं। मैं उनका परम प्रियतम हूँ, वे मेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकतीं। वे मेरे विरह-व्यथामें विह्वल होकर बिलबिला रही हैं।

उद्धवजीने कहा—"ब्रज यहाँसे दूरही कितना है, यहाँ आ क्यों नहीं जातीं ? आपका जब उनसे इतना प्रेम है तो उन्हें अपने समीप बुला क्यों नहीं लेते ?"

भगवान्ने कहा—"अब यह बात भैया ! तुम उन्हींसे कहना। मेरा ऐसा विचार है कि वहाँ उनके पास एक ऐसी वस्तु है कि यहाँ की अपेक्षा वे वहाँ मेरा संगम सुख अधिक अनुभव करती हैं।"

उद्धवजीके लिये यह एक नयी बात थी। वे अब तक संयोग सुखकोही जानते थे, वियोगके परम सुखसे वे वञ्चित थे, श्यामसुन्दर इसी सुखका अनुभव करना चाहते थे। महाभागा गोपिकाओंसे विरह पाठ उद्धवजीको पढ़वाना चाहते थे।

श्यामसुन्दर जिनसे इतना स्नेह करते हैं और तीन कोसपर

रहती हुई भी वे श्यामसुन्दरके समीप कभी नहीं आतीं, वहीं बैठे-बैठे संयोग सुखका वे यहाँसे भी अधिक अनुभव करती हैं; यह उद्धवजीके लिये नयी बात थी। अत्यंत उत्सुकताके साथ वे पाग दुपट्टा पहिनकर रथपर चढ़कर ब्रज आये। ब्रजमें ब्रजाङ्गनाओंसे जो-जो बातें हुई उन्हें तो पाठक अगले प्रकरणोंमें पढ़ेंगेही उनका पुष्ट पेषण यहाँ नहीं करना है। किन्तु ब्रजमें जाकर उद्धव हक्के-बक्के रह गये।

विरह-व्यथामें व्यथित उन बावरीब्रजाङ्गनाओंकी ,उन्होंने जो दशा देखी उसे देखकर उनका समस्त ज्ञान चूर-चूर हो गया। गये थे एक दिनके लिये, किन्तु रह गये पूरे छै महीने। श्यामसुन्दरकी लौटनेकी आज्ञा न होती तो संभव है, वे कभी लौटते भी नहीं।

गोपिकायें जब श्यामसुन्दरकी बातें चलातीं तब उद्धवको ऐसा प्रतीत होता मानों श्यामसुन्दर कछनी काछे, मोर पिच्छ-बाँधे, बाँसुरी लिये गोपिकाओंके सम्मुख नाच रहे हैं।

कोई कहती—"उद्धव ! क्या कहें हम कृष्णकी कहानी। वे बड़े ढोठ थे। ऊधो ! उनकी वह ढिठाई कितनी प्यारी थी। उन्हें माखन बड़ा प्रिय था। नित्यही मैं माखन निकालकर पात्रमें अपने पास रख लेती (उद्धवजी देखते सचमुच गोपीने पात्रमें रखा तुरन्तका बनाया माखन निकाल लिया है और उसे हाथपर रख लिया है और नेत्र बन्दकरके कहती जाती है।) उद्धव ! मैं सोचती—"श्यामसुन्दर आ जायँ तो मैं उन्हें माखन खिलाऊँ। किन्तु वे तो नटखट ठहरे। दूसरोंको चिढ़ानेमें, खिजानेमें, सिसकानेमें इन्हें बड़ा आनन्द आता है। मैं बैठी रही हाथपर माखन रखे। मैंने कहा—अच्छा छलिया धूर्त। देखती हूँ तुम कब तक नहीं आते। इतनेमें ही छम्म-छम्म करते हुए श्यामसुन्दर आ गये। मैं उनके मुखमें देने लगी, वे खाने लगे।"

उद्धवजीने सचमुच छम्म-छम्मकी ध्वनि सुनी और ऐसा लगा कोई माखन खा रहा है। माखन देते-देते गोपी मूर्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरी कहती—"उद्धव! वे दानलीलाकी बातें इतनी मीठी हैं कि तुम्हें हम युग-युग सुनाती रहें तो भी पूरी नहीं होनेकी। उन्हें न जाने क्यों हमे छेड़नेमें बड़ा आनन्द आता था और हमें भी न जाने क्यों उनकी छेड़छाड़ शहदसे भी मीठी और नवनीतसे भी मृदुल लगती थीं। धर्मकी बात यह है कि हम दधि बेचने नहीं जाती थीं श्यामसुन्दरकी छेड़छाड़के लियेही जातीं थीं। एक दिन हम कई साथ जा रही थीं, पीछेसे आकर किसीने मेरी ओढ़नी खींची। मैं तो सावधान थी ही। अब मैं सिरपर रखे दहीको तो भूल गयी, तुरन्त बिना पीछे देखे मैंने उनका पटुका पकड़ा मेरी दहीकी मटुकी फटसे फूट गयी।"

उद्धवजीने मटकी फूटनेका शब्द भी सुना और गोपी मानों पटुका पकड़े पड़ी है। इसी दशामें उसे मूर्छितावस्थामें निहारा।

कोई कहती—"उद्धव! इसी कुंडपर मुझे सबसे पहिले श्यामसुन्दर मिले थे।" यह कहते-कहते वह तन्मय हो गयी।

कोई कहती—"ऊधो! इसी कदम्बके वृक्षोंसे पत्ते तोड़कर वे दही खाते थे। कदम्ब भी उन्हें पत्ते न देकर बने बनाये दोंने देते थे।" उद्धवजीने ऊपर दृष्टि डाली तो कदम्बके समस्त पत्ते दोनेके आकारके हैं, नीचे दृष्टि डाली तो गोपीको मूर्छित पड़े देखा।

कोई कहती—"उद्धव! कुछ कहनेकी बात नहीं है यह वही निभृतनिकुंज है, यह वही फूली-फूली मालती है।"......इसके आगे गोपी कुछ न कह सकी उसका हृदयभर आया और मालती की लताके ही ऊपर मूर्छित होकर गिर गयी।

इस प्रकार छै महीने रहकर उद्धवजीने देखा कि गोपिकाओं

को सब स्थलोंपर सर्वत्र कृष्णही कृष्ण दिखाई देते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष तो नहीं देखा, किन्तु अनुभव किया कि कृष्ण भी यहाँ डार डार और पात-पातपर विहार कर रहे हैं। जंगलोंमें उन्हें वंशीकी ध्वनि सुनायी देती। मोर-मुकुट दीख जाता और कभी-कभी साँवली सलौनी झलक भी दिखायी दे जाती। उन्हें इस वियोग वेदनाके सम्मुख संयोगसुख तुच्छ दिखाई देने लगा। गोपिकाओं-से उन्होंने विरहकी शिक्षा प्राप्त करली और हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे—

"विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहःकृतः

हे भाग्यवतियों! विरह दान देकर आपने मुझ मूर्खपर बड़ी भारी कृपा की।"

इस प्रकार विरह पाठ पढ़कर उद्धवजी व्रज से आये। उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकटकी और गोपिकाओंके प्रेमका विस्तारके साथ वर्णन किया।

व्रजमें जाकर उद्धवजीका भ्रम भग गया। अब गोपिकाओंकी दशा देखकर वे बार-बार सोचते—ऐसा विरह मुझे भी कभी प्राप्त होगा। फिर सोचते—"भगवान्ने मुझे पुरुष बनाया है ऐसा विरह बिना गोपी बने हो नहीं सकता। गोपी मैं बन नहीं सकता, किन्तु इन गोपियोंकी चरण-धूलि मेरे ऊपर पड़ती रहे, तो मैं कृतार्थ हो जाऊं। इन महाभागा व्रजाङ्गनाओंकी चरण-रज तभी प्राप्त होगी, जब व्रजबास मिले। इसलिये उद्धवजीने बड़े करुण स्वरसे कहा—

मइ मिलै व्रजवास बनूँ चाहे तृन पाथर।
व्रज बनितनि पदधूरि परै उड़ि-उड़ि ममऊपर॥
जिनि चरननि अजशंभु योगिजन नितप्रति ध्यावें।
तिनिकूँ ये हिय धारि नारि तनु ताप मिटावें॥

जिनिको जग महँ भर्‌यो यश, तिनिकी का इस्तुति करूँ।
केवल उनिकी चरन-रज, महँ पुनि-पुनि निज सिर धरूँ॥

श्री भगवान् तो भक्त वाञ्छा-कल्पतरु हैं। उद्धवजीने चाहा था मुझे व्रजवास मिले चाहे लता, गुल्म अथवा ओषधि ही बन कर रहूँ। जिससे इधर-उधरसे निकलते समय गोपियोंकी चरण-रज मेरे ऊपर पड़ा करे। इसलिये भगवान्‌ने उद्धवजीको बदरिकाश्रममें जानेकी आज्ञा दी। क्योंकि उद्धवजी उपासक भी हैं और रसिक भी। उपासना भूमि तो बदरिकाश्रम है और रस-भूमि श्रीवृन्दावन है। अतः उद्धवजी एक रूपसे तो बदरिकाश्रममें विराजकर भगवान् बदरीनारायणकी निरन्तर उपासना करते हैं। वहाँ भगवान्‌ने उन्हें अपना उत्सव स्वरूप दे दिया है। इसीलिये बदरीनारायणके समीप ही उद्धवजीकी मूर्ति विराजमान है। उसे उद्धव मूर्ति कहो, उत्सव मूर्ति कहो एक ही बात है। जब कोई उत्सव समारोह होता है, तो भगवानके प्रतिनिधि होकर उद्धवजी जाते हैं। श्रीमन्नारायण तो अचल हैं उत्सवादि कार्योंमें उद्धवजी ही बाहर निकलकर उनका प्रतिनिधित्व करते हैं।

उद्धवजी रसिक भी हैं, रस शास्त्रका अध्ययन उन्होंने गोपिकाओंसे किया था, उन्हें वे अपना गुरु मानते हैं, व्रजमें लता बनकर व्रजाङ्गनाओंकी चरण-रजकी कामनाकी थी, इससे गोवर्धन और राधाकुण्डके बीचमें कुसुमसरोवर पर जिसे रस वृन्दावन और गोपीस्थल भी कहते हैं वहाँ अद्यावधि लता बनकर रहते हैं। वह स्थान अत्यन्त रमणीक है। पुराणोंमें ऐसा लिखा है कि उस स्थानपर महामहोत्सवके सहित जो श्रीमद्-भागवतका सप्ताह करते हैं उनके सम्मुख उद्धवजी प्रकट हो जाते हैं। इसी आशासे हमने दो बार वहाँ भागवत सप्ताह किया। एक तो पहिले किया था, एक अभी इसी यात्रामें किया।

आनन्द तो बड़ा आया, किन्तु उद्धवजीके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए, किन्तु विरहका अनुभव उसी स्थलपर होता है। ऐसा लगता है मानों किसी कुंजसे अभी प्रियाप्रियतमा गलबाँही डाले निकलने ही वाले हैं। बड़ी-बड़ी सघन कुंजें हैं, उनपर चारों ओर से लतायें चढ़ी हुई है, वे सब लतायें कुसुमोंसे लदी हुई हैं। कुंजोंमें घुसकर चुपचाप बैठ जाओ। "श्रीराधे श्रीराधे" रटते रहो, रोते रहो, रोते रहो। रोना ही यहाँका भजन है। यही यहाँका वरदान है। हृदयमें किसी प्रकार विरह जाग जाय तब श्यामसुन्दरका नित्य संयोग-विरह-प्राप्त हो जाये।

देहलीका एक आदमी था। उसकी स्त्रीका नाम था किशोरी। किशोरी बड़ी ही सुन्दरी थी। वह पुरुष उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। प्रेम तो वस्तु एक ही है। उसका आलंभन कोई हो जहाँ वह लौकिक मर्यादासे ऊँचा उठकर अलौकिक हो जाता है, शरीरके मोहको छोड़कर आत्मामें अवस्थित हो जाता है वहाँ दिव्य बन जाता है। संयोगकी बात कि उस पुरुषकी स्त्रीकी सहसा मृत्यु हो गयी। उस पुरुष पर स्त्रीका वियोग सहा नहीं गया। उसे संसारसे तीव्र वैराग्य हो गया। विरहने उसके हृदयको व्यथित बना दिया। वह यमुना किनारे-किनारे किशोरी किशोरी चिल्लाता हुआ चल दिया। उसके मुखमें एक ही शब्द था किशोरी। उसके हृदयमें एकही रूप था किशोरीका मनोहर मुख। उसके नयनोंसे निरंतर नीर बहता रहता और लोकलाज छोड़कर 'किशोरी किशोरी' चिल्लाता रहता। पैर अपने आप जिधर चल पड़ते उधर ही चला चलता।

संयोगकी बात, यमुना किनारे-किनारे चलते-चलते वह श्रीवृन्दावनमें आ गया। जहाँ भी निभृत निकुंज देखता, रोता रहता और 'किशोरी किशोरी' चिल्लाता रहता। एक दिन नित्य रासमें श्री प्रियाजीके कानोंमें भी भनक पड़ी। उन्होंने ललिता-

जीसे पूछा—"ललिते ! यह कौन दुखी व्यक्ति है, जो मेरे नामको इतनी तन्मयतासे रट रहा है ?"

ललिताजीने कहा—"किशोरीजी ! यह आपके नामको थोड़े ही रट रहा है, इसकी बहूका नाम किशोरी है, उसीके वियोगमें यह रो रहा है।"

श्रीवृषभानुनंदिनीने कहा—"इसकी स्त्रीका किशोरी नाम कहाँसे आया। नित्य किशोरी तो मैं ही हूँ। किशोरी तो मेरा ही नाम है।"

ललिताने कहा—"उसके माता-पिताने उसका नाम किशोरी रख दिया था।"

श्रीजीने पूछा—"माता पिताने किशोरी नाम इसका क्यों रखा ? जब किसी बड़े आदमीका नाम होता है और अपने बच्चेका वही नाम रखते हैं, तो इसीलिये रखते हैं कि उनका नाम बारबार स्मरण आवे। जैसे रामचन्द्र दशरथनंदन भगवान् हुए हैं। कोई अपने लड़केका नाम रामचन्द्र रखता है, तो रखते समय उसे स्मरण हो आता है कि रामचन्द्र रूपसे अयोध्यामें भगवान् अवतीर्ण हुए थे। हम भी अपने बच्चेका नाम "रामचन्द्र", रखें तो उनके नामका इसी बहाने स्मरण तो हो जाया करेगा। इस न्यायसे रामचन्द्र नाम भगवान्का हुआ कि उसके बच्चेका ?"

ललिताजीने कहा—"यथार्थ नाम तो दाशरथी श्रीरामचन्द्रका ही हुआ। बच्चेका नाम तो उसने भगवान्के स्मरणके लोभसे रखा है।"

श्रीजीने कहा—"इस स्त्रीके माता-पिताने जब इसका नाम रखा होगा, तब किशोरी करके मेरा ही तो स्मरण किया होगा। मेरी स्मृतिमें तो लड़कीका किशोरी नाम रखा होगा। तो नाम मेरा हुआ या उस स्त्रीका ?"

ललिताजीने कहा—"हाँ ! लाड़िलीजी आपका ही अ[illegible]
हुआ ।"

श्रीजीने कहा—"अच्छा अब रूपकी बात सुन। मेरा ही रू[illegible]
सब स्त्रियोंमें व्याप्त है। मेरे ही रूपसे सब रूपवती हैं। जब त[illegible]
यह पाँच भौतिक देहसे-हाड़मांसके बने मुखसे प्रेम करता थ[illegible]
तब तक इसका मोह था। उसका भौतिक शरीर भस्म हो गया
अग्निकी दाहतासे काष्ठ अग्निके समान लाल दीखता है। अग्नि
बुझ गयी तो वह जला कोयला व्यर्थ हो जाता है। काष्ठक[illegible]
अग्नि अपनी महा अग्निमें फिर मिल गयी। इसी प्रकार उस
किशोरी नामकी स्त्रीमें जो सौंदर्य था मेरे ही सौंदर्यका एक कण
था। उसका शरीर नष्ट हो गया, वह सौंदर्य आकर मुझमें मिल
गया। जब तक उसकी पंचभूतकी बनी स्त्री थी उसके मुखमें जो
उसकी आसक्ति थी वह तो था मोह। अब जब यह मुख नहीं
रहा केवल उस सौंदर्यका चिंतन करता है तो मानों मेरा ही
चिन्तन करता है। मेरे ही सौंदर्यके लिये तड़प रहा है। इसलिये
इसे मेरे नामका, रूपका दोनोंका विरह है। अब तक इसने नाम
रूपका आलंबन मिथ्या वस्तुको मान रखा था, अब विरहके
कारण इसके सब पापताप धुल गये, हृदयकी कालिमा आँसू
बनकर नयनों द्वारा वह गयी अब इसका अन्तःकरण विशुद्ध
बन गया। इसे तन्मयता प्राप्त हो गयी। बुलाकर इसे अपने
परिकरमें मिला लो इसे भी गोपियोंमें सम्मिलित कर लो।"

श्रीजीकी आज्ञा पाकर ललिताजी उसके पास गयीं और
बोलीं—"चल तुझे श्रीकिशोरीजी बुला रही हैं।"

किशोरीजीका नाम सुनते ही उसके आनन्दकी सीमा न रही
वह तुरन्त दौड़ पड़ा। बारबार कहता—"मुझे किशोरीने बुलाया
है, सत्य कहती हो, चलो चलो किशोरीजी कहाँ हैं ?"

ललिताजी उसे किशोरीजीके समीप ले गयीं। जो उसने रूप

ने साकार सजीव स्वामिके दर्शन किये। वह मूर्छित होकर गिर गया। उसका पांच भौतिक शरीर नष्ट हो गया। दिव्य रूपसे वह प्रियाजीके परिकरमें मिल गया। वह भी प्रियाजी की किंकरी बन गयी।

कहनेका सारांश इतना ही है कि यह विरह-वेदना आरंभमें चाहें किसी भी कारणसे उत्पन्न हो जाय उसकी परि समाप्ति दिव्यमें ही है। जल कहीं भी क्यों न हो वह देर सबेर कभी न कभी समुद्रमें मिल ही जायगा।

विषयोंका उपभोग करते-करते यह जीव विषयोंमें इतना फँस गया है कि इसे विरहका अनुभव ही नहीं होता। क्षण भरको स्वजन मिलते हैं। मिलनका सुखभास होता है। पृथक हो जाते हैं, उन्हें भूल जाते हैं, उनकी मुखाकृति भी स्मरण नहीं रहती। प्रेममें भूलना बनता हो नहीं। विशेषकर विरहमें तो सदा सर्वदा अपना प्रियतम समीप रहता है। किसी गोपीने एक दूसरी सखीसे पूछा—

एक जो मेरे नयननिमें निसिबास करि रह्यो भौन।
धेनु चरावत जात सुन्यो सखि सो धौं कन्हैया कौन॥

"सखि! एक श्यामसुन्दर तो रात्रि दिन मेरे नयनों में निवास किया करता है। आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे ही समीप रहता है, क्षण भरको अनत नहीं जाता। फिर भी मैं सुनती हूँ कि श्याम सुन्दर गैया चराने गये। तो यह गैया चरानेवाला श्यामसुन्दर कोई दूसरा है क्या? क्योंकि नंदनन्दन श्याम सदा मेरी आँखोंमें ही बैठा रहता है।"

इसीसे मिलती-जुलती बात गोपियोंने भी उद्धवजीसे कही। उद्धवजी जब योग की शिक्षा देने, प्रेम पाती लेकर दौरे दौरे व्रज गये और गोपिकाओंसे बोले "वे योगेश्वर हैं, तुम ध्यान योगके

द्वारा ही उन्हे प्राप्त कर सकती हो।" तब गोपियोंने कहा—सुनिये श्याम सखा ऊधो जी !

श्याम तन श्याममन श्याम ही हमारो धन,
आठों याम ऊधो हमें, श्याम ही सों काम है।
श्याम हिये श्याम जिये श्याम बिनु नाहिं तिये,
आँधे की सी लाकरी अधार श्याम नाम है॥
श्याम गति श्याम मति श्याम ही हैं प्रानपति,
श्याम सुखदाई सो भलाई शोभाधाम है।
ऊधो तुम भये बौरे पाती लैकें आये दौरे,
योग कहाँ राखें यहाँ रोम रोम श्याम है॥

योग को रखने को हमारे यहाँ अब ठौर ही नहीं। हृदयकी कोठरी बड़ी छोटी सी ही है। उसमें एकका ही बड़ी कठिनतासे निर्वाह हो सकता है उसमें साँवरी सलौनी सूरतने आसन जमा लिया है, उसमें एक ताख भी नहीं, झरोखा भी नहीं जहाँ योगको रख सकें। अब तुम ही बताओ योग को लेकर हम क्या करें—

नाहिं न रह्यो मनमें ठौर।
नन्दनन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥
चलत चितवत दिवस जागत स्वप्न सोवत रात।
हृदय ते वह श्याम मूरत छिन न इत उत जात॥
श्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदुहास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥

ऊधो ! न जाने हमें क्या हो गया। हमें तो संसारमें श्यामके अतिरिक्त कुछ दिखायी ही नहीं देता। तुम कहते हो यह करो, वह करो, शुभ्र ज्योति का ध्यान धरो, आसन लगाओ। अग्नि शिखाके सदृश ज्योतिके दर्शन होंगे। हमें तो चराचर जगत श्यामके ही रूपका दिखायी दे रहा है—

जित देखों तित श्याम भई है। विहाग

श्याम कुञ्ज घन यमुना श्यामा, श्याम गगन घन घटा छई है ॥
सब रंगनि में श्याम भरयो है, लोग कहत यह बात नई है।
मैं बौरिनि कै लोगनि की हो, श्याम पुतरिया बदलि गई है ॥
चन्द्रसार रविसार श्याम है, मृगमद श्याम काम विजई है।
नीलकण्ठ को कण्ठ श्याम है, मनों श्यामता भेलि बई है ॥
श्रुति को अक्षर श्याम देखियत, दीपशिखा पै श्याम तई है।
नर देवनि की मोहर श्यामा, अलख ब्रह्म छवि श्याम भई है ॥

ऊधो यह तो सीधी सी बात है। आँख पर जैसा काँच चढ़ा लो वैसे ही संसार दीखता है। हमारी देखने की पुतरियाँ श्याम रँग की हैं इसलिये हमें तो श्याम ही श्याम दिखायी देता है। प्रतीत ऐसा होता है इन संसारी लोगों की आँखकी पुतरियाँ पलट गयी हैं, इसीलिये इन्हें श्याम के अतिरिक्त भी कोई दूसरा रङ्ग दिखायी देता है।

धन्य हैं वे व्रजकी विरह वेदनामयी व्रजाङ्गनाये जिन्हें श्यामके अतिरिक्त कुछ दिखलाई ही नहीं देता। श्यामसुन्दरने उद्धवको संदेश लेकर थोड़े ही भेजा था। यह तो बहाना था। यथार्थमें तो उन्हें विरह पाठ पढ़ने भेजा था, इसीलिये वे आज व्रजमें लता बनकर विरह सुखकी अनुभूति कर रहे हैं और इन अभिमानी प्राणियोंको प्रेमका पाठ पढ़ा रहे हैं। क्या कभी हमें भी उद्धवजी मिल जायँगे ? क्या कभी हमारे सिरपर भी व्रजाङ्गनाओं की चरण रेणु उड़-उड़कर पड़ेगी, क्या कभी वज्रसारसम पाषाणके सदृश हमारे शुष्क हृदयमें भी मृदुता आवेगी, कभी इसमें भी विरहकी कसक उठेगी, कभी इसमेंभी मीठी-मीठी टीस होगी ? श्यामसुन्दर तुम जानों तुम्हारे सखा उद्धव जानें अथवा तुम्हारी प्रेयसी गोपाङ्गनायें जानें। हम तो हृदयहीन मतिमलीन मंदमति मानुष हैं।

छप्पय

का कबहूँ मन मलिन-वासना तजि बदलैगो।
का कबहूँ यह कठिन हियो मेरो पिघलैगो॥
का कबहूँ करुनेश कुटिल पै कृपा करिङ्गे।
का ये झर-झर नयन विरहमहँ सतत झरिङ्गे॥
का कबहूँ बहुरंग तजि, नयन श्याम रँगमहँ रँगें।
कब झखझोरें नँदनँदन, कब हम सोवत तैं जगें॥

संकीर्तनभवन, प्रतिष्ठानपुर }
कार्तिक शु० ६।२००८ वि० }
प्रभुदत्त

व्रजकी विरहव्यथा

[१०५४]

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते
श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ।
विगाढभावेन न मे वियोग-
तीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥*
(श्रीभा० ११ स्क० १२ अ० १० श्लो०)

छप्पय

हलधर गिरिधर बिना लगे ब्रज सूनो सूनो ।
लखि मैया की व्यथा बढ़ै सबको दुख दूनो ॥
खोई खोई रहै यशोदा कछु नहिं सूझै ।
देखे आवत पथिक बात बत्सनि की बूझै ॥
बार बार मैया कहे, बुढ़िया पै किरपा करो ।
अरे दिखाओ सुतनि मुख, होवे मेरो हिय हरो ॥

---

*श्रीभगवान् उद्धवजीसे कह रहे हैं—"हे उद्धव ! जिस समय बलरामजीके साथ अक्रूरजी मुझे मथुरा ले आये, उस समय अत्यन्त प्रेमके कारण मेरेमें ही अनुरक्त हुईं वे व्रजाङ्गनायें मेरे वियोगकी विषम व्यथाके कारण संसारकी कोई भी दूसरी वस्तु उन्हें सुखदायिनी नहीं दिखाई देती थी । ऐसी गोपियोंके प्रेमके विषयमें क्या कहा जाय, क्या न कहा जाय ।'

जिन्हें हम अपना समझते हैं वे ही पराये हो जाते हैं। जिनसे हम हृदयसे प्यार करना चाहते हैं वे पहिले प्रेम दिखाते हैं, फिर निष्ठुर बन जाते हैं। जिनको हम सदा हृदयसे सटाये रखना चाहते हैं, दूर भाग जाते हैं, जिन्हें हम आँखकी पुतलियोंमें रखना चाहते हैं, वे आँखोंसे ओझल हो जाते हैं। उत्तम तो यही है कि किसीसे प्यार किया ही न जाय, किन्तु यह होता नहीं, मन मानता नहीं। कोई बलपूर्वक हृदयको पकड़ लेता है। पकड़कर वह तो चला जाता है, छोड़ जाता है अपनी मधुर-मधुर स्मृति। उस स्मृतिमें ऐसी मादकता होती है, कि वह हृदयको मथती रहती है। प्रेमका फल रोना-धोना है, विलाप-प्रलाप है, छटपटाना और बिलबिलाना है; शरीरको सुखाना और आँसू बहाना है। प्रेमियों की ऐसी दुर्दशा देखकर भी लोग उनसे शिक्षा नहीं लेते, प्रेम करना छोड़ते नहीं। यही भगवानकी माया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मथुरामें आकर श्यामसुन्दर सबको सुख देते हुए राज-काज करने लगे। अब उस व्रजकी कथा आप सुनें, जिसे सूना करके श्यामसुन्दर चले आये थे।

शौनकजीने कहा—"सूतजी! आपकी बड़ी आयु हो। महाभाग! हम यही सोच रहे थे, कि आप व्रजकी बात भूल गये क्या। हम प्रश्न करने ही वाले थे, सो आपने स्वयं ही प्रस्ताव कर दिया। हाय! जिस नन्दव्रजमें रामश्याम बारह वर्ष रहे, उसे सहसा छोड़कर चले गये। प्रेमका फन्दा डालकर निर्मोही बन गये। उन बेचारे व्रजवासियोंकी क्या दुर्दशा हुई होगी। उसका कुछ दिग्दर्शन तो कराइये।"

सूतजी बोले—"मुनियो! व्रजवासियोंकी दुर्दशाका वर्णन वाणीका विषय नहीं। वह तो अनुभवगम्य विषय है। मेरी वाणीमें इतनी शक्ति नहीं कि इस विषयमें कुछ कह सकूँ। वात्सल्य, सख्य और मधुर व्रजमें तीनही रसोंकी प्रधानता है।

शान्त और दास्यका प्रायः यहाँ अभाव है। नन्द यशोदा तथा अन्यान्य वृद्ध गोप-गोपियोंका श्रीकृष्णमें वात्सल्य प्रेम था। दाम-सुदाम तोककृष्ण तथा श्रीदामा आदि का उनसे सख्य सम्बन्ध था और युवती व्रजाङ्गनाओंका उनके साथ मधुर सम्बन्ध था। जिस प्रकार दूधमें जितनी ही मिश्री मिलाई जायगी वह उतना ही अधिक मीठा होगा। सख्यसे अधिक मधुरिमा वात्सल्यमें है और मधुर तो मधुर है ही। जो जितना ही अधिक मीठा होगा उसके वियोगमें उतना ही अधिक दुख होगा। यद्यपि सखाओंसे अधिक सम्बन्ध माता-पितासे था, फिर भी माता-पितासे अधिक दुःख सखाओंको हुआ। गोपियोंके दुखका तो कुछ कहना ही नहीं।

नंदजी लौटकर आ गये। यशोदा मैया रामश्यामके न आने-का समाचार सुनकर मूर्छित हो गईं। कुछ कालमें उनकी मूर्छा भंग हुई। उन्होंने चारों ओर चकित चकित भावसे निहारते हुए शून्यमें कहा—"मेरे कनुआ बलुआ कहाँ हैं? महर! मैं उनके बिना कैसे यहाँ रह सकती हूँ।"

नन्दजीने कहा—"रानी! तू समझती होगी, मैं जान-बूझकर उन्हें छोड़ आया। सभी यदुवंशी चाहते थे वे वहाँ रहें। उनके तो वेही जीवनदाता हैं।"

यशोदा मैया बोली—"उनके तो जीवनदाता हैं, हमारे जीवन को हरण करनेवाले हैं। वसुदेवजी तो तुम्हारा बड़ा सम्मान करते हैं। तुम उनके पैरोंमें पड़ जाते, दुपट्टे को कंठमें बाँधकर, दाँतोंमें तृण दबाकर उनसे भीख माँगते, मेरे बच्चोंको दे दो, मैं तुम्हारी गैया हूँ।" तबतो उन्हें दया आही जाती।

नन्दजीने कहा—"महर मैंने सब किया।"

मैया ने पूछा—"अच्छा, चलते समय श्यामने मेरे लिये कुछ संदेश नहीं दिया?"

नन्दजीने कहा—"हाँ, दिया क्यों नहीं। उसने ...

कहा—"मैयासे मेरा प्रणाम कहना। कह देना कुछ देवताओंका बहुत आवश्यक काम आ पड़ा है, उसे करके मैं अति शीघ्र आऊँगा। मैया दुःख न माने। कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं और मुझसे लिपटकर सुबक-सुबककर रोने लगा।"

यह सुनकर मैयाने कहा—"हाय! वह मेरे लिये रोया था। निश्चय मेरे बच्चे पर किसी ने जादू टौना कर दिया है, नहीं मेरा बच्चा इतना निठुर कभी नहीं था। वह तो अबतक मेरे आंचलमे मुख पोछता था। मुझे न देखकर वह रो पड़ता था। मेरे बिना वह मथुरामें कैसे रहता होगा? किससे मचल-मचलकर मीठा माखन माँगता होगा। किसके साथ लड़ता-झगड़ता होगा। किसके सामने धूलमें लोटता होगा। बलुआने भी कुछ कहा था क्या?"

नन्दजी बोले—"कृष्ण जब रोने लगा, तब बलदेव ने कहा—"बाबा! तुम मैयासे कह देना वे हमारे अपराधोंको क्षमा करें। हम यहाँ आकर फँस गये हैं। शीघ्रही सब झंझटोंसे दूर होकर आवेंगे।"

यशोदा मैयाको यह सुनकर कुछ कुछ सन्तोष हुआ। अब उसकी ऐसी दशा हो गई कि द्वार पर कौआ बोले तो दौड़ी जाय और कहे—कौआ देख मेरे कनुआ बलुआ आते होयँ तो तू उड़ जइयो। जैसे कौआ तू हरी डालपर बैठा काउँ काउँ कर रहा है वैसा कब मेरा हृदय हरा होगा। कब मेरे छगन मगन लौट कर आवेंगे। देख कौआ! मेरे बच्चे लौटके आजायँ तो मैं तेरी चोंच सोनेसे मढ़वा दूँगी। सोने के पींजरे में तुझे रखूँगी। मेवा मिठाई अपने हाथ से खिलाया करूँगी। सोनेके बर्तनोंमें अघौटा दूध पिलाऊँगी। कौआ उड़ जाता, माता निराश होकर मथुराकी ओर निहारती रहती।

प्रातःकाल उठकर दूध बिलौती। दही निकाल कर रख देती

सम्भव है शाम तक श्याम सुन्दर आ जाय। दहीको विलोती जाती श्यामके गीत गाती जाती और रोती जाती। जब माखन का लौंदा निकल आता तो उसकी छाती फटने लगती। हाय श्यामने यदि यह मेरे हाथका निकाला मक्खन न खाया तो फिर इस मक्खन का उपयोग ही क्या है। मक्खन को निकालकर जलमें रख देती, सम्भव है रामश्याम आजायँ। आते ही माखन माँगेंगे तो मैं क्या दूंगी।

जब गौओंको दुहाने जाती, तो गौओंको उदास रोते हुए पाती, तब मैया मूर्छित हो जाती हाय! इन गौओंको गोपाल कितना प्यार करता था। बछड़ोंके साथ कैसी खिलवाड़ किया करता था। तब ये बछड़े कैसी चंचलता करते थे। अब ये न कुदकते हैं न फुदकते हैं नेत्रों से अश्रु बहाते रहते हैं। अपनी माताओंका दूध भी नहीं पीते। ये गैयायें कितनी लट गई हैं। कितनी दुबली पतली हो गई हैं सूखकर काँटा हो गई हैं। मैयापर गैयोंकी दशा देखी न जाती वह लौटकर घर आ जाती फिर सामने ऊखलको देखती, उसे देखते ही रो पड़ती। हाय! इसी ऊखल से मैंने एक दिन श्यामको बाँध दिया था। छोटी सी बात पर। मेरी मटुकिया फोड़ दी थी। माँटीकी मटुकियाका मूल्य ही क्या? किन्तु उस दिन मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।

फिर माँ थाली लोटा कटोरा तथा अन्यान्य बर्तनोंको देखती 'सोचती—'इसमें श्याम खाता था, इसमें राम। एक दिन इस कटोरेपर दोनों में कैसी लड़ाई हो गई। श्याम कहता था इसमें मैं दूध पीऊंगा, राम कहता था मैं। तब मैंने दोनोंको गोदीमें बिठा कर अपने हाथ से दोनों को दूध पिलाया था पीतेपीते ही दोनों मेरी गोदी में सो गये।

फिर माँ घबरा जाती। घरमें जिस वस्तु को भी देखती,

उसे ही देखकर उसकी छाती फटने लगती। घर का कण कण प्रतिपल राम श्यामकी स्मृतिको नया नया बनाता रहता। मैया बाहर जाकर बैठ जाती। मथुरा की ओर से कोई पथिक आता तो उसी से पूछने लगती—"तुमने मेरे श्यामको तो मथुरामें नहीं देखा? सुनती हूँ वह अब राजा बन गया है। तुमने श्यामको देखा हो तो पता बता दो। मुझे उन दोनों के पास पहुँचा दो मैं उनकी दूध पिलानेवाली धाय हूँ।"

फिर वह ग्वालबालों को रोते देखती उन्हें गोदमें लेकर मुख चूमती और कहती बेटाओ! घबराओ मत! रोओ मत! श्याम शीघ्र ही आवेंगे। आने ही वाले हैं।" इस प्रकार बालकोंको तो मुख से रोने को मना करती, किन्तु स्वयं कहते कहते रोने लगती।

कोई पथिक मथुरा की ओर जाता तो उसे खड़ा करके कहने लगती—"देखो, पथिक तुम मथुरा जाना। कृष्ण से कह आना। तेरे बिना तेरी गौएँ भूखी हैं। और किसी के दिये तृण का वे खाती नहीं एक बार गौओं के निमित्त कृष्ण यहाँ आ जाय।"

जिस दिन मैया स्वप्न में श्याम सुन्दर को देखती उस दिन पूरे दिन रोती रहती बार बार व्रजराज से कहती—"महर! तुम एक बार फिर व्रज जाओ। एक दिन में क्या बिगड़ता है, एक दिन के लिये राम श्यामको ले आओ। मैं उन्हे आँखें भर कर देख लूँगी। अभी तक तो मैंने नेत्र भर कभी उन्हे देखा ही नहीं। अच्छा, तुम्हें वहाँ जाने में संकोच हो तो मुझे ही वहाँ ले चलो। मैं अपने बच्चोंका मुख देख आऊँगी। वे राजा हो गये हैं तो हो जाने दो। मैं उनकी हँसी न कराऊँगी। किसी से यह न कहूँगी—मैं इनकी मैया हूँ। कोई पूछेगा तो कह दूँगी। मैं उनकी गोबर थापनेवाली हूँ। इनकी दूध पिलानेवाली धाय हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता की ऐसी विकलता देखकर

गोपिकायें ढाह मारकर रोने लगतीं। गोप रोते रोते विकल हो जाते, उनकी आँखें सूज जातीं। व्रजकी लतायें रोती हुई दिखाई देतीं। जिस माता के साथ केवल कुछ समय रहते थे, उसकी तो यह दशा थी।' जिन गोपों के साथ सदा खाते थे, सदा गौएँ चराने जाते थे, एक साथ ही नहाते धोते तथा खेलते कूदते थे; उनकी क्या दशा हुई होगी। उसका कुछ दिग्दर्शन मैं आगे कराऊँगा।

छप्पय

कोई करुना करो मोइ मथुरा पहुँचाओ।
कौन गली महँ बसत श्याम बल पतो बताओ॥
नित माखन दै आउँ चूमि कें मुख फिरि आऊँ।
इनकी मैया लगूँ भूलि कें नाहिं बताऊँ॥
लुकि छिपि कें कबहूँ मिलूँ, नैन न नीर बहाउँगी।
कनुआ बलुआ हाय ! सुत, कहि कें नहिं डकराउँगी॥

विरहकी स्मृतियाँ

[१०५५]

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता
मयैव वृन्दावनगोचरेण ।
क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासाम्
हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥*

(श्री भा० ११ स्क० १२ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

यों पगलीसी फिरै मातु ब्रजमहँ इततें उत ।
ग्वालबाल अति दुखित जाइँ बनकूँ रोवत नित ॥
जहँ जहँ क्रीड़ा करीं कृष्णने अति सुखकारी ।
करि करि तिनकी यादि करें मनमहँ दुख भारी ॥
अब कब निरखें श्याममुख, विलपि विलपि पुनि पुनि कहैं ।
हरिसँग हँसिबो खेलिबो, सुमिरि सुमिरि रोवत रहैं ॥

शरीरसे मिलना स्थाई नहीं। एक शरीर दूसरे शरीरसे न जाने कब पृथक् हो जाय। यथार्थ मिलना तो मनका मिलना

---

* भगवान् कह रहे हैं—"उद्धव ! जब मैं वृन्दावनमें था, तो उन व्रजाङ्गनाओंने जिन पूरी रात्रियोंको मुझ प्रियतमके साथमें रहकर एक क्षणके समान बिताया था, वे ही रात्रियाँ मेरे बिना उनके लिये कल्पके समान बन गयीं।"

है। हमारे प्रेमीका शरीर कहीं हो, हमारा कहीं हो। यदि हम मनसे मिले हैं, निरन्तर उसका स्मरण करते रहते हैं, तो वास्तवमें यही मिलन सच्चा है। विरहमें मानसिक संयोग होता है। उस समय सोते, जागते, उठते, बैठते, खाते, पीते तथा समस्त क्रियायें करते अपना प्यारा ही दीखता है। दूसरोंसे बातें करनी अच्छी नहीं लगतीं। नाचगान रागरंग नहीं सुहाते। चित्त यही चाहता रहता है एकान्तमें पड़कर उसीकी याद करते रहें। प्रियतमकी स्मृतिमें ऐसी मीठी-मीठी वेदना होती है, जैसे पके फोड़ेको शनैःशनैः सुहलानेसे होती है। यद्यपि पके फोड़ेमें दर्द होता है, किन्तु उसका सुहलाना भला लगता है। इसी प्रकार विरहमें बड़ी विकलता होती है, किन्तु उस विकलतामें भी एक अनिवर्चनीय सुख होता है, वह यह कि अपने प्यारेकी मूरति मनमें गड़ी रहती है, वह एक क्षणको भी अपनेसे पृथक् नहीं होता। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिवाले अष्टाङ्ग योगमें तो बड़ा श्रम है किन्तु इस योगमें कुछ भी करना नहीं पड़ता। प्यारेको याद करते रहे अखंड समाधि लग जायगी इसीलिये इसे विशेष योग अर्थात् वियोग कहते हैं। वियोग जितना ही तात्कालिक होता है उतना ही अधिक दुखद होता है। पुराना होनेसे सहन शक्ति बढ़ जाती है, उसमें गंभीरता आ जाती है। जिसका हृदय जितना ही कोमल होगा विरह दुःख उसे उतना ही अधिक अधीर करेगा। स्त्रियों का हृदय अत्यंत कोमल होता है अतः उन्हें विरह भी अधिक व्यापता है। बालकोंका भी हृदय सरल और मृदुल होता है। वे भी विरहमें बहुत रोते हैं। बूढ़ोंको भी विरह वेदना होती है, किन्तु वे अपनी गंभीरतासे उसे व्यक्त नहीं होने देते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोप लोग अपनी गौओं और परिवारके समस्त लोगोंको साथ लिए हुए एक वनमे दूसरे वनमें

घूमा करते थे। वृन्दावनके समीपके वन उपवनोंमें वे
घूमते रहे। इसीलिये भगवान्ने भिन्न-भिन्न वनोंमें भिन्न-
लीलायें की थीं। कुछ काल घूमनेके अनन्तर नन्दजीने नन्दगा
वृषभानुजीने बरसानेमें अपनी राजधानी बना ली। अब
स्थायी होकर रहने लगे। अब गोप कहीं दूर गौओंको चराने
भी जाते, तो अपने बालबच्चोंको यहीं छोड़ जाते। स्त्रि
घरोंमें रहतीं। दसबीस कोसमें गौएँ चराकर गोप फिर
आजाते कुछ दिन रहकर फिर दूसरी दिशाको चले जाते।
प्रकार गोप चौरासी कोसके व्रजमंडलमें गौओंको चराते
घूमते। जबसे श्रीकृष्ण मथुरा चले गये हैं, तबसे गोपोंका कि
भी काममें मन नहीं लगता। वे सदा उदास बने रहते हैं।
की मुसकान मानों माधवके साथ मथुरा चली गई। उनके न
सदा भरे रहते हैं। व्रजमण्डलके चौरासी कोसके सभी स्थ
श्रीकृष्णके चरण चिन्होंसे चिह्नित हैं। वे जिधर भी देखते, उ
ही श्यामसुन्दर की स्मृति आ जाती। यहाँ बलदाऊके साथ श्या
सुन्दरने यह ललित लीला की थी। यहाँ अमुक खेल खेला था
बस, स्मरण आते ही उनका हृदय फटने लगता। वे सब रो
लगते। जिन स्थानोंपर परम प्रेमास्पद श्यामसुन्दरके सा
प्यारी-प्यारी क्रीड़ायें की थीं, उस स्थानको देखकर वे सब बा
याद हो जातीं। जब गोपों की विरहव्यथा अधिक बढ़ गई,
किसीने सम्मति दी "तुम लोग इतने क्यों रोते हो भैया! मथु
कोई दूर थोड़े ही है। उधर ही अपनी गैयोंको ले जाओ, श्याम
सुन्दरको देख भी आना, अपने दुखकी दो बातें भी कर आना।

गोपोंने कहा—"मथुराके कृष्णसे हमें क्या काम? जिस
कृष्णके शरीर पर काला कम्बल नहीं। हाथमें गौओंके हाँक
की लकुटी नहीं। सिर पर मोरपिच्छका मुकुट नहीं। कंठमें घुँघु
चियों की माला नहीं। हाथ में वंशी नहीं। आगे-आग

गौओंका झुंड नहीं। ऐसे कृष्णसे हमारी तृप्ति न होगी। सुवर्णके राजसिंहासन पर बैठे कृष्णसे मिलनेमें भी हमें संकोच होगा। मथुरावाले कृष्णसे हमें कोई प्रयोजन नहीं। हम तो अपने ग्वारिया कृष्णका ही स्मरण करते-करते अपने शरीरको त्याग देंगे। इस ब्रजसे हमें इसीलिये मोह हो गया है, कि इसका कण-कण हमें कृष्णकी स्मृति कराता है। यह पावन भूमि श्रीकृष्णकी पदरजसे लांछित है। कृष्ण-कृष्ण रटते हुए, उसके लीलास्थलों की यात्रा करते हुए इस जीवन का अंत कर देंगे। अपने जीवन को हम इसी आशा पर टिकाये हुए हैं, श्रीकृष्ण शीघ्रही आनेको कह गया है। देखें वह दिन कब आता है ? हमारा तो वनवासी कृष्णसे ही सम्बन्ध है। नगरवासी कृष्ण को तो हम पहिचान भी न सकेंगे। जब वह कृपा करे, तब भी वह आकर मिले। जबतक वह स्वयं नहीं आता तबतक ऐसे ही भटकते रहेंगे। उसके नामकी रट लगाते रहेंगे। उसके लीलास्थलों पर माथा रगड़ते रहेंगे। दशों दिशाओंमें घूम-घूमकर उसकी स्मृति को नूतन बनाते रहेंगे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! यही सब सोचकर ग्वाल बाल रातदिन कृष्णबलरामका स्मरण करते। रातमें उन्हें निद्रा नहीं आती प्रातः उठकर गौओंको लेकर दूर निकल जाते और कृष्णलीला स्थलोंमें जाकर सदा श्रीकृष्ण की चरचा करते रहते। वे आपसमें कहते—

देखो, भैया यह मधुवन है। एक दिन यहाँ हम रामश्यामके साथ गौओंको चरानेके लिये आये थे। उस दिन कैसी भूख लगी थी ? तब न जाने कहाँसे श्यामने कटोरा भर भरके हमें माखन मिश्रीकी छाक दी थी। कैसा मीठा था उस मदनमोहनके हाथका दिया हुआ माखन। अब जीवनमें ऐसा माखन कहाँ मिलेगा ? कौन कटोरा भरभरके छाक खिलायेगा

देखो यह तालवन है। यहाँ दुष्ट धेनुक रहता था। हमने कृष्णसे कहा—"भैया ! बड़े पके पके ताल हैं इस तालवन में। या सारे गदहड़का मारदे और हमें ताल खिला दे। बलदाऊ भैयाने उस धेनुकासुरको मार दिया और हमें तालके फल खिलाये। अब कौन इतना प्यार करेगा ? कौन हमारी छोटी-छोटी इच्छाओंको पूरा करेगा। हाय हम कृष्णसे कितना लड़ते थे, वह कभी बुरा नहीं मानता था।

देखो, यह सतोहा गाँव है, सान्तन कुंड है। यहाँ जब गौओं-को चराते चराते आये थे, तो श्रीकृष्णके साथ इसी कुंडपर बैठ-कर सबने सतुआ खाये थे। इतने मीठे सतुआ अब कहाँ मिलेंगे ? गुड़ शक्करमें वह मिठास कहाँ वह तो मदनमोहनकी दृष्टिमें मिठास था। उसके हाथोंमें मधुरिमा थी।

यह खैचरी गाँव है। बूढ़े-बूढ़े लोग बताते हैं, यहाँ कृष्णने बालकपनमें पूतना मारी थी। उसने छै कोशके पेड़ तोड़ डाले। कैसी वह राक्षसी थी। हाय ! हम उसी समय क्यों नहीं मर गये। रांड़ पूतना ने हमें अपने जहर लगी चूची क्यों नहीं पिला दी। तब मर जाते तो ये दुखके दिन तो न देखने पड़ते। अब तो हम मर भी नहीं सकते। श्यामके मिलनेकी आशा जो लगी है। यह गणेशरा गाँव है, सुनते हैं पूतनाके मरनेपर यहाँ गन्धर्वोंने गीत गाये थे। आज तो हमें सर्वत्र रुदन ही सुनाई देता है। गन्धर्व भी मर गये। अब वे भी गाने को नहीं आते।

यह बहुलावन है। बहुला गायको यहाँ सिंहने पकड़ लिया था। श्रीकृष्णने उससे छुड़ाया था, आज हमें विरह रूप सिंहने जकड़कर पकड़ लिया है, कृष्ण कैसा निष्ठुर हो गया, हमें आकर अब नहीं छुड़ाता। यह रार थाटी गाँव है इसके पास यह सकना गाँव है। बलभद्र इस कुंडके समीप बहुत बैठते थे।

तोष ग्वाल बोला—"देखो, भैया यह मेरा गाँव है। मेरे

बापका इसमें क्या है। श्रीकृष्णने मेरे नामसे इस गाँवको प्रसिद्ध कर दिया था। एक दिन मुझसे कहा—"भैया लोप ! तू नाचना बड़ा सुन्दर जानता है। ये गोपिकायें मुझे पकड़ लेती हैं और कहती हैं—"नाच दिखाओगे तब छोड़ेंगी।" सो भैया तू मुझे नाच सिखा दे। उस सर्वज्ञको मैं नाच क्या सिखाता। फिर भी मैंने उसे नाच सिखाया था। कैसे थे वे सुखके दिन। मैं उसे नाच सिखाता था, तुम सब हँसते थे। वह नाच नाचकर सबको हँसाता सबका मनोरंजन करता है। हाय ! अब हमें कौन नाच दिखावेगा। धिक्कार है ऐसे जीवनको। कृष्णके बिना संसार सूना-सूना है।

देखो, यह विहारवन है, इस कुंडमें कृष्ण कैसी-कैसी क्रीड़ायें किया करता था। हम सबको साथ लेकर तैरता जल-क्रीड़ा करता। सबके ऊपर जल उलीचता छींटें देता। हाय ! वे सब बातें शूलकी भाँति हृदयमें चुभ रही हैं। अब कृष्ण कब आकर इस कुंडमें हमारे साथ स्नान करेगा।

यह बसोंती गाँव है। यहाँ उस दिन बड़ी भूख लगी थी, सखी ने आकर छाक दी थी। वह रोटी कैसी मीठी लगी थी। अब वह स्वाद कहाँ ?

यह अड़ींग गाँव है। इसके पासही यह किलोल कुंड है, कृष्ण इसमें कैसे किलोलें किया करता था।

इसपर एक मुखरा नामक गोप बोला—"देखो, इस सामने के गाँवका नाम श्रीकृष्णने मेरे नामसे रख दिया था। यहाँ हम सब मिलकर पेड़ोंपर चढ़कर लवेरवंशी खेल खेलते थे। सामने यह राधाकुंड है, श्रीराधाजीने जब अपने नामसे कुंड बना लिया तो हम सबने कृष्णके नामसे कुंड बनाया। [illegible] लेकर गोपियोंमें कितनी हँसी हुई थी। हम [illegible]

हारना पड़ा था। कैसी-कैसी लीलायें रची थीं उन लीलाधारीने अब वे सब स्वप्नकी बातें हो गईं।

देखो, यह कुसुम सरोवर है, यहाँ मदनमोहनने-प्यारीजीका हाथोंसे शृंगार किया था। सब गोपियाँ कुसुमकली हो गई थीं। श्यामने भ्रमर बनके सबका रस पान किया था। यहीं नारदजी-को ज्ञान हुआ। वे नरसे नारी हो गये थे। कृष्णकी लीलायें अपार हैं। उनका कोई पार नहीं। अबतो केवल कथा मात्र अवशेष रह गई है। यह ग्वाल पोखरा है यहाँ हम सब ग्वालोंके साथ गोवर्धनधारीने छाक आरोगी थी। इस गोवर्धनको श्रीकृष्ण सात दिनों तक उँगली पर उठाये रहा। हाय! उसी समय हमें मर-जाने देता तो ये दुख तो न भोगने पड़ते। या तभी कृष्ण हमारे ऊपर गोवर्धन गिरा देता। देखो, यह मानसी गंगा है, श्रीकृष्णके मनसे स्मरण करते ही यह प्रकट हो गई थी। उसकी सभी बातें विचित्र थीं।

यह चन्द्र सरोवर है, पारसौली ग्राम है, सुनते हैं रासमें यहीं चन्द्रमा छै महीने तक ठहरा रहा। उसके नामका यह सरोवर है। रास वृन्दावन सखी स्थल यह गोवर्धनके निकट ही है, यहाँ कृष्णने असंख्यों क्रीड़ायें कीं और एकसे एक सरस सुन्दर और मनको हरने वाली। हाय! अब उनको स्मरण करके हृदय फटता है।

यह वत्सवन है, यहीं जब हम सब बछराओंको चरा रहे थे, तो एक असुर बछरा बनके हमारे बछराओंमें आ मिला था। सर्वज्ञ श्रीकृष्णने उसे देखते ही पहिचान लिया और तुरन्त मार दिया। यही कृष्ण हमारे वियोगरूप असुरको कब पछारेगा? कब हमें पहलेकी भाँति कसकर हृदयसे सटायेगा। देखो यह बलदाऊके नामसे चड़बारो कुंड है। यहाँ कृष्णने गोपिकाओंके हाथकी दी हुई मसेरी रावड़ी खाई। उसी दिन हम सब इसे रावड़ी कुंड

देने लगे। इन शिलाओंपर बैठकर श्यामके साथ हम सदा
जन करते थे। इन आन्यारकी शिलायें अब भी श्यामकी याद
ला रही हैं इनमें अब भी चिह्न बने हुये हैं।

देखो, यह गोविन्दकुंड है। कनुआने जब कन्नी उँगलीपर
वर्धनको उठाकर इन्द्रका मानमर्दन किया और गौवंशकी
की, तो इसी कुंडके समीप स्वर्गकी कामधेनुने गोविन्दपद
र गोकुलेन्द्रका अभिषेक किया। आज हमारा गोविन्द गौओं
ा रोती विलखती छोड़कर मथुरा चला गया। जो सात दिन
मारी और गौओंकी रक्षाके लिए गिरिराजको लिया खड़ा रहा
आज वह कितना निष्ठुर हो गया है, गौओंने तृण जल छोड़
देया है वह आता नहीं।

देखो यह पूँछरीको लौठा है। इसके आगे यह श्याम ढाक
है। यहाँ हम श्यामके साथ कितनी बार गौएँ चराने आये थे।
सखियोंने कितनी बार यहाँ हमको छाक खिलाई है, कितनी बार
दही लूट लूटकर खाया है। उसके साथ दही लूटने में कितना
आनन्द आता था। यह सुरभिकुंड है यह हरे हरे कदंमों
खंडी है। वर्षा बंद होनेपर गिरिराजको अपने स्थान पर
कर सब गोपियोंने दधि अक्षतसे कृष्णकी पूजा की थी।
उसे छातीसे चिपटाकर बारबार मुख चूमा था, आशीर्वाद
थे। मैयाने बाँह में नारायण तेलकी मालिश
पूछा—"कनुआ भैया! हाथ तो नहीं दुखने लगे"
हँसकर कहा—अरे, तुम कैसी बात करते हो,
हमने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया
है संभव है ईश्वर ही हो, ईश्वरके विना
हाय! ईश्वर होकर उसने हमारे साथ
वह जन्मका है।

देखो, सामने यह बिछुआवन

लीला रची। वह लीलाधारी था जब चाहता वैसा ही रूप बन लेता। उसने देखा कुंडमें बहुतसी सखियाँ स्नान कर रही हैं उनमें श्रीजी भी थीं श्रीजी किलोल कर रही थीं। सखियाँ उनपर जल उलीच रही थीं। श्यामको कैसा कौतुक सूझा। हमें वे कदम्बोंकी ओट में खड़ा कर गया और स्वयं बन गया गोपी हम तो पहिचान भी न सके। कड़े छड़े पहिनकर उन गोपियोंमें रलमिल गया। उन्हींके साथ हँसने खेलने लगा। कोई पहिचान ही न पाई कि यह गोपी नहीं गोप है। श्रीजीका बिछुआ जल में गिर गया। सौभाग्यवती स्त्रीका बिछुआ खोजाना बड़ा अशुभ माना जाता है? श्रीजी बड़ी घबराई। तब सखी बने श्यामने कहा—"कोई तुम्हारी बिछुआको ढूँढ़ दे तो उसे क्या दोगी।"

श्रीजीने कहा—"उसे मैं जो वह माँगेगी वही दूँगी। मुँह माँगी वस्तु दूँगी।"

उसके लिये तो कोई काम कठिन ही नहीं था। तुरन्त हमारे देखते देखते सैकड़ों बिछुआ निकाल लाया और श्रीजीके चरणों में पहिनाने लगा। स्पर्श पाते ही श्रीजी समझगई यह तो छलिया है।

श्रीजीने कहा—"बोलो क्या माँगते हो?

तब आपने दीन होकर कहा—तुम्हारी कृपा चाहता हूँ, तुम कभी मुझपर क्रुद्ध न होना सदा मुझे तुम्हारे दर्शन मिलें।"

हाय! आज हम भी उसकी कृपाके इच्छुक बने हैं। आज हम भी उसके दर्शनोंको लालायित हैं। वह निर्दयी हम सबको रोता हुआ छोड़कर चला गया।

यह टोड़ को घनो है। इस कुंडका नाम बलरामने कृष्ण-कुंड रख दिया था। यह दीर्घपुर है। एक बार नन्दबाबाकी इच्छा हुई हम उत्तराखंडके बदरीनाथ केदारनाथके दर्शन कर

आवें। यह सुनकर कृष्ण तुरन्त बोल उठा—"बाबा! तुम इतनी दूर कष्ट क्यों करोगे? कहो तो मैं उत्तराखन्ड के समस्त तीर्थों को यहीं बुला दूँ।"

बाबा तो चुप हो गये हमने कहा—"हाँ भैया बुला दें। तब उसने तुरन्त बातकी बातमें न जाने किस जादूके प्रभावसे उत्तराखन्ड के सब तीर्थ बुला दिये। देखो, ये आदिबदरी हैं, ये बूढ़े केदार हैं, यह हरिद्वार है। यह भागीरथी हैं, यह अलकनन्दा हैं यह ऋषिकेश है, यह लक्ष्मण मूला, यह गंगोत्री है, यह यमुनोत्री है।

हाय! उस समय उसे हमारे सुख दुखका कितना ध्यान रहता था, जो हम कह देते थे उसीको मान लेता था। अब वह हमारी एक भी नहीं सुनता हमें कीचमें पड़ी मछलीकी भाँति तड़फा रहा है। अब हम समझे यह तो मुख देखे की प्रीति थी। हाय हमारे बीचमें कृष्ण नहीं तो ये उत्तराखन्ड के समस्त तीर्थ सूने सूने से दिखाई देते हैं। नदियाँ सूखी और श्रीहीन दिखाई देती हैं।

देखो, यह आनन्दाद्री है, यह इन्द्रोली है। इन्द्रने यहीं से गिरिराज पर चढ़ाई की थी। अब हमारे ऊपर श्रीकृष्ण विरह ने चढ़ाई की है। यह काम वन है। इसमें कितने कुंड हैं, कितने स्थल हैं इन सभी स्थलों में श्यामकी स्मृतियाँ निहित हैं। हाय! उन दिनों कभी स्वप्न में भी इस बातकी कल्पना नहीं थी, कि हमें ये भी दिन देखने पड़ेंगे। हम सोचते थे सदा इसी प्रकार रामश्यामके साथ सुखपूर्वक क्रीड़ा करते रहेंगे। ऐसे ही छाक खा खाकर गौएँ चराते रहेंगे। श्यामको हम अपना समझते थे, किन्तु वह तो पराया निकला। हमें बिलखता छो़ड़ गया। हम उसे सहृदय समझते थे, वह तो निकला। हम उसे सदय समझते थे वह तो निर्दयी

इन शिलाओंसे हम सिर फोड़ते रहेंगे और उन बातोंको याद कर करके रोते रहेंगे। वह असंभवको संभव कर देता था। यह विमलकुंड है सब तीर्थ चतुर्मास करने व्रजमें आते थे, पुष्करराज तीर्थों के पुरोहित होनेके अभिमान से नहीं आये। तब श्रीकृष्णने सबके देखते देखते वहीं पुष्करतीर्थ को उत्पन्न कर दिया। उसमेंसे एक विमल स्त्री प्रकट हुई। वे ही ये विमला-देवी हैं।

यहाँ दक्षिणके सब तीर्थ हैं। लंका पलंका है। यह लुकछिप-कुंड है। यहाँ हम सब गोप लुकते छिपते थे आँख मिचौनी खेला करते थे। अब किसके साथ आँख-मिचौनी खेलेंगे। अब रोते रोते हमारी आँखें ही फूट जायँगी। देखो, यह मोर कुंड है, यहाँ कृष्ण मोरों के साथ कैसा नाचा करता था? मोर भी उससे कैसे हिल मिल गये थे? आज मोर भी हमें देखकर भाग जाते हैं। यह कहावत सत्य है, विपत्ति में सभी विपरीत हो जाते हैं, अपने पराये बन जाते हैं। यह शीतलादेवी है मैया यशोदा सब गोपियोंके साथ बासी पूड़ी बासी महेरीसे इसका पूजन करती थीं। हम सब ग्वालबालों को यहाँ बिठाकर बासेड़ो खिलाती थीं। कृष्णके साथ वे बासी वस्तुएँ कितनी मीठी लगती थीं। कृष्ण चला क्या गया हमारे स्वादको भी ले गया।

देखो, यह गोपालकुंड है उस दिन कैसी सरस लीला यहाँ हुई। फागुनका महीना था श्रीजी अपनी सहस्त्रों सहेलियोंके साथ यहाँ नहाने आई थीं। सबके पास दो दो वस्त्र थे नहाकर पहिननेके। सब ग्वालबाल गौएँ चरा रहे थे। श्रीजीने सब सखियोंको सैनोंके संकेतसे कुछ समझा दिया। सखियोंने आकर सबको पकड़ लिया। श्रीजीने श्याम सुन्दरको पकड़ा। सबको लँहगा पहिना दिया फरिया उढ़ा दी। अब होने लगी होरी। उस दिन कैसा रस बरसा था? भेद भाव रहा ही नहीं था।

दा ? उसे पकड़कर पानी में दबोच देती वह उसके मुख पर कीच थाल देती। हाय! कृष्ण ने जितनी ही सरसता दिखाई आज वह उतना ही नीरस बन गया। अब ये गोपियाँ लोकलाजके कारण उस से बोलतीं तक नहीं। यह तो सब उसीकी माया थी उसकी ही कहनी थी। भगवान की माया और पुरुषकी छाया साथ साथ चलती है।

देखो, यहाँ सेतुबन्ध, मर्कटोत्लवन आदि लीलायें की थीं। यह काशी विश्वनाथ हैं, यह मणिकर्णिक घाट है। श्रीकृष्णके प्रभावसे सभी तीर्थ यहाँ स्वतः आते थे। अब तो इनके नाम मात्र शेष रह गये हैं। कृष्णके साथ ये भी गुप्त रूपसे चले गये। यह सुनहरा कदमखण्डी है। श्रीकृष्णके सामने सुवर्ण रंग, की चमेली कितनी फूलती थी? श्यामसुन्दर उन फूलोंसे प्यारी-जीके अङ्गकी उपमा दिया करता था। यह सामने देहकुंड है। उस दिन श्रीकृष्णने यहाँ कैसी लीला रची। हम सबकृष्णके साथ गेंदबल्ला खेल रहे थे। श्रीजी ललिताजीके साथ इस कुंडमें स्नान कर रहीं थीं। उसकी आखें श्रीजीको देखकर खिल जातीं। उन्हें देखते ही उसके हृदयमें गुदगुदीसी होने लगती सब खेल-फेल भूल जाता। श्रीजीको देखते ही बोला—"मुझे प्यास लग रही है।" हम तो उसकी प्यासका अर्थ समझते थे। हमने कहा—"भैया! सामने यह कुंड है, इसमें जाकर जल पीओ।"

वह बोला—"अरे, इसमें तो लुगाइयाँ नहा रही हैं।"

हमसब हँस पड़े और बोले—"छी छी! पुरुष होकर लुगा-इयोंसे डरता है। लुगाइयाँ तेरे सिरपर तो चढ़ नहीं जायँगी। चला जा। वह ब्राह्मणका वेष बनाकर गया और ललिताजी-से बोला—"हमें दान दो।" ललिताजी तो समझ गईं ये छ हैं। उन्होंने अपने सब आभूषण इन्हें पहिना दिये।

श्रीजीसे बोले—"अब तुम इससे अधिक कुछ दान दे सकती हो तो बताओ।"

तब श्रीजीने हाथमें जल लेकर कहा—"मेरा मन, धन, देह सब श्रीकृष्णार्पण है। श्रीजीने यहाँ श्यामको अपनी देह अर्पण की थी। और यह वर माँगा था, 'कि एक क्षण भी मेरा तुम्हारा वियोग न हो। जिस क्षण मेरा वियोग हो, उस क्षण शरीर न रहे।"

हाय! श्रीजी इस छलियाकी सब बातें जानती होंगी। इन्हें पता होगा, एक दिन यह छल करेगा हमें छोड़कर चला जायगा।' तब कृष्णने कहा था 'मेरा एक छोटा सा रूप तुम्हारे दोनों पलकोंके सम्मुख सदा बना रहेगा। एक क्षणको भी हमारा तुम्हारा वियोग न होगा। तब हम इसका अर्थ नहीं समझे थे। अब बात समझमें आयी। श्रीजी उसी सूक्ष्म रूपको देखकर जीवित हैं। हमें तो कृष्णका न सूक्ष्मरूप दीखता है न स्थूल। हमारी आँखोंके सामने तो अँधेरा छाया हुआ है। कृष्णने हमें ठग लिया जो इतना सुख देकर हमें विपत्तिके सागरमें ढकेलकर मथुरा भाग गया।

देखो, यह प्यारीजीका गाँव बरसानो है। यहाँ श्रीकृष्णने कैसी कैसी सरस लीलायें की हैं? कभी जोगिनि बनके अलख जगाया है, कभी मनिहारिनि बनकर चूड़ी बेची है। कभी मोर बनकर प्यारीजीको रिझानेके लिये नाचे हैं और बादल बनकर बरसे हैं। यह साँकरी गली है। एक ओरसे गोपियाँ आतीं दूसरी ओरसे श्याम आते। साँकरी गली होनेसे एक दूसरेके शरीर सट जाते थे। यहाँ गोपियोंसे लूट लूटकर कितना दही माखन हम सबने खाया है?

-यह दोहनी कुंड है यहाँ वृषभानुजीकी गौएँ बँधती थीं। अब भी बँधती तो हैं, किन्तु वे बातें कहाँ? कृष्ण यहाँ प्यारीजीके

मिलनेके लिये लुक छिपकर सदा बैठा रहता था। कभी सखीका रूप रखकर प्यारीजीको गौदोहन सिखाते। सैनोंमें ही सब समझाते। कहाँ तक कहें यहाँके कणकणमें मधुर मधुर स्मृतियाँ भरी हुई हैं। देखा, यह रत्नकुंड है। इसमेंसे श्रीजीने बहुतसे रत्न निकालकर नन्दजीके यहाँ भिजवाये थे। हमारा तो एक ही काला रत्न कृष्ण था। वह हमसे खो गया। हम वनवन भटकते हुए उसी रत्नको खोज रहे हैं। ये पत्थरके रत्न हमारे किस कामके ?

यह गहवर वन है, यहाँ कृष्ण पेड़ोंपर चढ़कर कोकिलाकी भाँति कूजता था। उसके स्वरके सामने कोकिलाका स्वर भी फीका पड़ जाता था। इस गहवर वनमें हमने कितनी गोपियोंको दानके लिये पकड़ा था। कृष्णका संकेत पाते ही हम गूजरियों को पकड़ लेते। कृष्ण उनसे हँसी करता, ठठोली करता, गोरस माँगता। वे बुरा मानतीं गाली देतीं। कैसे यहाँ नोक झोंक हुआ करती थी ? अब यह स्थान सूना सूना लगता है। दान विहारी ही नहीं तो दान कौन ले, विहार कौन करे ? कोकिला बनकर कुहू कुहू कौन करे ?

यह प्रेमभरी प्रेम सरोवर है। लाड़लीके पग रखनेको लालजी यहाँ पलकोंके पांवड़े बिछाते थे। आज यह प्रेम सरोवर प्रेम नहीं बहा रही है। यह रीठोरा गाँव है। श्यामके साथ हम कितनी बार इस गाँवमें आये हैं। इसमें श्यामकी प्राणप्यारी चन्द्रावली सखी रहती है। अब कृष्णके बिना वह हमसे बात भी न पूछेगी। हम यह नहीं जानते थे। हमें जो आदर मिलता है कृष्णके ही सम्बन्धसे मिलता है। कृष्णके बिना हमें कोई दो कौड़ीमें भी न पूछेगा। यह महरानों है। यशोदा मैयाका यही गाँव है। ननसालके नाते कितनी बार हम यहाँ आये हैं। कैसी हमारी यहाँ आव भगत होती थी। कैसे माल खानेको मिलते

थे। नाना हम सबका कृष्णकी ही भाँति आदर अ करते थे।

बरसानेकी भाँति नन्दगाँवकी भी ये कदम्ब खण्डी सूनी लगती हैं। एकदिन श्रीजीको कारियल साँपने डस था। तो कृष्ण सफेरा बनके उनका विष उतारने गया था। आ हम सबको कृष्णविरह रूप कारे सर्पने डस लिया अब हमारा विष उतारने क्यों नहीं आता। देखो, उस दिन श्या गैया पौहारसे बिदुककर कैसी भागी थी। कृष्ण भी मुट्ठी बाँ उसके पीछे पीछे भागा था। भागते भागते जब हाँपने लगा, उसी कुंडके किनारे आकर उसने स्वांस ली। तभीसे हम सब इ कुंड को 'सांसको कुंड' कहने लगे। हाय! आज हम बिना उष्ण सांस ले रहे हैं। दुखी हो रहे हैं, किन्तु कृष्ण ही नहीं। यह कदम्ब टेर है। उसी कदम्ब पर चढ़कर वंशीमें श्य गौओंको टेरा करता था। इसपर चढ़कर हम उसे टेरें तो भ वह न आवेगा। मथुरामें जाकर यादवोंने उसे कोई ऐसा मन्त्र पढ़ा दिया है कि हमारी उसे याद ही न आती होगी। यह छछियारी देवी है। व्रजवासी छाछसे इसे स्नान कराते हैं, यह भी श्रीकृष्णको नित्य छाछ पिलाती थी। अब तो यह हमसे, मुखसे बोलती भी नहीं, अब पत्थरकी मूर्ति बनी बैठी है। जः हमारा कृष्ण ही हमसे रूठ गया तो और देवी देवताओंकी तो बात ही क्या? हमारा तो परम देवता श्रीकृष्ण ही है। श्रीकृष्ण को छोड़कर हमने तो और किसी देवता में ऐसी शक्ति देखी नहीं। उसके पीछे देवता भी हमें प्रणाम करते थे। बूढ़े अक्रूरने भी हमारी चरण धूलि ली थी। अब मथुरा जायँ, तो बात भी न पूछेगा। जो हमारी चरण-चरणमें बात पूछता था, वही विपरीत बन गया तो औरों की तो बात ही क्या कहें। देखो, देखो, यही निर्दयी मार्ग है। इसी मार्ग से कृष्ण रथ पर

चढ़कर मथुरा गया था। इसी कुंडपर उसने गोप-ग्वारियोंके वस्त्र उतारकर फेंके थे। हाय! अब वह ग्वारिया नहीं रहा। यहीं अक्रूर को सर्वप्रथम श्रीकृष्णके चरणचिह्नके दर्शन हुये थे। देखो, ये हाऊ बिलाऊ हैं। कृष्ण जब दूर खेलने जाता तो मैया कह देती—"देख, बेटा! दूर खेलने मत जाना। वहाँ हौआ बिलौआ बैठे हैं; वे बच्चों को उठा ले जाते हैं।" कृष्ण छोटा था, तब किसी हाऊ बिलाऊने उसे नहीं उठाया, किन्तु जब बड़ा हुआ तो अक्रूर रूपी हौआ उसे सदा के लिये उठा ले गया।

यह पनिहारी कुंड है। कृष्ण कंकर मारकर गोपियोंकी जलकी मटुकीमें फोड़ देता था, अब उसने हमारे हृदयको फोड़ दिया। यह सामने डोमिलवन है, इसमें प्रिया-प्रीतम दोनों आकर मिलते थे और प्रेमकी बातें करते थे। इसकी कुञ्ज कुञ्ज हमने खोज डाली कि कहीं लुका छिपा कृष्ण बैठा हो, किन्तु वह दिखाई देता नहीं। यह करहला है, यह कमई है, पियासो है ये सब रासके स्थान हैं, श्रीकृष्णने सखियों के साथ यहाँ शरद्की अनेक रात्रियों में रास-क्रीड़ायें की हैं।

यह खदिरवन है, यहीं शंखचूड़ [illegible] ने वध करके उसके माथेकी मणि निकालकर [illegible] दी थी और बलदाऊ-ने फगुआकी खिलाईमें यह मणि श्रीजीको दी थी। यह मणि श्रीजीपर अब भी है; किन्तु मणिका देनेवाला दिखाई नहीं देता। हाय उसी के बिना दसों दिशायें सूनी-सूनी दिखाई दे रही हैं। यह 'जाव' स्थान है इसमें [illegible] है। कृष्णने चूड़ी[illegible] बनकर श्रीजीको चूड़ी पहनाई थी, [illegible] यहीं कहीं कोई विदिश [illegible] रहा [illegible] रुदन को सुनकर हम [illegible] आता है। दूसरे [illegible] है [illegible] था। यहाँ गोपि[illegible]

था। कृष्ण को होरी ठठोली अत्यन्त प्रिय थी। क्या कभं कृष्ण फिर आवेगा, हमसे ठठोली करेगा, गोपियोंसे होलं खेलेगा ?

देखो, यहाँ कृष्णने नटका रूप रखा था। जब वह जो रूप बना लेता, तब तैसाही लगने लगता था, वह बहुरूपिया था, देखो, यह कोकिला वन है, यहाँ कोकिलाके स्वरमें स्वर मिलाकर श्याम सदा कूकता था। अब कोकिलकी कूकतो सुनाई दे रही है, किन्तु उसे चिढ़ानी हुई कृष्णके कलित ध्वनि सुनाई नहीं देती। कृष्ण तो कहीं मथुरामें किसी से बातें कर रहा होगा।

यह चरण पहाड़ी है, इसके नीचे यह चरणगंगा है। इन पहाड़ोंकी शिलाओंपर बैठकर श्याम राम गाते थे, गौएँ चराते थे, हम सबको हँसाते थे। अबतक इन पहाड़ोंके पाषाणोंपर राम श्यामके चरणचिह्न बने हुए हैं। यह विहारकुंड है इसके समीप जो यह चबूतरा है, इसपर बैठकर उस दिन कृष्ण कितना रोया था, जब गोपिकाओंने उसकी काली कमली चुरा ली थी। आज इस पर बैठकर हम उस काली कमलीवाले कृष्णके विरहमें रो रहे हैं। हम उस दिन हँस रहे थे। यशोदा उसे मना रही थी हम उसे चिढ़ा रहे थे "छीं छीं रोमनो कृष्ण है।" रोमनो रोमनो कह कह कर हम हँस रहे थे वह ढाह मारकर रो रहा था। आज वह राजमहलोंमें सोनेके सिंहासनपर हँस रहा होगा हम यहाँ रो रहे हैं। अब वह काली कमली क्यों रखता होगा। शाल दुशाले ओढ़ता होगा। शाल दुशालेवाले कृष्णसे हमें क्या प्रयोजन ? हमें तो कालीकमलीवाला काला कृष्ण चाहिये।

देखो, यह दधिगाँव है, यहाँ हम सबने मिलकर श्रीकृष्णके साथ भरपेट दही खाया था। यह कोटवन है। जब मैयाने सुना कृष्ण तो गोपियोंके साथ नाचता है, रास करता है तब उसने कहा—"कनुवा बेटा! मैंने सुना है तू रासलीला किया करता है,

तनिक मुझे भी तो एक दिन दिखा। भगवान् ने सोचा—'ये गोपिकायें मैयाके सम्मुख तो नाचेंगी नहीं।' यह सोचकर आपने कोटि कोटि चौक रचे, कोटि कोटि लीलायें दिखाईं। वह लीला-धारी था, जो चाहता वही कर डालता उसे कोई रोकने टोकने वाला नहीं था। जो चाहता वही बना देता, जो इच्छा होती वही रच देता। अब उसने हमें विरही बना दिया है, यह भी उसीकी लीला है। हम और क्या कहें। देखो, यह शेषसाई स्थान है, यह लोटनकुंड है। यहाँ श्रीकृष्ण गौओंकी रज से लोटे थे, यह कोसी है, यह पय गाँव है। खेलनवनसे खेलते खेलते हम सब लोग श्रीकृष्ण के साथ यहाँ आये थे। गाँववालोंने हम सबको भरपेट दूध पिलाया था। जिस कुंडमें कृष्णका पीया पय गिरा था, उसीका नाम हम सबने पयकुण्ड रख दिया। अब हमें कोई पानी भी पीनेको न देगा। श्रीकृष्णके बिना हमारा कोई महत्व नहीं, अस्तित्व नहीं।

देखो, यह वही मुञ्जाटवी है जहाँ हमारी सब गैयाएँ मूंजके वन में रास्ता भूलकर खो गई थीं। जब हम उन्हें ढूँढ़ने गये, तो चारों ओरसे वनमें दावानलभी लग गई। श्रीकृष्ण उस अग्निको पान कर गया था। हाय! उन दिन कृष्ण हमें जल जाने देता; तो आज हमारा हृदय भीतर ही भीतर क्यों जलता। एक बारका जल जाना अच्छा है, किन्तु इस प्रकार घुट घुटकर जलते रहना अच्छा नहीं। हम तो श्रीकृष्ण रूप विरहानलमें आज-कल रात-दिन जलते रहते हैं।

देखो, यह गुंजावन है, यहाँ श्रीकृष्णने गुंजा की मालाओं का शृंगार किया था। हम सबने भी गुंजाकी मालायें पहिनी थीं। अब श्रीकृष्ण सुनते हैं मणि मोतियों की माला पहिनना है, सुवर्णके सिंहासनपर बैठता है। उस कृष्ण से हमारा सख्य भाव कैसे हो सकता है। सख्य भाव समानके साथ होता है। गुंजामालाधारी कृष्ण ही हमारा सखा है, उसीके लिये हम रो

रहे हैं। हमें वृन्दावनविहारी ग्वालबाल कृष्णके दर्शन चाहिए मथुरावासी राजकुमार कृष्णसे तो हम डर जायँगे। उसे कर तो हम दूर खड़े हो जायँगे। उसके कंधेपर कैसे चढ़ हैं, उनसे चड्डी कैसे ले सकते हैं। उसे 'सारे' कहकर कै सम्बोधित कर सकते हैं।

देखो, यह विहारवन है, यहाँ विहारकुण्ड है, यह है, सामने यह अक्षयवट है, इन सब स्थानोंमें कृष्णने बड़ी सुन्दर सुन्दर क्रीड़ायें की थी। इस चीरघाट पर तो श्री सरसताकी सरिता ही बहा दी थी। हम दस बीस ही गोप साथ थे। बड़ी बड़ी मलूक छोटी छोटी छोरियाँ कात्यायिनीव्र करती हुई यमुनाजीमें नंगी नहा रही थीं। श्यामको एक लीला सूझी। उसकी उमंग ही जो ठहरी उसे जब जो धुनि सवार हो जाय, जब जो क्रीड़ा सूझ जाय, तुरन्त सबके वस्त्रोंको समेटकर कदंबपर चढ़ गया और वंशी बजाने लगा। कुमारी कन्याओंने जब इसका नटखटपन देखा तो, वे हाहा खाने लगी, विनती करने लगी किन्तु वह टससे मस नहीं हुआ। कदंब पर चढ़ा हँसता रहा और कुमारियोंसे निकलनेको कहा। वे नङ्गी निकलने में लजाती रही। वह कहता ही रहा। हमें तो लाज लग रही थी, किन्तु वह तो लोकलाजके परे था वह जो कह देता, उसे करके छोड़ता। अन्त में सब कुमारियाँ नंगी होकर उसके सामने आईं। कपड़ा बिना क्या नंगापना। नंगा तो वास्तवमें वही है, जिसके हृदयसे श्यामसुन्दरकी माधुरी मूरत निकल गई है। कृष्ण के बिना नंगे तो हम हैं, उन कुमारियोंको तो उसने वस्त्र भी दिये। हमें कब निहाल करेगा। कब कारी कामरिया ओढ़कर धौरी धूसरी पुकारता हुआ हमारे आगे आवेगा।

यह नन्दघाट है, यहींसे नंदबाबा को पकड़कर वरुणके दूत वरुणलोक ले गये थे। हम सब कितने घबरा गये थे। सब

रोते-रोते कृष्णके पास चले गये। कृष्णने कड़कके कहा-"उस सारे वरुणकी ऐसी तैसी। मैं अभी अपने बाबाको छुड़ाकर लाता हूँ।" सचमुच वह जलमें घुस गया और बाबाको न जाने कहाँसे ले आया। बाबाको तो खोज लाया, किन्तु स्वयं बाबाका मोह छोड़कर चला गया। अब हम उसे कहाँ खोजें उसने तो राजापनकी खाई बीचमें खोद दी है। यह बैकुण्ठपुर गाँव है यहीं हम सबसे नेत्र बन्द कराके उसने वैकुण्ठ लोकके दर्शन कराये थे। हमनेतो अपने गोपालकृष्णके सम्मुख बैकुंठके ऐश्वर्यको तुच्छातितुच्छ समझा था, फिर मथुराके ऐश्वर्यकी तो बात ही क्या? हमें ऐश्वर्य नहीं चाहिए माधुर्य चाहिए। हमें तो ग्वारिया कृष्णसे कुश्ती लड़ते अच्छो लगती है। "त्वमेव माता च पिता त्वमेव" इसे तो कंगला-दरिद्री भिखारी गाते हैं। "जय जगदीश हरे" कहकर अर्थार्थी आरती करते हैं। हमतो उसे जेठमें भरकर छाती से चिपटा लें यही हमारी पूजा है। हाय! हमारी पूजा छिन गई। कृष्ण हमें छोड़कर चला गया।

देखो यह भद्रवन है, यह भान्डीरवन है, यह श्यामवन है, यह मॉट है। यहीं अघासुर, वत्सासुर, बकासुर और प्रलम्बासुर आदि दैत्योंको श्रीकृष्ण बलरामने मारा था। यह वत्सवन है यहीं हमारा पुनर्जन्म हुआ था। दुष्ट अघासुर हम सब गोपोंको बछड़ोंके साथ निगल गया था। हम तो उसके उदरमें जाकर मर ही गये थे, श्रीकृष्णने ही हमें फिरसे जीवित कर दिया। हाय! हम तभी मर जाते तो सब दुख दूर होजाते। ये वियोगके दिन न देखने पड़ते। यह सेई गाँव है। यह सैमरी है। यह नरीगाँव है यहाँ श्रीजीकी सहचरी रहती हैं। नरी श्यामला दोनोंही श्रीजी-की सखी रामश्यामको छाक खिलाकर जगत पूज्य बन गई। यह चौमुहा गाँव है। चतुर्मुख ब्रह्माजीने यहीं अपने चारों मुखोंसे चारों दिशायें देखी थी।

देखो. यह ऊँत गाँव है, यहीं कोपकुंज है। श्रीजी जब कर कोपकुंजोंमें आ बैठती तो श्यामला सखी उन्हें मनाने करती थीं। आज कृष्ण हमसे रूठकर मथुराकी राजधानीमें जा बैठा है, उसे मनाने किसे भेजें। राजधानीमें जानेका किसीका साहस ही नहीं पड़ता।

यह भांडीरवन है, यहीं दाऊ भैयाने प्रलम्बासुर दैत्यको था। वह भद्रवन है और खंडेश्वर महादेव हैं। यहाँ बैठकर दोपहर में छाक कितने बार श्रीकृष्णके साथ खाई थी।

देखो, यह बेलवन है। इन बेलोंके वृक्षोंसे कितने पके पके बेल तोड़ तोड़कर हमने खाये थे। बेल कितने मीठे और स्वादिष्ट लगते थे। कृष्णके बिना ये सब नीरस हो गये। लक्ष्मीजीने इस वनमें श्रीकृष्णको पानेकी कितनी तपस्याकी थी ? यदि तपस्यासे कृष्ण मिल जाय, तो हम भी यहाँ तपस्या करें। किन्तु कृष्ण तो सरस है उसे नीरस तपस्या क्यों अच्छी लगेगी। वह तो प्रेमका भूखा है। प्रेम हमरे पास नहीं है तभी तो वह हमें छोड़कर चला गया। प्रेम कहाँसे लावें। हाय ! हम कृष्ण बिना जी रहे हैं ऐसे जीवनको धिक्कार है। प्रेम तो मछली का सच्चा है जो जलके बिछुड़ते ही प्राण त्याग देती है। हम रो तो रहें हैं अश्रु तो त्याग रहे हैं किन्तु प्राणों को नहीं त्यागते यही हममें कमी है। इस कमी को भी कृष्णही पूरी कर सकता है। दूसरे के वशकी बात नहीं !

देखो यह वृन्दावन है इसकी कण कणमें कृष्णकी असंख्यों स्मृतियाँ भरी पड़ी हैं। कहाँ तक स्मृतियोंको गिनावें। स्मरण शक्ति भी तो हमें छोड़कर चली गई। यह दान गली है यह मान गली है यह गुमानगली है यह सेवा कुन्ज है। उस दिन की बात हमें कभी न भूलेगी।

श्रीजी यमुना स्नानके लिये जा रहीं थीं। साथमें सखी सहेलियाँ थीं। उसे तो हर समय नटखटपन ही सूझता रहता था।

एक सॉकरी सी गलीमें आकर श्रीजीका अंचल पकड़ लिया और कहा हमारा दान दो ।"

श्रीजीको क्रोध आ गया और डाँटकर बोलीं—"चलो हटो, आये दान माँगनेवाले। बड़े दान लेने वाले बने हैं। अभी कंस राजाको पता पड़ जायगा, तो लालाजी आपके सहित बँधे हुए जाओगे। किस ठसकमें फूले घूमते हो ?

श्रीजीकी बात सुनकर उसे भी रोष आगया और बोला— "मैं सारे कंसको अभी पछाड़कर आता हूँ।" और वह तुरन्त रोष में भरकर चल दिया। उस समय तो श्रीजीने हाथ पकड़कर उसे रोक लिया था। तब तो वह नहीं गया। किन्तु पीछे चला ही गया। कंस भी मर गया, किन्तु कृष्ण लौटकर वृन्दावन नहीं आया। कैसा निष्ठुर बन गया है वह।

यह वंशीवट है, यहाँ कृष्णने रासके लिये वंशी बजाई थी। शरदपूर्णिमाके दिन रास किया था। देखा, यह भतरौड़ है यहाँ ही याज्ञिक ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे, हम सब उनसे अन्न माँगने गये थे, उनकी पत्नियाँ कैसे सुन्दर-सुन्दर अन्न लाई थीं ? सबने कितने स्वादसे खाये थे। सुना है यहीं अक्रूरजीको जलमें चार भुजावाले कृष्णके दर्शन हुए। चार भुजाका कृष्ण तो हमने सुना ही नहीं। हमें कभी चतुर्भुजी कृष्ण दीख जाय, तो हम तो डरकर भाग जायँ। हमें तो द्विभुजकृष्ण चाहिये।

यह यमुनापार मानसरोवर है। यहाँ प्यारीजीने प्यारेसे मान किया था। कृष्ण होता तो हम भी उससे मान करते अब किससे मान करें कौन हमें मनावेगा ? यह लोहवन है, यहाँ श्रीकृष्णने लोहासुर को मारा था। यह देखो आनन्दकुन्ड है। यह सानन्दी मौसीका गाँव है। यहाँ जब भी आते मौसी हमें माल खिलाती थी। हम जब छाक लेकर नहीं चलते थे तो हमारी मातायें कहा

करती थीं—"छाक न ले जाओगे, तो वहाँ खाओगे क्या ? गैलमें तुम्हारी मौसी थोड़े ही बैठी है। सो, इस सानन्दीको कृष्णकी मौसी होनेके कारण हम सब मौसी ही कहा करते थे। मौसी अब जाने जीवित है या मर गई। जीवित भी होगी तो कृष्णकी याद कर करके अंधी हो गई होगी। हा ! कृष्ण सभीको प्यारा था, जितना ही प्यारा था, उतना ही वह निष्ठुर भी निकला।

देखो, यह दाऊजीकी जन्मभूमि है। कितनी बार हम यहाँ आये हैं। यह महावन गोकुल है। यहीं कृष्णका जन्म हुआ था। जो निष्ठुर अपनी जन्मभूमिको भी त्याग गया। उसकी हम अब याद न करेंगे। देखो सामने यह रावल है, राधाजीका जन्म इसी गाँव में हुआ था। गोकुलमें कितने दिनों हम साथ-साथ रहे, साथ-साथ खेले। यमलार्जुन पेड़ोंके गिरनेसे ही हम इस स्थानको छोड़कर वृन्दावन चले गये और फिर वन वन विचरते रहे। अब भी हम एक वनसे दूसरे वनमें विचरते हैं, किन्तु अब हमें शान्ति नहीं, सुख नहीं, उल्लास नहीं, उत्साह नहीं, सन्तोष नहीं, कृष्णके बिना हम तड़प रहे हैं। बलरामके बिना हम बिलबिला रहे हैं। हा श्याम ! कब आओगे। हे बलभैया ! हमें ऐसे ही जीवन भर रुलाओगे ? हमारे लिये कोई मार्ग बता जाओ। हम कबतक ऐसे ही भटकते रहेंगे ? कबतक छटपटाते रहेंगे ?

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! इस प्रकार विरहमें व्याकुल हुए गोप एक वनसे दूसरे वनमें जाते और वहाँ कृष्णकी लीलाओंका स्मरण करके दिन दिनभर रोते रहते। उन्हें संसार सूना सूना दिखाई देता। श्रीकृष्णके बिना सर्वत्र उन्हें अंधकार दिखाई देता। गोपियोंकी दशा इनसे भी बुरी थी, उनके लिये पल-पल काटना भारी हो गया था, वे रातभर रोती रहती थीं। अब मैं कुछ गोपियोंके ही विरहका दिग्दर्शन कराऊँगा।

छप्पय

बन, उपबन, द्रुम, सरित, सुमन सरवर लखि रोवैं।
लीलनि की करि सुरति देहकी सुधि बुधि खोवैं ॥
गाँव गाँव थल कुंड लखें लीला सुधि आवैं।
कृष्ण कृष्ण कहि गिरैं दुःखको पार न पावैं ॥
जब गोपनिकी जिह दशा, तो गोपिनिकी का कहैं।
जो प्रियतमके पेममहँ निशिवासर डूबी रहैं ॥

गोपिकाओं का विरह

(१०५६)

ता नाविदन् मय्यनुषङ्गबद्ध--
धियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ *
(श्री भा० ११ स्क० १२ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

निशि निशि गोपी फिरति गये कहँ कृष्ण कन्हाई ।
तिनकूँ तजिके नींद कृष्ण के संग सिधाई ॥
विरह रोग अति दुसह सबनिके हिय महँ लाग्यो ।
रोवत ही नित रहें शयन भोजन जल त्यागो ॥
पछितावें सुमिर करें, रासविलास मनाइबो ।
दान मान होरी हँसी, संग नाचिबो गाइबो ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! भगवान् उद्धवजीसे कह रहे हैं कि हे उद्धव ! उन गोपिकाओं का मन निरन्तर मुझमें ही लगे रहनेसे तथा मुझमें अतिशय आसक्ति होने से उन्हें अपनी शरीरादिकी सुधि बुधि उसी प्रकार नहीं रही जिस प्रकार समाधिमें स्थित होनेपर मुनियोंको अपने शरीर की सुधि नहीं रहती अथवा समुद्रमें मिल जानेपर जैसे नदियाँ अपने नाम रूप को भूल जाती हैं ।

जिनके साथ में सुखकी घड़ियाँ बिताई हैं। शून्य आकाशमें एकान्तमें बैठकर रात्रि भर तारे गिने हैं, जिनकी जंघाओंका तकिया लगाकर सोये हैं, जिनके साथ घुलघुल कर बातें की हैं, जिनके अंगोंको सुखसे सुहलाया है, बालोंको सुलझाया है। जिन्हें स्वयं खिलाया है, जिनके हाथसे खाया है। जिनके साथ साथ स्वरमें स्वर मिलाकर गाना गाया है, जिनकी तालमें ताल मिलाकर बाजा बजाया है, जिन्हें स्नेहसे कंधेपर उठाया है। अनेकों बार जिनका स्नेहभरित हृदयसे आलिंगन किया है, प्रेममें भरी हुई बहुत व्यर्थकी बातें की हैं, अपने और उनके अङ्गमें अणुमात्रका भी कभी अंतर नहीं समझा है, जिनके मधुर मुखको निहारकर, अंग अंगमें एक अनिवर्चनीय स्फूर्तिका सदा अनुभव किया है, जिनको देखते देखते कभी तृप्त ही नहीं हुई है। जिनके अंगोंमें अपने अंगोंको सटाकर एक सुखद सरसता का स्वारस्य लिया है, वे ही भाग्यवश अपने से विलग हो जायँ, तो कैसी मर्मान्तिक पीड़ा होती होगी, इसका वर्णन वाणी कैसे कर सकती है, लेखनी उसका उल्लेख कैसे कर सकती है। यह विषय कहने सुनने और लिखने पढ़ने का नहीं अनुभवगम्य है, किन्तु करें क्या बिना कहे रहा भी तो नहीं जाता। जब लेखनी हाथ में दे ही दी जाती है, कोरे कागदपर कुछ भी तो कारी लकीरें करनी ही हैं, किन्तु वे उन विरहिणियों-के भाव व्यक्त करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। हृदयको निकालने पर वह कैसे तड़पता है कैसे उसमें कंपन होती है उसे आँखें देख भले ही लें वाणी कह नहीं सकती। सबसे बुरी वस्तु है प्यार किन्तु प्यार किये बिना रहा नहीं जाता, प्यारसे भी बुरी वस्तु है विरह किन्तु प्रेममें विरह अनिवार्य है। विरहसे भी बुरी वस्तु है उसका कथन, किन्तु बिना कथन किये कल पड़ती ही नहीं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! विरह विथामें बिलबिलाती यशोदा मैयाकी दशाका दर्शन आपने कर ही लिया। कृष्ण वियोगमें वन वन भटकते रोते चिल्लाते ग्वालबालोंकी दशाका यत्किंचित् अवलोकन आपने किया ही। अब कुछ उन गोपिओं की दशाको श्रवण कीजिये। जिनके सर्वस्व श्यामसुन्दर ही थे. जिन्होंने श्यामके प्रेमके पीछे लोक वेद सभीकी मर्यादाको त्याग दिया था। जिनके हृदयधन नन्दनन्दन ही थे। मनमोहनके बिना उनकी कैसी दशा हुई है उसीका यत्किंचित दिग्दर्शन करानेका दुरसाहस मैं करता हूँ, है तो यह मेरी धृष्टता तथा अनाधिकार चेष्टा ही किन्तु आप मुझे क्षमा करें, अनिवर्चनीय विषयका निर्वचन करनेका मैं साहस कर रहा हूँ।

श्रीकृष्ण मथुरा चले गये मानों गोपियोंका सर्वस्व लुट गया। अब उनके लिये श्रीकृष्णकी मधुर-मधुर स्मृतियाँ ही अवशिष्ट हैं, उन्हींका स्मरण करती हुई वे कष्टसे अपने दिनोंको बिताती हैं। अब उनका एक मात्र यही कार्य रह गया है, कि परस्पर मिलकर श्रीकृष्णके सम्बन्धकी ही चरचा करते रहना। इससे उन्हें सुख मिलता है, समय कट जाता है। विरहियोंके लिये प्रियकी स्मृति ही तो अवलम्ब है. प्यारेने जो लीलायें की हैं, उनका बार बार स्मरण करना, जिन-जिन स्थानोंमें की है उन उन स्थानोंको जाकर पुनः पुनः देखना। जिन-जिन समयोंमें की हैं. उन-उन समयोंकी सुरति करके रोना, यही समय काटनेके साधन हैं। नहीं तो पहाड़ जैसे दिन इतनी बड़ी-बड़ी वियोगकी रात्रियाँ कैसे कटतीं। कृष्णको जाते देखकर गोपियोंकी निद्रा भी उनके साथ भग गई। निद्रा तो निर्लज्जा है, वह पीछे-पीछे लग ही गई। लज्जावती गोपिकायें कैसे जातीं वे व्रजमें ही रोती रहीं।

जब एक ही दुःखके दुखिया बहुतसे मिल जाते हैं, तो दुःख कहते सुनते समय कट जाता है। संघका जीवन इसीलिये तो

सुखमय बताया उसमें सुख भी बँट जाता है और दुख भी। गोपिकायें झुंडकी झुंड बैठ जातीं और वहीं कृष्णकी चरचा करने लगतीं।

कोई कहती—"सखि! अबतो आशा निराशामें परिणित हो रही है। नन्दनन्दनकी निष्ठुरता पराकाष्ठाको पहुँचती जाती है। देखो, परसों आनेको कह गये थे, कितनी परसों तबसे हो गईं। मथुराका मग जोहते जोहते आँखें पथरा गईं। दिन गिनते गिनते उँगलियोंकी रेख घिस गई। कृष्ण कृष्ण कहते कहते जिह्वा छलनी हो गई। किन्तु वह छलिया नहीं आया नहीं आया। उसे नहीं ही आना था, तो झूठी आशा क्यों दे गया, समय निर्धारित क्यों कर गया। सजनि! कृष्ण कपटी निकला।

इसपर दूसरी कहती—"सखि! कारे सभी कपटी ही होते हैं। कारेकेश कुटिल ही तो होते हैं,भौंरा भी तो काला ही होता है। बड़ा स्वार्थी होता है। कलिकाओंके रसको चूसकर उन्हें झकझोर-कर उड़ जाता है, फिर बात भी नहीं पूछता। जो पपीहा रातदिन काले बादलों की ओर देखता रहता है, उसके ऊपर वे निष्ठुर ओले बरसा देते हैं। कारे किसीके मित्र नहीं होते। हाय! हम समझती थीं, कृष्ण ऊपरसे ही काले हैं, किन्तु अब पता चला, वे तो भीतर बाहर दोनों ही ओरसे कारे हैं। जब यहाँ रहते थे, कैसा प्रेम दिखाते थे। एकांतमें कैसी घुल घुलकर बातें करते थे। तनिक भी हमारी भृकुटिको टेढ़ी देखते डर जाते। एकान्तमें आ-कर बारबार विनय करते, दीनता दिखाते। बार-बार पूछते तुम मेरे ऊपर अप्रसन्न तो नहीं हो। मेरे ऊपर कृपा रखना तुम्हारा मुझे भरोसा है. संसारमें तुम्हारे बिना मेरा और कौन है। उनकी वह विनय अब हृदयमें शूलकी भाँति चुभ रही है। हाय! इतना सरस इतना सदय ऐसा निष्ठुर भी हो सकता है, इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकतीं।

इसपर एक अन्य कहती—"वीर ! कृष्ण तो ऐसे नहीं थे। प्रतीत होता है, मथुरामें किसीने उनपर जादू टौना कर दिया। किसीने मोहिनी मंत्र पढ़कर उन्हें मोह लिया, वशीकरण मन्त्र की सहायतासे अपने वशमें कर लिया। नहीं तो कभी तो हमारी याद करते। कभी तो आते। न भी आते तो पाती तो पठाते, अपने कुशल क्षेमके समाचार तो वताते। अवश्य ही किसी नारीने यन्त्र मत्र तथा तंत्र करके उन्हे अपने अधीन कर लिया है।

इसपर दूसरी कहती—"और कौन होगी। उसो सौति कुब्जाने यह जाल रचा। उस कूबड़ीको मथुरामें पहिले कौन पूछता था, अब तो वह दासीसे रानी वन गई। वह कब चाहती होगी, श्याम ब्रजमें लौट जायं, उसीने कोई जादू टौना किया होगा। पुरुप स्वार्थमें अन्धा होकर पर पीरको नहीं देखता। हम कृष्णके बिना कितनी दुखी हो रही हैं इसे कुलटा कुब्जा क्या जान सकती है। वह सौति कहीं हमें मिल जाय, तो हम उसका सब कूबड़ तोड़ दें। उसे उसके कियेका फल चखा दें।

कोई कहती—"वीर! दूसरेको दोप क्यों दें ? 'अपना ही दाम खोटा न होता, तो परखने वाले उसे खोटा कैसे वता सकते थे।"—कृष्ण निश्चय ही निष्ठुर हैं। पहिले वे जो मीठी-मीठी चिकनी चुपड़ी बातें किया करते थे, वे सब बनावटी थी, दिखावटी थी, मुँह देखेकी प्रीति थी। अब उन सब बातोंको भूल जाओ। समझ लो कृष्णसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है।"

इसपर एक आँखोंमें आँसू भरकर बोली—"सखि ! उस कालेको किसी प्रकार भूल सकतीं तो सब झंझट ही दूर हो जाते। किन्तु हम जितना ही उसे भुलाना चाहतीं हैं, वह उतना ही और हृदयके भीतर घुसता जाता है, उसकी स्मृतिमें मधुर मधुर वेदना है। गरम खीरके ग्रासकी भाँति है जो मुखको जलाने पर भी सुखद प्रतीत होता है, जिसे उगलनेको जी नहीं चाहता।

उसने जो-जो सरस लीलायें रची हैं वे भला भुलाई जा सकती हैं। व्रजके कण कणमें उसकी स्मृतियाँ निहित हैं। यहाँ की भूमिमें, यहाँके जलमें यहाँके प्रकाश, यहाँके वायुमंडलमें तथा यहाँके आकाशमें सर्वत्र श्रीकृष्ण की मधुर मधुर स्मृतियाँ व्याप्त हैं व्रजमें रहते हुए व्रजवल्लभको भुला देना ऐसे ही है जैसे आकाशमें उड़नेवाला पक्षी आकाशको भुला दे। देखो, यह साँकरी गली है। इसमें श्याम नित्य ही छेड़छाड़ किया करते थे, दान लेनेके लिये सदा अड़ जाते थे, अकड़ जाते थे, हमारा अंचल पकड़ लेते थे। हम डाँटकर कहतीं—"देखो, यह अच्छी बात नहीं। दूरसे बात करो शरीरको छूआ तो अच्छी बात न होगी ; तब वे कहते—"अच्छी हो या बुरी हम तो बिना गोरस का दान लिये छोड़नेके नहीं। उस समय की उनकी प्यारी प्यारी बातें हृदयमें हूक उत्पन्न कर देती हैं। हाय ! वे कैसी ममता भरी बातें करते थे। कभी तो अकड़ जाते, कभी विनय दिखाते, कभी पैयाँ पड़ जाते। वे सब कुछ जानते थे। वे रँगीले थे, रसीले थे। प्रीति की रीतिको वे ही जानते थे। किस मर्म स्थान पर मृदुल चोट करनेसे गुदगुदी होगी, उसका ज्ञान उन्हींको था। हमारी कठोर बातोंका वे ऐसा सरस उत्तर देते थे, कि वे बातें लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं भुलाई जा सकतीं।

एक बोली—"सखि ! तुम्हारा कथन सत्य है बोलना तो बनवारी ही जानते थे। उस दिन दो चार ही गोपियाँ दही बेचने जा रही थीं। इतनेमें ही कहींसे आ धमके और बोले—"हमारा दान दो।"

मैं नई बहू ठहरी—"घूँघटमें से ही मैंने कहा—लल्ला ! तुम लड़ाई झगड़ा मत करो। कैसा तुम्हारा दान। तुम बड़े नये राजा बने हो। चलो हटो हमें जान दो।"

वे हँसते हुए बोले—"हम नये राजा, तुम नई

की भली बनी जोड़ी।" यह कहकर उन्होंने अंचल पकड़ लिया। मैंने डाँटते हुए कहा—"देखो, दूरसे बात करो। शरीर से हाथ लगाया तो तुम, ही जानते हो, फिर अच्छी बात न होगी।"

तब आप बोले—"भाभी! मैं तो तेरे दुलहासे छोटा हूँ, मुझसे तू घूँघट क्यों मारती है। भला देवरोंसे भी लाज की जाती है।"

मैंने कहा—"चलो हटो। आये देवर कहींके। मुँह देखनेको देवर हो और दान लेनेको राजा हो। मैं तुम्हारी सब धूर्तता जानती हूँ।"

तब बोले—"अरी, भाभी! *जाननेवालेको ही जनाया जाता* है।" यह कहकर मेरे आँचलसे अपने मुँहके पानकी पीक पोंछ दी। मैंने कहा—"हाय! लल्ला! यह तुमने क्या किया। मेरी साड़ी बिगाड़ दी। देखो इसमें पीक पोंछ दी।"

तब आप हाथ जोड़कर बोले—"भाभी! भूल हो गई। तुम अपने मुखकी पीकको मेरे पलकोंसे पोंछ दे।" मैं तो सुनकर सहम गई, उनकी वे बातें अब याद आती हैं, हृदय विकल हो जाता है। अनुरागमें भरकर वे कैसे बातें किया करते थे, उन्हें सुनते सुनते चित्त ही नहीं भरता था।

एक सखी आँखोंमें आँसू भरकर बोली—"सखि! उनकी चितवनमें माधुरी थी। पहिले ही पहिले जब मुझे वे यमुना तटपर मिले, तो मुझे ऐसा लगा मानों मन ही सजीव होकर खड़ा है। मैं आँखोंको उनकी ओरसे हटाती, किन्तु निगोड़ी हटती ही न थीं। इतनेमें ही और भी गोपियाँ आ गई। मैं लजाती-लजाती वहाँसे चलती। हृदय जाने कैसा हो रहा था। मैंने देखा वे भी मेरे पीछे पीछे आ रहे हैं। एक स्थानपर एकान्त देखकर चारों ओर दृष्टि

दौड़ाकर मेरे कानके समीप आकर बोले—"तुमसे मैं प्यार करना चाहता हूँ, तुम भी मुझे प्यार करोगी क्या ?"

ऐसा मुँहफट पुरुष तो मैंने आजतक देखा ही नहीं। मैं निर्णय ही न कर सकी, क्या कहूँ। वे अपने आप ही कहने लगे—"जब से मैंने तुम्हें देखा है, मेरा मन पानी-पानी हो गया है। चित्त चाहता है, तुम्हें सदा देखता रहूँ। तुम्हें आँजन बनाकर आँखोंमें आँज लूँ। तावीज बनाकर कंठमें बाँध लूँ। हार बनाकर कंठमें पहिन लूँ। हृदयसे सदा सटाये रहूँ।"

मैंने समस्त साहस बटोरकर कहा—"कौन हो तुम! क्या बक-झक कर रहे हो, यह कुछ अच्छी बात है ?"

वे बोले—"बुरी ही बात सही। बुरीको भी तो कोई लेगा। वह मेरे ही पास रहे। तुम मुझे चाहे प्यार न करो मैं तो तुम्हें सदा प्यार करूँगा। तुम मेरे घर आना। मेरे घर आनेमें लजाती हो, तो मैं ही तुम्हारे घर आऊँगा।" सामने उन्होंने देखा बहुत-सी गोपियाँ आ रही हैं। वे तुरन्त दूसरे मार्गसे चले गये। उस दिन से नित्य ही मेरे घरके चक्कर काटते रहते। कितनी सुखद रात्रियाँ निभृत निकुंजोंमें मैंने सखियोंके सहित उनके साथ बिताई थीं। कितनी कमनीय क्रीड़ायें उनके क्रोडमें लुढ़कर मैंने की थीं, उन्होंने कितना स्नेह मुझसे किया, कितना प्रेम प्रदर्शित किया। अति परिचयसे अवज्ञा हो जाती है। मैं ढीठ हो गई, उनके मुँह लग गई, मेरा संकोच जाता रहा। मैं उन्हें छलो, कपटी, मुँहके मीठे अंतरमें विष की बुझी छुरी, बताती रही। बार बार उनसे कहती तुम मुझे इतना दुख क्यों दे रहे हो, तुम मुझे क्यों चक्करमें फँसाये हो। मुझे उनसे तनिक भी शील सकोच न रहा। यही मेरे दुःखका कारण हुआ। वे सदा दीन बने रहते। मेरे सामने अत्यन्त रिरियाकर बोलते। कहते—"मैं तुम्हारे अधीन हूँ, तुमही मेरी अवलम्ब हो, संसारमें मुझे तुम्हारा ही

सहारा है, मैं तुम्हारी कृपाका भूखा हूँ। वे मेरे चरण पकड़ लेते और उन्हें सुहलाते रहते।' इससे मेरा मान और भी बढ़ गया। मैंने कोपमें भरकर उनसे कैसी कैसी न कहने योग्य बातें कहीं आज वे शूलकी भाँति मेरे हृदयमें चुभ रही हैं।

उस दिन मेरी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये। न जाने क्यों मैं एक तनिकसी बातपर उनसे रूठ गई। मचल गई। वे जितना ही मनाते मैं उतनी ही तनती जाती। यहाँ तक कि मैंने कह दिया—"तुम यहाँसे चले जाओ।" वे सदा मेरा रुख देखकर काम करते। जब वे सब उपाय करके थक गये तो उदास होकर निकुंज से बाहर आ गये। वहाँ मेरी सखियोंके पैर पकड़ पकड़कर रोने लगे। उनकी चिरौरी करने लगे। विनीत वचनोंसे उनसे प्रार्थना करने लगे—"प्यारीजीसे मेरे अपराधको क्षमा कर दो।" उस दिन मैंने कितना उन्हें झिड़का था, कितनी भली बुरी बातें कहीं थीं। उन्होंने एकका भी उत्तर नहीं दिया। यही कहते रहे, मुझसे भूल हो गई, क्षमा कर दो, फिर ऐसा कभी न करूँगा।" हाय! मेरे उन्हीं सब पिछले अपराधोंको स्मरण करके वे चले गये। मुझे ऐसा पता होता, तो उनसे ऐसी कठोर बातें क्यों कहती, उन्हें अपने पलकोंके भीतर रखती। हा! श्यामसुन्दर आ जाओ! आ जाओ! हमारे पुराने अपराधोंको भूल जाओ।" यह कहते कहते सखी रोने लगी।

इसपर दूसरी बोली—"श्यामके बिना अब यह वृन्दावन वह पुराना वृन्दावन नहीं रहा। अब तो यह विरहवन बन गया। पहिली जैसी शोभा कहाँ है। ऋतुराज वसंतकी वह छबीली छटा अब व्रजके बगीचाओंमें कहाँ छिटकती है। इन शाल, ताल, तमाल, कदम्ब, कुटज, आम्र, महुआ और सभी द्रुमों पर अबभी नवीन नवीन कोपल आते हैं, किन्तु इनमें प्रथम जैसी सुन्दरता नहीं, सुकुमारता नहीं। प्रथम जैसा शीतल मंद सुगन्धित सुखद

समीर बहता था, वह अब कहाँ है। तब सब लतायें हरी भरी हो जातीं, पुष्पोंसे नत हो जातीं। श्यामसुन्दर झुककर झूमकर उनके सुमनोंको, कोमल पल्लवोंको अपने सुकुमार कोमल अधरोंपर रखकर बार बार चूमते। वसंतमें भ्रमणको पथ्य बताया है, वे हमारे गलोंमें बाहें डालकर एक वनसे दूसरे वनमें दूसरे वनसे तीसरे वनमें इस प्रकार घूमते ही रहते। वह समय न अधिक ऊष्ण होता था न शीतल। आमके बौर पर बैठकर कोकिला बोलती, तो वे उसका अनुकरण करते। कोकिला जब आमको अपनी चोंचसे कुतर कुतरकर गिरा देती तब आप कहते हमें तो भौंराही अच्छा लगता है, जो रस तो पी लेता है, किन्तु पुष्पोंके रूपको विकृत नहीं बनता। वह क्षत विक्षत नहीं करता। इस कोकिलाकी कुटिलता तो देखो, इसने काटकर इसे गिरा दिया। तब हम कहतीं—"कारे रंगवाले सभी बुरे होते हैं, उन्हें अपना स्वार्थ ही प्रिय है, दूसरोंके कष्टको वे जानते ही नहीं।" तब वे खिलखिलाकर हँस जाते। उनके हास्यमें कैसी मोहकता थी, कैसी मादकता थी। उनके हास्यपर सर्वस्व वारा जा सकता था। पीली पीली सरसों फूल जाती थीं, उसे देखते ही उनके पीतपटकी याद आ जाती। गुंजायें भी पक जाती थीं। गेहूँ जौ के खेत हरे-से पीले हो जाते, जिन किसानोंने उन्हें उमंगसे बोया था और जल देकर सींचा था, वे ही उन्हें शस्त्र लेकर काटने लगते। कृष्ण भी ऐसे ही निष्ठुर कृषक निकले। जिस प्रेम बेलको उन्होंने प्राणपनसे बोया था, नयनोंके नेह्नीरसे जिसे सींचा था, उसे ही अब वे जड़से काट गये। हमारे लिये रोना धोना और छटपटाना ही छोड़ गये। वसंतके दिनोंमें ये कुमुदिनियाँ अपने कांत चन्द्रको देखकर जैसे खिल जाती थीं वैसे ही हम अपने कांत श्रीकृष्णको देखकर खिल जाती थीं। जैसे ये लतायें पुष्पोंसे फूल जाती थीं वैसेही हम आनन्दसे फूल जाती थीं। महुआ हमारे ऊपर पुष्पोंकी वरषा

करता। हम महुए बीनतीं और उन्हें हरी हरी दूबमें पिरोकर उन-की माला बनाकर प्यारेके कण्ठमें उन मालाओंको डालतीं। मधुक के पुष्पोंको वे ओठोंसे लगाकर चूसते और कहते—"कितने मीठे हैं ये महुयेके फूल।" हम कहतीं—"तुम तो श्याम सुन्दर नमकीन हो, तब वे हँस जाते और हमें हृदयसे सटा लेते। ऋतुराजके आनेपर वनकी श्री बढ़ जाती। शोभा बिखर जाती। हमारे मन मुकुर खिल जाते। श्यामका सुखद स्पर्श पाकर हम मदमातीं बन जातीं और उनका प्रेमालिंगन पाकर निहाल हो जातीं। बसन्त अबभी व्रजमें आता है, किन्तु बनवारीके बिना वसंत फीका फीका लगता है, उसमें वह शोभा नहीं, आभा नहीं।

यद्यपि ग्रीष्म ऋतु की सब निन्दा करते हैं, बड़ी गरमी पड़ती है, प्यास बहुत लगती है, शरीरसे पसीना छूटता है निद्रा बहुत आती है डांस मच्छर हो जाते हैं, ओठ सूख जाते हैं, शरीरसे हाथ पैरके तलुओंसे आग निकलने लगती है, छोटी नदियाँ सूख जाती हैं, उष्ण वायु बहने लगती है, कहीं हरियाली दृष्टिगोचर नहीं होती। घास सूख जाती है, केवल आक जवासे ही हरे-हरे दिखाई देते हैं, किन्तु कृष्णके रहनेसे ये सब असुवि-धायें हमें कुछ भी कष्ट नहीं देती थीं उनका वर्ण घनके सदृश श्याम था। घनोंसे उनकी मैत्री थी, जहाँ जहाँ वे जाते घन उनके ऊपर छाया करते जाते। हम उनकी छत्र छायामें निर्भय होकर विचरण करतीं। कहाँ की घाम, कैसी उष्णता; हम कुछ जानती ही नहीं थी। किन्तु अब हमें उष्णता प्रतीत हो रही है। यथार्थ ग्रीष्म तो अब ही हमारे लिये बीत रही है। हमारा रोम रोम कृष्ण विरहमें संतप्त हो रहा है, हमारी श्वाँससे उष्णता फूट फूटकर निकल रही है। हमारे रोमोंके छिद्रोंसे ही पसीना नहीं निकल रहा है आँखोंसे भी पानी बह रहा है। कृष्ण दर्शनोंकी पिपासासे हम छटपटा रही हैं। पहिले उनके अधरामृतको पान

करनेसे हमारी भूख प्यास सभी भग जाती थी, किन्तु आज न अधरामृत ही मिल रहा है न पानी ही। यमुना भी आँसुओंकी बाढ़से खारी हो गई है। खारा पानीका पीया भी तो तृप्ति नहीं। हमारे ओठ तव श्यामके अधरोंसे सटकर हरे रहते थे अब ये भी सूख गये हैं, झुलस गये हैं, काले पड़ गये हैं। तब तलुओंसे आग निकलती तो उनके विशाल वक्षःस्थलपर हाथ रखते ही शीतल हो जाते, अब तो हमारे रोम रोमसे विरहानलकी चिनगारियाँ निकल रही हैं। श्रीकृष्णके प्रभावसे ग्रीष्ममें भी झरने झरते रहते थे, क्षुद्र सरितायें भी नहीं सूखती थीं, किन्तु आज तो कृष्णवियोगमें हमारी धमनियाँ शुष्क हो गई हैं। स्नेहकी सरिता सूख गई है। ग्रीष्मका कष्ट तो हमें अब ही प्रतीत हो रहा है, उनके साथ तो ग्रीष्म ऋतु भी सुखदायिनी और मनभावनी प्रतीत होती थी।

वर्षा लगते ही नन्हीं नन्हीं बूँदियाँ पड़ने लगतीं। बादल उमड़ घुमड़कर आते, बिजली चमकती, मयूर मत्त होकर नृत्य करते। वर्षाको देखकर श्यामसुन्दरका रोम रोम खिल जाता, उन्हें हिंडोले हिलानेका साथ साथ झूला झूलनेका बड़ा चाव था। कदंब की फूली फूली डालों पर वे स्वयं अपने हाथोंसे हिंडोला डालते। और प्रियाजीको अंकमें भरकर चढ़ाते और स्वयं झोटा देते। प्रियाजी जब डरतीं तो आप हँसते हँसते लोटपोट हो जाते फिर स्वयं भी उनके साथ हिंडोलेपर बैठ जाते। हम सब झोटा देने लगतीं। प्रियाजी तो स्वभावसे भीरु थीं। बड़े बड़े झोटा लगाते ही वे श्यामसे लिपट जातीं उस समय ऐसा लगता मानो जलभरे घनसे विद्युत लिपटी हुई झूल रही हो। अहा! श्रावणके वे सुखद दिन फिर कभी आवेंगे क्या? सम्पूर्ण भूमि हरीभरी हो जाती, मानों किसीने हरी मखमलका गलीचा बिछा दिया हो। वीर वधूटी निकल निकलकर भूमिपर ऐसे चलती मानो

किसीने लाल बिखेर दिये हों और वे सजीव होकर चल रहे हों। स्थान स्थानपर छत्रक जम जाते मानों वीर वधूटियोंको मेघसे बचानेके लिये भूमिने उनके लिये छाते उपजा दिये हों। वर्षामें श्याम वनोंमें चले जाते फल तोड़कर खाते, आमोंको चूसते, उनके अधरामृतसे सटकर वे फल मधुरातिमधुर बन जाते। हाय ! अब श्यामके अधरामृतसे सिक्त प्रसाद कब प्राप्त होगा। वे काली कमली ओढ़े भीगते हुए वनसे गौओंके पीछे पीछे आते हुए दिखाई देंगे ? हाय ! वे दिन स्वप्न हो गये।"

इसपर एक सखी बोली—"सखि ! वर्षा ऋतुमें श्यामका संस्पर्श कितना सुखद होता था। वह भुलानेपर भी नहीं भूलता। वर्षा की ऋतु थी, मैं उस दिन दही बेचकर आ रही थी, मेरी संगिन सब आगे बढ़ आई थीं। मैं अकेली पड़ गई और वनमें मार्ग भी भूल गई। सूर्य भी अस्ताचलको प्रस्थान कर चुके थे। अँधेरी रात्रि थी। तिस पर भी घनघोर घटायें उठ रही थीं। मेघकी गर्जन सुनकर मैं थर थर काँपने लगी। मैं मन ही मन सोच रही थी यहाँ अच्छी आकर फँसी। उसी समय मुझे एक अत्यंत ही मधुर स्वर सुनाई दिया—"डरो मत, मैं तो हूँ।" मुझे बल मिला। मैंने पुकारा—"श्यामसुन्दर !"

वे बोले—"हाँ मैं ही तो हूँ।" यह कहकर वे मेरे पास आ गये। उस समय मैं काँप रही थी। शरीरके वस्त्र भीग गये थे। उन्होंने आते ही मुझे अपनी काली कमलीसे ढक लिया। हृदयसे सटाकर मेरे कानमें प्यारसे बोले—"डर गईं क्या ?" अहा ! उस समय उनके मृदुल अधरोंके स्पर्शसे मुझे कितना संबल मिला। मेरा समस्त श्रम, भय, शोक, मोह और दुःख कपूरकी भाँति उड़ गया। उन्होंने मुझे सरसतामें हिला दिया। रस वर्षाकर आर्द्र हुई मुझे और भी अधिक आर्द्र कर दिया। एक नहीं ऐसी न जाने कितनी कितनी अतीत की सुखद स्मृतियाँ हैं।

वे सुखके निधान थे, सरसताके समुद्र थे। इतना सुख देकर आज वे ही दुख दे रहे हैं वे सुख ही अब हृदयमें हूल उत्पन्न कर रहे हैं। वे किस प्रकार हँसकर बोलते थे। कितनी आत्मीयतासे मिलते थे, कैसी मधुर ममताभरी वाणीसे बोलते थे। वे स्वयं घन थे। ये बादल तो वर्षा ऋतुमें ही जलकी वर्षा करते हैं, किन्तु वे श्यामघन बारहा महाने रसका वर्षा किया करते थे। आज इन उमड़ती घुमड़ती घटनाओंको देखकर श्यामका स्वरूप याद आता है, छाती फटी जाती है। क्या कभी राम श्याम पुनः आकर व्रजमें वर्षा बितावेंगे? क्या वे पुनः कभी आकर हमारे तनकी तपन बुझावेंगे। अपनी रसवर्षासे हमारे, नीरस और शुष्क हृदयको सरस बनावेंगे। हरियाली तीज, नागपंचमी, रक्षाबन्धन सभी तो बीत गये। कृष्णाष्टमी है, यशोदा मैया आजके दिन कैसा उत्सव मनाती थी। घर घरमें उत्सव होता है। किन्तु हमारा उत्सव तो नित्योत्सव स्वरूप श्यामसुन्दरका मुख था। उस वदनारविन्दको जब हम जोह लेतीं तो हमारा क्षण क्षणमें उत्सव होता। श्यामके बिना जब उत्साह ही नहीं तो उत्सव कैसा।"

एक सखी बोली—"सखियो! वर्षा ऋतु तो बीत रही है, किन्तु हमारे लिये तो सदा वर्षा ही बनी रहती है। हमारे हृदयमें घनश्याम प्रतिपल उमड़ता घुमड़ता रहता है। गरजकर ही रह जाय, सो बात नहीं वह नयनों द्वारा निरन्तर नीर बरसता रहता है। वर्षामें तो कभी पानी बन्द भी हो जाता है, कभी कभी सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश भी दिखाई देता है, किन्तु हमारे नयनोंका नीर तो कभी रुकता ही नहीं। निशिवासर बरसाता ही रहता है। सदा घनघटा छाई रहती है। दादुर, मोर, पपैया, सारस, चक्रवाक, जल कुक्कुट तथा अन्यान्य जलप्रिय पक्षी अपनी अपनी वाणीमें बोल रहे हैं। घनोंको बुला रहे हैं। उनकी वाणी

सुनकर मेघ आते हैं और बरस जाते हैं, किन्तु हमारे घनश्याम निर्दयी हैं, वे दया नहीं दिखाते, वे नहीं आते। वे हमें तरसाते हैं। दुःख देते हैं, कैसी विपत्ति है।"

एक बोली—"सखियो! वर्षा तो बीत गई अब तो शरद ऋतु आ गई। देखो ये वनके वांस सरकंडे कैसे फूल रहे हैं। श्यामके संग हम भी पहिले शरदके आगमनपर फूली फूली डोलती थीं। अब तो हमारा मदनमोहनके मुख जोहे बिना मन मुरझा गया है। देखो, यह शारदीय कमल कैसा खिल गया है, किन्तु कृष्णके बिना हमारा मनमुकुर और भी सिकुड़ गया है, देखो, वर्षाका गँदला जल कैसा स्वच्छ हो गया है, इसकी धूलि मिट्टी सब नीचे जम गयी है, किन्तु कृष्णविरहमें गँदला हुआ हमारा चित्त अभी तक स्वच्छ नहीं हुआ। इसमें विषाद रूपी गँदलापन ज्योंका त्यों बना हुआ है। देखो, इस पृथिवीकी कीच सूख गई है। किन्तु हमारी आँखोंकी कीच नहीं सूखी। वह आँखोंकी कोरोंमें जमती जाती है। आज य चन्द्रमा अपनी पत्नियोंसे घिरे कैसे हँस रहे हैं। कभी हम भी श्रीकृष्णको घेरकर ऐसे ही बैठती थीं, स्वयं हँसती थीं उन्हें हँसाती थीं। श्रीकृष्णके साथ हमारी हँसी भी मथुरा चली गई। अब हम दिनरात विरह-में रोती ही रहती हैं। वह दिन कब होगा जब इन शरदकी रात्रियोंमें राधारमण पुनः आकर पूर्ववत् रास रचेंगे। हमारे साथ नाचेंगे, गावेंगे। ताता थेई करेंगे शरदके दिन तो उतने सुखकर नहीं होते, क्योंकि आकाशके स्वच्छ होनेसे धूप कड़ी हो जाती है, इसी धूपसे हरिन काले हो जाते हैं, किन्तु दिनभरके ताप संताप-को रात्रिमें चन्द्रमाकी शीतल किरणें शान्त कर देती हैं, किन्तु हमारे लिये तो जैसा ही दिन वैसी ही रात्रि। हमारे पीछे तो यह पापी विरहा पड़ा हुआ है। यह हमारे रक्तमास को खाता जाता है। जब शरीरमें रक्तमास न रहेगा. तो यह कूकर हाड़ चबा-

वेगा। कृष्णवियोगरूपी संताप सदा हमें जलाता रहता है, निरन्तर कालेकी चिंतना करते-करते हमारा हृदय भी काला पड़ गया है। हाय! ये शरद्‌की सुखदायिनी निशायें भी बिना कृष्णके बीत जायँगी। रासकी वे रात्रियाँ क्षणके समान बीत जाती थीं, अब ये पहाड़ जैसी रात्रियाँ कैसे कटेंगी।

शरद समझकर वे बनजारे व्यापारको जा रहे हैं, राजा लोग सेना सजाकर युद्धके लिये जा रहे हैं। सन्यासीगण चातुर्मास्यव्रत समाप्त करके पर्यटनके निमित्त जा रहे हैं। श्रावणमें पितृगृहमें आयी हुई लड़कियाँ अपनी-अपनी ससुरालोंको जा रही हैं। हमारे लिये जाने का कहीं ठिकाना ही नहीं। हमारे जानेका तो एक ही स्थान है मथुरा। वहाँ हमारे ऊपर रोक लगी हुई है। हमारी सौति कूबरीने पहरा बैठा दिया है। सौति तो कच्चे चूनकी बुरी होती है, सो वह तो टेढ़ी है, कुटिल है। कूबरी है। वह हमें हमारे हृदयधनके समीप क्यों जाने देगी। वैसे मथुरा कुछ दूर तो नहीं है। सामने जो बड़े बड़े वृक्ष यमुनाके तटपर दिखाई देते हैं वही तो मथुरा है। किन्तु हमारे लिये तो वह सात समुन्दर पार है। कैसे हम वहाँ तक जायँ। पंख होते तो उड़कर चली जातीं। देखो ये पक्षी उड़कर उधर ही जा रहे हैं। निश्चय ही ये श्यामसुन्दरको देखने ही जा रहे होंगे। हाय! हम पक्षी होतीं तो प्यारेके छज्जे पर बैठकर उनके मुखको जोहती रहतीं। हमें उनका स्पर्श प्राप्त न हो तो कोई बात नहीं। हम तो दर्शनोंकी भूखी हैं।"

अन्य सखी बोली—"बहिनाओ! शरद बीत गई। हेमन्त ऋतु आ गई। शीतल वायु तीरके समान शरीरमें चुभ जाती है। गरम वस्त्र, गरम अन्न, अग्नि, धूप और मधुर वस्तुएँ अत्यंत प्यारी लगती हैं। रुई धुंई और दुई जाड़े जानेके तीन उपाय हैं। किन्तु इन तीनोंके बिना ही हमारा जाड़ा तो वैसे चला गया।

जाड़ा भी अब हमारे सम्मुख आनेमें डरता है। अब तो हमारा हृदय सदा श्रीकृष्ण विरहानलमें जलता रहता है। जहाँ अग्नि है वहाँ शीत कहाँ? वे कितने सुहावने दिन लगते थे श्यामसुन्दर के साथ। जैसे अग्नि जला लेनेपर अंधकार, भय और जाड़ा तीनों एक साथ भग जाते हैं, वैसे ही श्रीकृष्णकी छत्र छायामें हमारे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुख भग जाते थे। शारीरिक, वाचिक और मानसिक संताप दूर हो जाते थे। उनकी अंक गरमियोंमें शीतलता और जाड़ोंमें उष्णता प्रदान करने वाली थी। लोकमें कहावत तो ऐसी है।

नारि पतौआ कूप जल, अरु बरगदकी छायँ।
गरमीमें शीतल रहें, जाड़ेमें गरमायँ॥

किन्तु यह उक्ति हमें तो श्यामसुन्दरकी छत्र छायामें अक्षर शः उक्ति प्रतीत होती थी। आज तो निशिदिन बारह महीने हमारा हृदय जलता रहा है। हमारे लिये तो सदा एक ही ऋतु हो गई है, वह है उष्णता। श्यामके साथ रुचिर स्वादिष्ट भोजन कुन्जोंमें करके कितनी सुखानुभूति की थी। आज हम श्यामसे रहित होकर सिर धुन धुनकर सी सी करती हुई इन जाड़ेके दिनोंको बिता रही हैं। इन्हीं दिनोंमें श्यामने हम कुमारी कन्याओं के चीर हरण किये थे और शरदकी रात्रिमें रास-विलासमें सम्मिलित होनेका वर दिया था। वह वरदान अब हमारे लिये अभिशाप हो गया। वे सुखद घड़ियाँ हमें दुख देने वाली बन गईं।

शिशिर ऋतुमें तो उनके रोम रोमसे सरसता फूट निकलती। वे गुलालकी झोली भरे रंगकी पिचकारी लिये घूमते ही रहते। घाटमें बाटमें हाटमें जहाँ भी देखते वहीं वे हमें रंगमें सराबोरकर देते। निर्भय होकर मुँहमें अबीर गुलाल मल देते। हम उन्हें पकड़ लेती। लँहगा फरिया पहिनाकर नचाती। वे बेधड़क होकर

नाचते और हमें हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर देते। कभी उनमें परायापना तो हमने समझा ही नहीं। जैसे अपने प्राणोंसे ममता है उससे भी अधिक उनमें ममता हो गई थी। उन्हें छूनेमें उन्हें हृदयसे सटानेमें कभी हमने संकोच नहीं किया। अधर्म नहीं समझा। जब वे हमारी आत्मा हैं, प्राणोंके प्राण हैं तब संकोचकी कोई बात ही नहीं थी। फिर भी उन्होंने अंत तक निभाया नहीं। हमें अधरमें छोड़कर चले गये। एकान्तमें जब वे बातें करते, तो ऐसा लगता था, मानों कानोंमें अमृत उड़ेल रहे हों। वे जो भी बात करते वही उनकी बड़ी प्यारी लगती थी। उनकी सभी बातोंमें बड़ा भोलापन था। वे हँसते हुए बातें करते। उनका मुख सदा मुसकराहटसे युक्त रहता था। जैसा उनकी वाणीमें आकर्षण था वैसेही उनकी आँखोंमें जादू था। एक बार उन्हें कोई देख भर ले। चार आँखें भर हों जायँ, फिर वह उनकी दासी बन ही जाती थी। उनसे मान तभी तक निभ सकता था, जब तक उनसे आँखें न मिलाई जायँ। आँखें मिलते ही रोष, क्रोध, मान तथा रूठना सब कपूरकी भाँति उड़ जाता था।

इसपर दूसरी बोली—"हाँ बहिन, तुम्हारा कथन सत्य है। उनके नेत्रोंमें ऐसा ही कोई वशीकरण था। उस दिन न जाने कौन सा पर्व था। ग्वालबालों की गोष्ठी करनी थी, वन भोजन था। हम सब सखियोंने सभी सामग्रियाँ बना के सजा के रखीं। ग्वालबाल हा हा हू हू करते हुए छाक खाने बैठे। न जाने उन्होंने क्या कह दिया, मैं रूठ गई। मैंने कहा—"मैं ग्वालबालोंके समीप परसने न जाऊँगी, न जाऊँगी।" सखियोंने समझाया ऊँचा नीचा बताया किन्तु मेरी हठ ही जो ठहरी। मैंने कह दिया चाहे जो हो मैं जाने की हाँ नहीं। सखियाँ निराश हो गईं। जिस उमंगसे उत्सव मनाना था, उसमें शिथिलता आगयी। वातावरणमें

उदासीनता आ गई। उन्हें तो उदासीनता भाती ही नहीं थी। चहल पहलही, धूम धड़ाका हो, हँसी विनोद हो माखन मिश्री उड़े, ज्यौनार हो ये ही सब बातें उन्हें प्रिय थीं। मैं मुँह लटकाये अकेली निभृत निकुंजमें बैठी थी। वे चुपकेसे मेरे समीप आये और गुलगुली करने लगे। मैंने कहा—"हटो मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती, हर समय की छेड़ छाड़ उचित नहीं। मैंने कह दिया मैं न जाऊँगी।" ये सब बातें मैंने नीचा मुख किये हुए कहीं। मैं जानती थी इनकी चितवन में जादू है। किन्तु वे माने हो नहीं। मैंने तुनककर कहा—"देखो, तुम न मानोगे तो मैं अभी चिल्लाती हूँ।" उन्होंने मेरे मुखपर हाथ रखकर मेरी दृष्टि में अपनी प्यारी प्यारी दृष्टि घोल दी। चार आँखें होतेही मैं सब कुछ भूल गई और पालतू हिरनी की भाँति उनके पीछे पीछे होली। हाय! कैसा उनका मनोहर मुख था। कैसी उनकी रसीली रसभरी बड़ी बड़ी आखें थीं। वे देखते क्या थे मानों अमृत छिड़कते थे। जीवनमें अब ये सब बातें काहे को मिलेंगी। ऐसे ही उन बातोंको याद करके तड़फ तड़फ कर हम मर जायँगी। ऐसे अपने प्राणोंको गँवा देंगी। पापी प्राण शरीरको छोड़कर निकलते भी नहीं। हाय हमें अमृत पिलाकर अब विप के समुद्रमें डुबो दिया है। सुखकी वे घड़ियाँ स्वप्नके समान हो गई। उनकी एक एक बात स्मरण करके छाती फटती है, हृदय धक धक करता है। कहाँ जायँ, क्या करनेसे श्याम मिलेंगे। जीवनकी यह जीर्ण शीर्ण नौका कैसे पार लगेगी। कैसे ये विपत्ति के दिन कटेंगे। हाय! उस दिन हमारी बुद्धि मारी गई। उसी दिन श्यामको पकड़ लेतीं जाने ही न देती, तो ये दिन काहेको देखने पड़ते उनसे लिपट जातीं। अक्रूर तो अकेला ही था। हम इतनी थीं, हमारी इच्छाके विरुद्ध वह ले कैसे जा सकता था, किन्तु उस समय हमें कुछ सूझाही नहीं। पाषाणकी मूर्ति बनी

भगवान् और उद्धवजी

(१०५७)

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ।
गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४६ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

इत ब्रज वनिता विरह वारि महँ डूबति उतरति ।
उत यदुपति करि यदि सखिनिकी होत दुखित अति ॥
परम सुहृद निज सखा सचिव उद्धव ढिँग आये ।
निरखि परम एकान्त रहस्यमय वचन सुनाये ॥
सखे ! करो इक काज तुम, वृन्दावन महँ जाइकें ।
करो सुखी सब सखिनि कूँ, शुभ सन्देश सुनाइकें ॥

हम जो शब्द बोलते हैं, वह सम्पूर्ण वायुमंडलमें व्याप्त हो जाता है, उसे या तो योगी लोग योग प्रभावसे ग्रहण करते हैं, या आधुनिक यन्त्रमें कहनेसे जहाँ जहाँ उससे सम्बन्धित यन्त्र होता

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने सखा और मंत्री उद्धवजी से कह रहे हैं—"हे उद्धवजी ! तुम व्रजको जाओ ! हमारे जो माता पिता नंद यशोदाजी हैं उन्हें प्रसन्न करो । और हे सौम्य ! जिन गोपिकाओंको मेरे वियोगके कारण मानसिक व्यथा हो रही है, उनको भी मेरा सन्देश सुनाकर शान्त करना ।"

हैं वे लोग ग्रहण कर लेते हैं। वायुमंडल एक है। शब्द एक है नित्य है केवल उसे ग्रहण करनेको एकता चाहिए। एकताके बिना वह ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार हृदय सबका एक है और, प्रेम एक है। जहाँ दो हृदय मिल जाते हैं, वहाँ देश कालका व्यवधान रहता नहीं। दूर रहनेपर भी हृदय हृदय की गति को पहिचान लेता है। जैसे चन्द्र को देखकर चन्द्र कान्तमणि स्वाभाविक ही द्रवित हो जाती है, वैसे ही जो दो प्रेमी एकान्तमें बैठकर जो विचार करते हैं, उन दोनोंके विचार टकराते हैं और दोनों का ही हृदय अतीत की स्मृति करते करते एक हो जाता है। यह कभी हो ही नहीं सकता कि एक प्रेमी जिसका निरन्तर चिन्तन करे और दूसरे पर उसका कुछ प्रभाव न पड़े जिसको हम स्मरण करेंगे उसका चित्त स्वभाविक हमारी ओर खिंचेगा। इस खिंचाव में ही तो जगतकी स्थिति है। सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींच रहे हैं और पृथ्वी सूर्यको। दोनों ओरके खिँचावके कारण ही यह पृथ्वी अधरमें लटकी हुई है। प्रेमकी पुकार बड़ी सबल होती है। वह व्यवधानोंको मिटा देती है। प्रेमकी मधुर मधुर स्मृतिओंमें इतना भी बल न हो, तो प्रेमी एक दूसरेकी मधुमयी स्मृतिसे इतने सुखी क्यों हो। क्यों कोई किसी को स्मरण करे। कारण जितना ही प्रवल होगा उतनी ही एकाग्रता बढ़ेगी। फिर वियोग जन्य दुख विलीन हो जायगा। अखण्ड प्रेम समाधि लगेगी। ध्यान धारण और समाधि इन तीनों का ही नाम तो संयम है। भाव की समाधिमें क्या सुख है कैसा स्वारस्य है, इसे भावुक भक्त ही जान सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ताली एक हाथसे नहीं बजती प्रेमकी अग्नि दो हृदयोंमें एक साथ उत्पन्न होती है। और दोनों ओर सुगलती रहती है। जिस प्रकार नन्दयशोदा, ग्वालबाल तथा अन्यान्य ब्रजवासी कृष्ण-वियोग में दुखी हो रहे थे जिस प्रकार

ब्रजवनितायें विरह वेदनासे विकल बनी हुई थीं उसी प्रकार श्यामसुन्दर का हृदय भी अपनी प्रेयसियों के लिये छटपटा रहा था। किन्तु आन्तरिक वेदना, मन की व्यथा, सबके सम्मुख तो प्रकट की नहीं जाती। वह तो अत्यंत अंतरंग सखा सखियोंसे कही जा सकती है एक रोगके दो रोगी ही आपसमें पीड़ा का अनुभव कर सकते हैं। जिसके पैरमें बिवाई फटी ही नहीं वह पराई पीर को क्या समझ सकता है जिसने रसगुल्ला खाया ही नहीं उसकी जिह्वामें उसके स्मरणसे पानी कैसे भर सकता है? जिसने कभी प्रेम किया नहीं उसे विरह की विकलता का अनुभव कैसे हो सकता है। जिस प्रकार गोपिकायें दुखी थीं, उसी प्रकार श्यामसुन्दर भी दुखी थे। गोपिकायें अनेक थीं वे अपने दुखको आपसमें कह सुनकर बाँट लेती थी। रो धोकर समय को काट लेती थी, किन्तु कृष्ण क्या करते वे तो प्रेमके राज्य-व्रज को छोड़कर नियकके राज्य-मथुरा में आगये थे। यहां तो यह नियम यह उप नियम यह विधि यह विधान यह उचित यह अनुचित यह ग्राह्य यह त्याज्य ये सब पचड़े थे। रसिक की बात रसिक ही समझ सकता है। विधि निषेध में धर्म पाला जा सकता है, रसिकता का निर्वाह उसमे कैसे हो यहां तो सब नियमी थे। श्रीकृष्ण अपनी आन्तरिक वेदना को किसी सहृदयके सम्मुख व्यक्त करने को उत्सुक थे किन्तु उन्हें उस पुरीमें ऐसा कोई पात्र दृष्टिगोचर ही न हुआ।

यदुवंशियोंमें एकसे एक ज्ञानी थे, बड़ेसे बड़े बुद्धिमान थे ऊँचेसे ऊँचे शास्त्रज्ञ थे। सुन्दरसे सुन्दर सद्गुणोंसे युक्त सज्जन थे किन्तु मन गुणों को देखकर नहीं मिलता प्रकृति मिलने से मन मिलता है। दही भी खट्टा होता है और कांजी भी खट्टी होती है। खट्टे दहीसे दूध जम जाता है, किन्तु खट्टी कांजीसे वह फट जाता है। दूध दही की प्रकृति मिली हुई है।

यादवों के राज्यसंघमें जो सदस्य या सामन्त होते थे, उन सबका एक एक निजी मंत्री रहता था। संघसचिव पृथक होते थे और व्यक्तिगत मंत्री पृथक। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पिता १० भाई थे वसुदेवजी से छोटे देवभाग थे। भगवान् के वे सब से बड़े चाचा थे। उन्हीं के पुत्र श्रीउद्धवजी थे। इनका नाम बृहद्बल था, किन्तु अत्यन्त उत्सव स्वरूप होने से इन्हें सब 'उद्धव' कहने लगे थे। पूर्व जन्म में ये बृहस्पतिजी के पुत्र तथा शिष्य रहे। बृहस्पतिके ही समान ये बुद्धिमान थे। पूर्व जन्मके ही सद्गुण दुर्गुण दूसरे जन्ममें प्रकट होते हैं। इसीलिये वृष्णि वंशमें सबसे अधिक बुद्धिमान माने जाते थे। भगवान् के समवयस्क थे भगवान की माता देवकीजी और उद्धवजीकी माता कंसा दोनों चचेरी बहिन थीं। दोनों के पिता भी भाई भाई थे। अतः दोनों का रंग रूप भी एक सा ही था। बालकपन से ही उद्धवजी की तीक्ष्ण बुद्धिकी प्रशंसा चारों ओर फैल गयी थी। ये परम भगवद्भक्त थे। बालकपन में जब ये बालकों में खेलते थे तो भगवान की प्रतिमा बनाकर ही खेलते थे भगवान्की खेल खेलमें ही पूजा करते करते ऐसे तल्लीन हो जाते कि माता मध्याह्न के समय भोजन करने बुलाती तो भी ये पूजा छोड़कर नहीं जाते थे। बड़े सुशील, बड़े शान्त अत्यन्त दान्त, महान् तपस्वी तथा परम तेजस्वी थे। कहना चाहिए गुणोंमें और स्वभाव में प्रायः भगवान् के समान ही थे।

आते ही भगवान् इन्हें ताड़ गये, इनके गुणों पर इनके सरल स्वभाव और भक्तिमय जीवन को देखकर रीझ गये और इन्हें अपना निजी मंत्री बना लिया! इनकी बुद्धिमत्ता और नीति पटुताके लिये तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि ये देव गुरु बृहस्पतिजी से पहिले विद्या प्राप्त चुके थे। भगवान् ने इन्हें

अपना निजी मन्त्री बना लिया। मन्त्री भी ऐसा वैसा वेतनभोगी नहीं। इन्हें अपना आन्तरिक सखा स्वीकार कर लिया। यद्यपि ये ज्ञाननिष्ठ थे, किन्तु फिर भी भगवान् के प्रति भक्ति तो उनकी थी ही। ज्ञानी हो, कर्मकांडी हो, योगी हों अथवा भक्तिमार्ग का पथिक भगवान् योग ज्ञान तथा विद्या नहीं देखते। वे तो अन्तर्भाव देखते हैं। वे तो सभी के हैं; जो उन्हें जिस भाव से भजेगा। उसे वे उसी भावसे दर्शन देंगे। वे तो भावग्राही ठहरे।

एक तो उद्धवजी वैसे ही समस्त यदुवंशी तथा वृष्णि वंशियों में श्रेष्ठ थे तिसपर भी भगवान् ने उन्हें अपना करके स्वीकार कर लिया था। वे उनके सखा थे, सुहृद् थे, सम्मतिदाता थे। अनुचर थे और थे हार्दिक मित्र। भगवान इनसे कोई बात नहीं छिपाते थे। रहस्य से रहस्यमयी बातें इन्हें बता देते थे।

उद्धवजी ने देखा, भगवान् अनमने से बने रहते हैं। कई दिन एकान्तमें उन्हें रोते भी उद्धवजी ने देखा। इससे उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। सर्वव्यापक, पूर्णकाम, परात्पर प्रभु रोते क्यों हैं, इन्हें क्या कष्ट है, इनके लिये कौनसी वस्तु अप्राप्य है। यह उनके सम्मुख एक जटिल समस्या आकर उपस्थित हो गई।

एक दिन भगवान एकान्तमें वैठे थे, उद्धवजी उनके दोनों अरुण मृदुल चरणोंको अपनी गोदीमें रखकर सुहला रहे थे. भगवान् अत्यन्त प्रेमभरी चितवनसे उनकी ओर निहार रहे थे। आज भगवानको अपने परम अनुकूल देखकर और एकान्त समझकर उद्धवजीने पूछा—"प्रभो! मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, किन्तु पूछनेमें संकोच लगता है।"

सम्पूर्ण ममता बटोरकर अत्यन्त प्यारसे भगवान् बोले—

"उद्धव! भला अपनोंसे भी संकोच किया जाता है क्या? संकोचकी कौन सी बात है, तुम्हें जो पूछना हो, निस्संकोच होकर पूछो।"

रुक रुक कर उद्धवजी बोले—"प्रभो! मैं पूछना यह चाहता हूँ, कि आप सदा अनमनेसे क्यों बने रहते हैं? कई बार मैंने आपको एकान्तमें रोते भी देखा है? आपको ऐसी कौन सी मर्मान्तिक वेदना है? यही मैं जानना चाहता हूँ।"

इतना सुनते ही भगवान् के बड़े बड़े कमलके सदृश विशाल नेत्रोंकी कोर से टपटप करके अश्रु गिरने लगे। वे अपने को सम्हाल न सके और उद्धवजी की गोदी में सिर रखकर बालकों की भाँति फूट फूट कर रोने लगे। उद्धवजी ने अपने प्रसादी पीताम्बर से प्रभुके अश्रु पोंछे और उनके सिरको सुहलाने लगे। उनकी भी आँखें आर्द्र हो रही थी।

कुछ काल में भगवान् स्वस्थ हुए मुख पोंछकर गद्‌गद वाणी से बोले—"उद्धव! तुम ही मेरी मानसिक पीड़ा को समझ सकते हो। इन स्वार्थी अन्य यादवों में से कुछ तो आर्त हैं, कुछ अर्थार्थी हैं, कुछ जिज्ञासु हैं और कुछ ज्ञानी ध्यानी भी। मेरी पीड़ाको तो भक्त ही समझ सकता है। तुमने सचमुच में मेरे मर्मस्थान को पकड़ा है। मुझे विरह जन्य दुख है।"

आश्चर्यके साथ उद्धवजीने पूछा—"प्रभो! आपको और विरह? विरह तो अपने से कोई पृथक हो और दूर देश में स्थित हो उसकी होती है। आपसे पृथक तो कोई है ही नहीं। विश्व ब्रह्माण्ड आप के उदरमें है। आपको किसका विरह है?"

यह सुनकर शरणागत भयहारी भगवान्ने अपने परमभक्त अत्यन्त सुहृद, सच्चे सचिव, एक परम आत्मीय श्रीउद्धवजी के कोमल हाथ को अपने श्रीकरकमल से दबाते हुए

बोले—"उद्धव ! मुझे ब्रजवासियों की याद आती है। पे
मेरी मैया यशोदा मुझे कितना प्यार करती थी। नन्द बा
मुझसे कितना स्नेह करते थे। ग्वाल बाल मुझे कितना चाहते
और उन ब्रज वनिताओंने तो मेरे ऊपर सर्वस्व वार दि
था। वे तो अपना सब कुछ मुझे ही समझती थीं। आज उन
बिना मैं दुखी हूँ, मेरा हृदय निरन्तर रोता रहता है। कर्त
वश होकर मुझे इन महलोंमें रहना पड़ता है, नहीं मुझे
ब्रज के गाष्ठ अत्यन्त प्यार हैं। इन सभ्य कहलाने वाले स
सदों से दिन भर राज सभा मे रक्षा, न्याय, राजकर और
न जाने किन किन शुष्क विषयों पर व्यर्थका वाद वि
करना पड़ता है। गोपिकाओंकी वे रसभरी प्यारी प्यारी ब
सुनने को नहीं मिलती। जब वे प्रेमकोप में भरके मुसकरा
हुई अपने कोकिल कूजित कंठों से बातें करती थीं तो ऐ
लगता था मानो कोई परम सुस्वादु सुधाको कानों मे उड़ेल र
हैं। हृदयमें उनके सहवास से कितनी सुखानुभूति होती थी। श्र
यहाँ उन गोपाङ्गनाओंके दर्शन भी नहीं। वे भी मेरे लिये रो र
होंगी। छटपटा रही होंगी, निरन्तर अश्रु बहा रही होंगी।"

उद्धवजीने कहा—"यह तो उनकी भूल है। आप तो घ
घटमें रहने वाले हैं, अन्तर्यामी हैं। सबके हृदयप्रदेश
समानभाव से विराजते हैं। जैसे प्राणी पंचभूतोंसे पृथक न
रह सकता, वैसेही आप किसीसे कभी पृथक नहीं हो सकते
आपके बिना किसी की सत्ता ही नहीं। गोपियोंके हृदयमे भ
आप सदा सर्वदा निवास करते हैं। वे इसका अनुभव न
करतीं, तो यह उनका अज्ञान है। वे तो स्त्री हैं, अनपढ़ है
गाँवकी गँवारिन हैं। वे भूल करें तो करें, आप ऐसी भूल क्यों
करते हैं।"

भगवान् बोले—"क्या करूँ ? जब वे मेरी याद करती हैं, त

मुझसे रहा नहीं जाता। उनका प्रभाव मुझपर पड़ता ही है। जो मेरे लिये रोता है, उसके लिये मैं विना रोये रह नहीं सकता।"

उद्धवजीने कहा—"महाराज! उनका रोना तो पागलपन है। किसीके कंठमें माला पड़ी है वह उसे भूल गया। अब रोता है, चिल्लाता है हाय! मेरी माला खो गई। कोई उसे दिखा भर दे, कि माला तो तेरे कंठमें ही है। इतना ज्ञान होते ही, उसका समस्त शोक संताप दूर हो जायगा। गोपियोंको यही समझानेकी आवश्यकता है, कि जिन श्यामसुन्दरके लिये तुम रोती हो, वह तो सर्वगत सर्वान्तर्यामी तथा सर्वव्यापक हैं। उन्हें तुम भूलसे बिछुड़ा हुआ समझती हो वह तो तुम्हारे भीतर ही बैठे हैं।"

भगवान् अत्यन्त प्यारसे बोले—"तो भैया! तुमसे अच्छा और समझानेवाला मुझे कौन मिलेगा तुम व्रजमें चले जाओ। जाकर मेरे वियोग दुखमें दुखी माता पिताको प्रमुदित करो। गोपग्वालोंको मेरी कुशल कहो और जिन गोपिकाओंको मेरे वियोगके कारण अत्यन्तही मानसिक वेदनाहो रही है उन्हें समुझा कर सन्तोष देकर, मेरा संदेश सुनाकर शान्त करो, सुखी करो।"

उद्धवजीने पूछा—"वे व्रजाङ्गनायें कुछ पढ़ी लिखी भी हैं?"

भगवान्ने भोलेपनसे कहा—"यह तो मुझे पता नहीं भैया! किन्तु इतना मैं जानता हूँ, कि उनका चित्त हर समय मुझमें ही लगा रहता है। सोते जागते, उठते बैठते, चलते फिरते, घरका काम काज करते वे मेरे ही सम्बन्धमें सोचती रहती हैं। मैं ही उनका मन हूँ, मैं ही प्राण हूँ, मेरे लिये ही वे जीती हैं, मेरे निमित्त ही उन्होंने लौकिक पति पुत्रोंको, सगे सम्बन्धियोंको, सुहृद स्वजनोंको तथा अन्यान्य सभी प्रियजनोंको त्याग दिया है। इसी लिये मुझे उनकी हर समय चिन्ता बनी रहती है। जो लोग मेरे

लिये अपने सम्पूर्ण लौकिक तथा पारलौकिक धर्मोको छोड़ उनका निर्वाह तो मुझे करनाही पड़ता है, उनके समस्त पोषणका भार मैं अपने ऊपर ले लेता हूँ, उनका योगक्षेम अधीनहो जाता है।

उद्धवजी बोले—"आपने उन्हें समझाया नहीं मैं घट घटव हूँ, सबके अन्तःकरणमें समान भावसे रहता हूँ।"

भगवान् प्यारसे बोले—"देखो, भैया ! उद्धव ! प्रेममें उप नहीं दिया जाता। उपदेश देना तो एक व्यवहारकी बातें हैं। प्रे मे तो प्यार किया जाता है। मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम मै उनसे दूर चला आया हूँ। इससे वे ब्रजाङ्गनायें निरन्तर स्मरण करती हुई विरहव्यथा से विह्वल होकर मोहित हो होंगी। वे मेरे आने की आशा लगाये बैठी होगीं। उन्हें पल भारी हो रहा होगा।"

उद्धवजीने कहा—"तो क्या उन्हें आशा है आप फिर ल कर उन गाँवकी गँवरिनियोंमें जाकर बसेंगे ?"

भगवानने कहा—"यही तो मुझसे भूल हो गई। च समय मैं उनसे कह आया था, कि मैं लौटकर अवश्य आऊँ मैं अभी तक गया नहीं। यदुवंशियोंमें ऐसा भीतर ही भी विरोध बढ़ रहा है, कि मैं अब जा भी नहीं सकता। मेरी अ से तुमही जाओ उन्हें ज्ञानका पाठ पढ़ा आओ और मेरा सं सुना आओ।"

उद्धवजीने कहा—"जैसी आपने उनकी स्थिति बताई उससे तो मुझे सन्देह होता है, कि उन्होंने प्राण न त्याग दि हों ?

भगवान् बोले—"नहीं ऊधो ! यह बात नहीं है। वे प्रा का परित्याग नहीं कर सकतीं। उन्हें मेरे आनेकी आशा लगी हुई है। उसी आशाके सहारे वे अभी तक जीवित होंगी

वे पल पलको युग युगके समान बिताती हुई मथुराकी ही ओर देख रही होंगी। यद्यपि उन्हें प्राण धारण करनेमें कोई अब आनन्द न रहा होगा फिर भी जैसे तैसे मेरा संदेश सुननेको वे शरीरोंको रखे होंगी। तुम जाकर उन्हें मेरी स्थिति बताना। मेरा कुशल क्षेम कहना और यह भी ज्ञान उन्हें करा देना कि मैं सर्वात्मा हूँ, तुमसे कभी पृथक नहीं हो सकता।"

उद्धवजीने कहा—"अच्छी बात है महाराज ! आपकी आज्ञा है, तो मैं आजही नन्दजीके व्रजमें जाऊँगा और यथामति उन गोपिकाओंको आपका रहस्य बताऊँगा। ज्ञानका पाठ पढ़ाऊँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह कहकर उद्धवजी व्रज जाने की तैयारियाँ करने लगे।"

छप्पय

स्वामीको सन्देश सुन्यो सिर उद्धव धारयो।
नन्दगाँवकूँ जाउँ सोचि रथ सुघर निकारयो॥
पाग दुपट्टा पहिन चले रथ चढ़ि व्रज ऊधो।
वृक्ष लतनितें घिरयो निहारयो दगरो सूधो॥
सरस भूमि व्रजरज मृदुल, सघनकुञ्ज वन विटपवर।
वरसावत द्रुम सुमन शुभ, गुञ्जतवर मधुकर निकर॥

उद्धवजीकी व्रजयात्रा

(१०५८)

इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥*
(श्रीभा० १० स्क० ४६ अ० ७ श्लो०

छप्पय

धेनु खुरनिकी धूरि उड़ति रथ सो बरसावति ।
ढाँकति रथकूँ मनहु श्याम अनुराग दिखावति ॥
ऐन भार तें नमित धेनु इततें उत जावें ।
गैयनिके हित साँड़ लड़ें पुनि पुनि डकरावें ॥
ग्वालबाल बछरा लिये, बाँधत गोपी दुहति पय ।
कृष्ण विरह महँ व्यथित सब, दीखत व्रज अति दुःखमय ॥

किसी विशेष प्रयोजनसे किसी नवीन स्थानकी यात्रा करन पड़ती है, तो यात्रीके मनमें दो ही विषय घूमते रहते हैं। व प्रदेश कैसा होगा, उसकी शोभा कैसी होगी, वहाँ जाकर मैं अपन कार्यमें सफलता प्राप्त कर सकूँगा या नहीं। वहाँ जाकर मुझे क्या करना चाहिये। इस प्रकारके विचारोंमें मग्न हुआ यात्र

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! ऐसा कहकर और और अपने स्वामी श्रीश्यामसुन्दरके सन्देशको लेकर रथपर चढ़कर श्रीउद्धवजी नन्दगाँवकी ओर चल दिये।"

चला जाता है। जब उस नवीन स्थानको देखता है, तो उसे कुतूहल होता है और वह प्रत्येक वस्तुको आश्चर्य, उत्सुकता और संभ्रमके साथ निहारता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्‌की आज्ञा पाकर उद्धव जी व्रजकी यात्रा करनेकी तैयारियाँ करने लगे। आकार प्रकारमें-वे भगवान्‌के ही समान थे। उनके ही प्रसादी पीताम्बरको, वे धारण करते थे और उनकी ही प्रसादी मालाको पहिनते थे। भगवान्‌का ही उच्छिष्ट प्रसाद पाते थे. उन्होंने अपना पृथक् अस्तित्व रखा ही नहीं था। वे भगवान्‌में ही घुलमिल जाना चाहते थे। तभी तो भगवानने उन्हें इतना गुरुतर कार्य सौंपा था।

भगवान् जिस कंसके रथपर चढ़कर व्रजसे आये थे। जिस रथके पहिये, धुरा, जूआ, कील, काटें सभी गोपियों द्वारा छूए गये थे। जिस रथके आगे गोपिकायें लोट गयीं थीं, जिसके पीछे पीछे वे भागी थीं, उस रथको स्मृति स्वरूप भगवानने अपनी सवारीमे रख लिया था। वे जब भी उस रथमें बैठते तभो विदाई का दृश्य उनकी आँखोंका सम्मुख उपस्थित हो जाता और उन विरहमें व्याकुल हुई व्रजाङ्गनाओंकी भोली भाली आकृतियाँ चल-चित्रोंके सदृश उनके नेत्रके सम्मुख नृत्य करने लगतीं। प्रेमसे जिस वस्तुका सम्बन्ध है वही प्रेमको उद्दीप्त करता है। जिस स्थानमें प्रेमीसे समागम हुआ हो, जिस वस्तुका उसने व्यवहार किया हो, जिसपर वह बैठा हो तो वे सब उन बातोंको सदा सजीव करती रहती हैं। आज उद्धवको अपना प्रतिनिधि बनाकर व्रज भेज रहे हैं अतः भगवान्‌ने उन्हें उसी रथको दिया और कहा—"उद्धव! इस रथमें अनेक स्मृतियाँ निहित हैं। व्रजवासी इस रथ से भलीभाँति परिचित हैं। व्रजाङ्गनाओंकी आँखोंमें यह रथ निरन्तर गड़ा-सा रहता है, तुम इसी रथपर चढ़कर जाओ और उन्हें धैर्यके साथ मेरा सन्देश सुनाओ। आनेकी शीघ्रता मत

करना। जितने भी दिन लग जायँ, जब तक उन सबका भली-भाँति सन्तोष न हो जाय, तब तक तुम वहाँ बने रहना और यह पत्र मेरा लेते जाना। वे पढ़ी लिखी तो हैं नहीं तुम्हीं पढ़कर सुना देना।"

यह सुनकर उद्धवजी ने "जो आज्ञा" कहकर दोनों हाथ फैलाकर पत्र लिया, उसे सिरपर चढ़ाया और यत्नपूर्वक अँगरखा के खोसामें रख लिया। भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और रथकी परिक्रमा करके वे उसपर चढ़ गये। भगवान् खड़के खड़े ही रह गये। रथ चल दिया और आगे चलता ही चला गया।

रथ नन्दगाँवकी ओर जा रहा था। उद्धवजी चकित-चकित दृष्टिसे चारों ओर देखते जाते थे। कुछ कालमें नगरकी सीमा समाप्त हो गई, अब उन्होंने वन प्रदेशमें प्रवेश किया। सघन वृक्ष पथके दोनों ओर पंक्ति बद्ध खड़े थे। मानों वनकी रक्षाके लिये सशस्त्र सैनिक खड़े हों। और छोटे छोटे गाँव पथके इधर-उधर बसे हुए थे। कच्ची मिट्टीकी दीवालें उठाकर उनके ऊपर फूसके छप्पर डाल दिये थे। उन्हींमें ग्रामीण कृषक सुखपूर्वक निवास करते थे। वहीं उनके गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी तथा अन्यान्य पशु रहते थे। कहीं कहीं बोए हुए खेत खड़े थे। कहीं नीमोंके नीचे बालक धरुआपाती गुल्लीडंडा और लभेर वन्शी आदि खेल खेल रहे थे। कहीं गोपाल गौओंको चरा रहे थे, कहीं कृषक कन्धोंपर हल रखे बैलोंको हाँकते हुए जा रहे थे। कहीं ग्रामीण स्त्रियाँ घास खोद रही थीं कुछ घासके झोंकों और लकड़ोंके गट्ठरोंको लिये हुए लौट रही थीं। कहीं कूओंसे पुरोंके द्वारा जल निकाला जा रहा था, कहीं खेत निराये जा रहे थे। इस प्रकार किसानों और गायोंको देखते हुए उद्धवजी चले जा रहे थे।

गाँवोंका जीवन और गाँवोंकी शोभा देखकर उन्हें कुतूहल हो रहा था। जहाँ भी वे गोबरके कंडोंके बने बिटौरा देखते,

भूसे की ऊँची-ऊँची फूँसोंकी बनी बुरजियोंको देखते, वही समझ जाते कोई गाँव आ गया, तुरन्त खेलते हुए बालक दिखाई दे जाते। सुन्दर रथको देखकर बच्चे चारों ओरसे उसे घेर लेते और पूछते—"किस गाँवका रथ है, कहाँ जायगा।" उद्धवजी छोटे छोटे बच्चोंके मुखसे यह प्रश्न सुनकर हँस जाते और प्यारसे कहते—"मथुराका रथ है नंदगाँवको जायगा।"

बच्चे चुप हो जाते कौतूहलपूर्वक रथको देखते रहते, तब उद्धवजी आगे बढ़ जाते। कोई कोई नन्दगाँवका नाम सुनकर उद्धवजीद्वारा अपने सम्बन्धियोंको सन्देश भी पठाते। "उनसे हमारी रामराम कह देना। और कह देना हम लड़कीको बिदा कराने आवेंगे।" उद्धवजी सबके नाम लिख लेते और उन्हें आश्वासन दिलाते तुम्हारा सन्देशा हम पहुँचा देंगे।

उद्धवजी सोचते जाते। "कैसा सरल जीवन है, इन ग्रामीणों का। न कोई चाक चिक्य है न तड़क भड़क। दिनभर श्रम करना। दूसरोंके लिये अन्न उत्पन्न करना और शामको सुख पूर्वक सो जाना। इन्हें न मुद्राकी चिन्ता न, राजनैतिक दाव पेचोंसे प्रयोजन प्रकृतिके साथ ये मिल गये हैं। सभी ऋतुओंके धर्मोंके सहनेके अभ्यस्त हो रहे हैं।" इस प्रकार सोचते साचते वे चलते जाते। मार्गमें कहीं प्याऊ देखकर स्वयं जल पी लेते घोड़ोंको पिला देते और फिर चलने लगते। इस प्रकार चलते चलते उन्हें सायं-काल हो गया। वे नन्दगाँवके निकट पहुँच गये।

गोधूलिका समय अभी बीता था, भगवान् भुवनभास्करको अस्ताचलमें प्रस्थान किये अभी कुछ ही क्षण बीते थे। गौएँ वनसे चुगकर गोष्ठमें चली गई थीं, किन्तु उनके खुरोंकी उड़ी धूलि अभी ज्योंकी त्यों आकाश मंडलमें व्याप्त थी। उद्धवके रथको देखते ही व्रजकी धूरिने उसे घेर लिया। मानों श्रीकृष्ण दर्शनके लिये धूलिका कण कण उत्सुक था। पहिले भी श्रीकृष्ण

को लेकर यही रथ इसी धूलिमें होकर गया था। उस रथको पहिचानकर रज रथके चारों ओर इस आशासे व्याप्त हो गई कि संभव है श्यामसुन्दर लौट आये हों। जब उसने रथमें नन्दनन्दनको न देखा तो वह उद्धवजीकी आँखोंमें पड़ गई। मानों वे कह रही थीं कि तुम्हारी आँखोंमें धूलि पड़ जाय, जो तुम बिना श्यामके इस रथको लेकर आ गये हो। अथवा चारों ओर धूलि उद्धवजीसे लिपटकर घनश्यामके समाचारोंको पूछ रही हो। उद्धवजीने जब देखा, कि इस धूलिने तो मुझे चारों ओरसे घेर लिया। इनसे मैं क्या बातें करूँ, वे अवाक् रह गये। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और घोड़ोंको भगा दिया।

अब वे नन्दगाँवमें पहुँच ही गये। वहाँ उन्होंने साँड़ोंके बाँ बाँ शब्द सुने। गौओंके लिये साँड़ परस्परमें युद्ध कर रहे थे। छोटे छोटे सुन्दर सफेद रंगके बछड़े इधरसे उधर फुदक रहे थे। उन बछड़ोंमें अधिकांश सफेद ही रंगके थे। कुछ लाल थे। कुछ काले और कुछ चितकबरे। गोप उन्हें दूध दुहनेके लिये गौओंके स्तनोंसे पृथक् करना चाहते थे, वे स्तनोंको छोड़ना नहीं चाहते थे। मानों कह रहेहों, मेरी माँके स्तनोंसे पृथक् करनेवाले तुम कौन होते हो? बड़े बड़े ऐन वाली गौएँ ऐनके भारसे दबी हुई साँड़ोंके उपद्रवसे इधरसे उधर दौड़ रही थीं। बहुतसी गौएँ दुही जा रहीं थीं। गोदोहनके शब्दोंसे दिशाएँ प्रतिध्वनित-सी हो रही थीं। दुहनेवाले गोपोंके शब्दोंसे कुछ सुनाई ही नहीं देता था। कोई कह रहा था, बछड़ेको छोड़दो, कोई कहता था देखना बछड़ा सब दूध न पी जाय। गौ पुहना गई हो तो उसे बाँध दो। थनोंको ठंडे जलसे धो लेना। कोई कह रहा था दुहनी लाओ, दूध ले जाओ। उस गौको दुह लो उस माटमें दूध उड़ेल दो, देखो दूध छलकने न पावे। वह माट फेंनसे भर गया। फेंनको मारकर तब भरना।

इस प्रकार शौशालाओंमें शब्दोंको सुनते हुए उद्धवजी रथ को लेकर निकल गये, किन्तु उस कोलाहलमें किसी को रथ का शब्द ही सुनाई न दिया। आगे उन्होंने कान लगाकर सुना सभी राम और कृष्ण के गुणोंको ही गा रहे हैं। सब एकही विषयपर वाद विवाद कर रहे हैं। सब बलराम और कृष्णके चरित्रोंका ही मनन कथन और श्रवण कर रहे हैं। बहुतसे ग्वालबाल बाँसुरी बजाकर ही उसमें श्री कृष्ण सम्बन्धी गीतों को गा रहे हैं गोपिकायें सुन्दर वस्त्राभूषणों को धारण करके भगवान्के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। उन्हींके नामोंका तन्मय होकर कीर्तन कर रही हैं। घर घर से धूँआ निकल रहा है। वह धूँआ मानों आकाशसे कुछ कहने जा रहा है। उद्धवजी सबको शनैः शनैः देखते हुए जा रहे थे।

नन्द गाँवके गोप बड़े भक्त थे वे श्रीकृष्ण की विरह व्यथामें व्यथित थे। श्रीकृष्ण की उन्हें पुनः प्राप्ति हो भगवान्के दर्शन हों इस लालसा से, अग्नि, सूर्य, अतिथि, गो, ब्राह्मण, पितरों तथा देवताओं की पूजा कर रहे थे। उनकी मनोती मानकर अर्चन वंदन कर रहे थे। पूजाके समय जो धूप जलाई जा रही थी उसका धूँआ कपोतों की भाँति टेढ़ी मेढ़ी गतिसे उड़ रहा था। चौमुखे दीपक जल रहे थे। स्थान स्थान पर पूजा के लिये मण्डप बने हुए थे। उनमें सुगन्धित पुष्पोंकी मोटी मोटी मालायें लटकी हुई थीं। बिखरी हुई पूजाकी सामग्रियोंसे तथा माला बन्दन वारोंसे उन गोपोंके घर अत्यन्त ही मनोहर प्रतीत होते थे। मालाओंकी गंधके लोभसे रसलम्पट भ्रमर इधर उधर भ्रमण कर रहे थे। गाँवके आस पास सुन्दर फलवाले सघन वृक्षोंके बाग थे जिनमें पक्षी कलरव करके अपने अपने घोंसलोंमें सो रहे थे। उन उपवनोंके बीचमें छोटी छोटी पुष्करिणियाँ थी, जिनके किनारे हँस, सारस, चकवाक तथा अन्यान्य जलके आश्रय

में रहनेवाले पक्षी निवास करते थे। उन पुष्पकरिणियोंमें शुभ्र, स्वच्छ लाल और नीले कमल खिलते थे जो सूर्यास्त के समय सिकुड़ कर मूँद जाते और उनके ह्लाद पर हसती हुई सफेद लाल कुमुदिनियाँ विकसित हो जातीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार लौकिक वैदिक आभा-से आभासित उस नन्दगाँव की शोभा को निहारते हुए उद्धव जी व्रजराज नन्दजीके द्वारपर पहुँच ही तो गये। उद्धवजीने रथ एक ओर खड़ा कर दिया और वे चुपकेसे चोर की भांति ज्योंही रथसे से कूदे त्यों ही अथाँईसे घरमें जाते हुए नन्दजीकी उनपर दृष्टि पड़ गई नन्दजी तो इन्हें जानते ही थे। पहिले तो उन्हें भ्रम हुआ कि श्रीकृष्ण ही आ गया। फिर ज्यों ही आगे बढ़कर उन्होंने उद्धवजी को देखा त्योंही उन्हें कसकर छातीसे चिपटा लिया।"

छप्पय

गोपी बैठीं लखीं नयन तैं नीर बहावति।
रामश्यामके चारुचरित तन्मय ह्वै गावति॥
अतिथि, अग्नि, रवि, धेनु, विप्र, सुर पितरति पूजत।
को आवे को जाइ भाव महँ तिनहिं न सूझत॥
उद्धव निरखत जात सब, अति प्रभाव तिनिपै पर्‌यो।
नन्द पौरि ढिँग आइ के, हौलें रथ ठाढ़ो कर्‌यो॥

उद्धवजी और नन्दयशोदा

[१०५६]

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४६ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

रथको सुनिके शब्द नन्द ह्वैके आनन्दित ।
आइ गये बलश्याम बढ़े आगे मन सोचत ॥
उद्धवजी जब लखे प्रेमतैं हिये लगाये ।
पुनि पुनि सिरकूँ सूँघि विकल ह्वै अश्रु बहाये ॥
मानों आयो श्याम ही, सुत समान आदर करयो ।
पाद्य अर्घ्य मधुपर्क दै, दिव्य अन्न आगे धरयो ॥

चिरकालमें अपने स्नेही आते हैं, तो मन न जाने कैसा हो जाता है। हृदय भर आता है अश्रु अपने आप ढुलक जाते हैं। चित्त चाहता है इसे हृदयसे सटाये रखें। क्या इसे खिला दें, क्या पिलादें उन्हें देखकर भूख नींद भाग जाती हैं। बात करते करते चित्त भरताही नहीं। अपने हृद्गत भावोंको उनके सम्मुख प्रकट करनेमें एक प्रकारका अनिर्वचनीय सुख होता है। संसारमें सब वस्तुएँ सुलभ हैं, किन्तु प्रेमीका दर्शनही

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जब उद्धवजीने नन्दजी तथा यशोदामैयाका भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में ऐसा गूढ़ अनुराग देखा तो अति प्रसन्न होकर श्रीनन्दजी से कहने लगे।"

दुर्लभ है। प्रेमीकी बात तो पृथक् रही, जिससे अपने प्यारेका सन्देश मिलता है, जिससे प्यारेके सभी समाचार मिलनेकी आशा होती है, उसे देखकर ही महान् आनन्द होता है। प्यारेका दर्शन हो जाने या उसके समाचार मिल जाना इससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई सुख है ही नहीं। यही परमलाभ है, महान् सुख है और सर्वोत्कृष्ट लाभ है। जिसे यह प्राप्त हो गया उसे सब कुछ मिल गया। जिसे यह प्राप्त नहीं उसे मिला ही क्या? संसारी भोग तो सूकर कूकर योनियोंमें भी प्राप्त हो जाते हैं। प्रिय दर्शन रूप अमृतही ससारमें दुर्लभ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्धवजीके उतरते ही उन्हें नन्दजी मिल गये। नन्दजीको पहिले तो भ्रम हुआ कि यह श्रीकृष्ण ही हैं ज्योंही वे आगे बढ़े त्योंही वे पहिचान गये ये तो श्रीकृष्णके सखा बन्धु उद्धव हैं। उद्धवजीको भी देखकर उन्हें महान् प्रसन्नता हुई। पुत्रका मित्र पुत्रसे भी प्यारा लगता है। पुत्रसे तो सकोच वश खुलकर प्यार नहीं कर सकते। किन्तु पुत्रके मित्रसे प्यार भी कर सकते हैं पुत्रकी भाँति दुलार भी कर सकते हैं और मित्रकी भाँति बातें भी कर सकते हैं। उद्धवजी नन्दजीको देखकर ज्योंही प्रणाम करने आगे बढ़े त्योंही लपककर उन्हें नन्दजीने अपनी दोनो बाहुओंमें बाँधलिया और कस कर छातीसे चिपटा लिया। अबोध बालककी भाँति उद्धवजी उनके हृदयसे सटे रहे। नन्दजीने अपने नयनोंके नेहनीरसे उन्हें न्हिला दिया, उनके बालोंको, वस्त्रोंको भिगो दिया। भावावेश कम होनेपर उनका हाथ पकड़कर अत्यन्त स्नेहके साथ भीतर ले गये। सेवकोंने नौहरेमें ले जाकर रथको खोल दिया। घोड़ोंको घुड़सालमें बाँध दिया। नन्दजी यशोदाजीके पास उद्धवजीको ले गये और दूरसे ही बोले—"महरि! सुनती है, देख ये उद्धवजी आगये, श्रीकृष्णके अभिन्न सखा हैं; उसके बाहरी प्राणही हैं। ये ही उसके सम्मति

दावा, साथी, सचिव तथा सर्वस्व हैं।" उद्धवजीका परिचय पाकर मैयाको संतोष हुआ उन्होंने उद्धवजीको आशीर्वाद दिया। जल लाकर उनके हाथ पैर धुलाये। वस्त्र बदले और मैयाने कहा—"पहिले भोजनहो जाय, तब बातें होंगी।"

उद्धवजीने कहा—"माताजी ! मैं अभी थका हुआ आया हूँ, तनिक विश्राम कर लूँ। अभी सन्ध्या भी नहीं की है। सन्ध्या करलूँ, तब भोजन करूँगा।" यह कह कर उद्धवजी नन्दजीके साथ दूसरे घरमें चले गये।

श्रीरामश्याम जबसे व्रजसे गये हैं, तबसे मैयाको भोजन बनानेमें कभी भी उत्साह नहीं हुआ। आज उसके हृदयमें फिर पूर्ववत् उत्साह छा गया। उसने बातकी बातमें सुन्दर सुन्दर छप्पन भोग तैयार कर लिये। खीर, रवड़ी, मठरी, पपड़ी, हलुआ तथा अन्याय सुन्दर सुन्दर भोजन उसने बना लिये। रोहिणीजी तो कुछ दिन पहिले चलीही गई थीं। अतः आज मैयाने अन्यान्य सेविकाओंकी सहायतासे ही समस्त सामग्री बनाई। उद्धवजी जब सन्ध्यावन्दन आदि नित्य कर्मों से निवृत्त हो गये, तो नन्दजी उन्हें चौका में लाये। मैयाने अत्यन्त स्नेहसे उन्हें भोजन परोसा। उन्होंने बड़ी रुचिके साथ उस उत्तम भोजनको किया। मैया बड़े उत्साहसे आग्रह पूर्वक उन्हे परस रही थीं। भोजन हो जानेपर नन्दजीने स्वयं जल लेकर हाथ पैर धुलाये कुल्ले कराये। शैया प्रथमही तैयार थी। भोजन करके उन्हे शैया पर बिठाया। नन्दजी भी बैठ गये। बोले—"भैया ! थक गये होगे, लाओ तुम्हारे पैर दबा दूँ।

उद्धवजीने कहा—"बाबा ! आप कैसी उलटी गंगा बहा रहे हैं। पैर हमें आपके दबाने चाहिये या आप हमारे दबावेंगे तो आपके बच्चे हैं।"

नन्दजीने बड़े स्नेहसे कहा—"बच्चे तो हो ही"

बच्चोंके पैर नहीं दबाते।" यह कहते कहते नन्दजी उनके पैर दबाने लगे। वे बहुत मना करते रहे, किन्तु ये माने ही नहीं कुछ देरमें उद्धवजीने कहा—"बाबा! यह आप क्या कर रहे हैं। मैं पैदल थोड़े ही आया हूँ, रथ पर चढ़ कर आया हूँ। हाँ, अब कुछ बातचीत हो। शिष्टाचार तो बहुत हो गया।"

यशोदा मैया चौकेको ज्योंका त्योंही छोड़कर वहाँ आ बैठीं। वे श्रीकृष्णकी एक एक बात सुनना चाहती थी। आज बहुत दिनों में रामश्यामके सच्चे समाचार सुननेको मिलेंगे। इसी आशासे उन्होंने घरका कुछ भी काम न देखा। भोजन भी नहीं किया। न ब्रजराजसे ही भोजन करने को कहा। वे तो सब कुछ भूल गईं थीं।

अब नन्दजीने बात चलाई। बात चलानेका भी एक सदाचार शिष्टाचार होता है, पहिले घरमें सबसे बड़ेकी कुशल पूछी जाती है, फिर बाल बच्चोंकी तदनन्तर और सब बातें। उसी नियमके अनुसार नन्दजीने उद्धवजी से पूछा—"कहो भैया! उद्धव! हमारे परम प्यारे बन्धु सुहृद सखा वसुदेवजी अच्छे तो हैं. उनके और सब छोटे भाई तुम्हारे पिताजी तथा चाचाजी सब अच्छी तरहसे तो हैं? देखो, कैसी भाग्यकी विडम्बना है। शूर वंशमें वसुदेवजी ही सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, उन्हें कितने दिनों तक कंसके कारावासमें रहना पड़ा। कितने दिनोंके पश्चात् उनकी बन्धनसे मुक्ति हुई। अब तो वे बन्धनसे मुक्त होकर एक प्रकारसे राजा ही बन गये हैं। उनका शरीर तो अच्छा है। उनके सुहृद्गण बाल बच्चे तथा परिवारके लोग आनन्द पूर्वक तो हैं न?"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, बाबा! सब आपकी कृपा है। आपके आशीर्वादसे सब लोग कुशलपूर्वक हैं। सबने आपकी कुशल पूछी है। कंसके कारण ताऊजीको ही नहीं हम सबको बड़े क्लेश सहने पड़े। समस्त परिवारके लोग तीन तेरह हो गये। कोई

कहीं चला गया कोई कहीं। अब कंस मामाके मरनेपर सब लोग अपने अपने घरोंको लौट आये हैं।"

नन्दजीने कहा—"भैया! कंस वैसे था तो अपना सम्बन्धी ही, किन्तु मर गया, यह अच्छा ही हुआ। उसके पापका घड़ा भर गया था। भगवान‌के यहाँ देर भले ही हो अन्धेर नहीं। कंसने जैसा उत्पात मचाया था, वैसा ही उसने फल पा लिया। अपने अनुगामियों सहित वह अपने पापसे मारा गया। क्यों न हो उसने काम ही ऐसे जघन्य किये थे। वह धर्मशील और साधु-स्वभाव वाले यादवोंसे सदा अकारण द्वेष करता था। कृष्ण ने उसे मार दिया अच्छा ही किया। कृष्ण अच्छी तरहसे है न? बलदेव तो अच्छा है?"

उद्धवजी ने कहा—"हाँ बाबा! सब अच्छे हैं। कृष्णचन्द्र जी ने आप दोनोंको प्रणाम कहा है।"

अत्यन्त उत्सुकताके साथ नन्दजीने कहा—"सच कहते हो, उद्धवजी! कृष्णने हमारे लिये प्रणाम कहा है। कभी हमारी चर्चा होती है क्या? कृष्ण कभी हमारी याद करता है?"

उद्धवजीने कहा—"अजी, बाबा! आप कैसी बात कर रहे हैं। भला आपको भी याद न करेंगे तो और किसे याद करेंगे। उन्होंने ही तो मुझे आपके पास भेजा है।"

यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दजी कहने लगे—"कृष्ण अभी तक हमें भूला नहीं यह बड़े सौभाग्यकी बात है। यहाँकी कभी वहाँ चर्चा छिड़ती है क्या? कभी अपनी इस दुःखिनी मैयाकी कृष्ण याद करता है? हम सब जो उसके सुहृद हैं सम्बन्धी हैं, उनकी कभी वह बातें करता है? जिनके साथ बालकपनसे अब तक वह खेला है, उन अपने इन ग्वालबालों का कभी स्मरण करता है? जिनको उसने जलसे, अग्निसे, विषसे, असुर तथा राक्षसोंसे बचाया था उन अपने स्वजनोंको

वह भूल तो नहीं गया है ? जिस व्रजकी रक्षामें वह सदा तत्पर रहता था उस व्रजको, जिन गौओंको उसने नंगे पैरों चलकर वनोंमें चराया है उन गौओंको जिस वनमें उसने निरन्तर विहार किया है उस वृन्दावनको, तथा जिस पर्वत पर उसने गौएँ चराई है, जिसे सात दिनों तक अपनी एक उँगलीपर धारण किया था उस गोवर्धन पर्वतको श्रीकृष्ण कभी याद करता है ? कभी यहाँ का प्रसङ्ग चलता है ?"

उद्धवजीने कहा—"बाबा ! आपतो कभी की कहते हैं। श्रीकृष्ण तो निरन्तर व्रजका ही चिन्तन करते रहते हैं। आप ही तो उनके माता पिता हैं। आपको ही सान्त्वना देने तो मुझे यहाँ भेजा है। वे स्वयं आपके दर्शनोंको लालायित हैं।"

यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरकर नन्दजी बोले—"ऊधो! वह कौनसा शुभ दिन होगा, जब हम अपने मदनमोहनका मनोहर मुसकानमय मुखमण्डल निहार सकेंगे। कृष्ण हमें अपनी चारु चितवनसे प्रेमयुक्त देखेगा। उसके सुन्दर नासिका युक्त बड़े-बड़े नेत्रोंवाले मुखारविन्दको देखकर कब हम अपने नयनोंको सफल करेंगे।"

उद्धवजी ने कहा—"बाबा ! इतने अधीर क्यों होते हैं ? श्रीकृष्ण अवश्य ही आकर आपके दर्शन करेंगे।"

नन्दजी ने कहा—"उद्धव ! क्या करें। कृष्णने हमें अपने उपकारके भारोंसे इतना दबा दिया है, कि हम भूलना भी चाहें तो जन्मजन्मातरों तक उसके एक-एक उपकारको नहीं भूल सकते। हमें अब पता चला है।"

वह साधारण मनुष्य नहीं था। वह तो महात्मा था। उसने ऐसे ऐसे कार्य किये जिनकी साधारण लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। देखो, उसने हमारी दावानलसे रक्षा की, व्रजमें एक बड़ा भारी बवण्डर आ गया था, वह सब व्रजको उड़ा ले जाना

चाहता था, उससे उसने बचाया। इन्द्रने कुपित होकर व्रजको बहा देने के संकल्पसे सात दिनों तक घनघोर वर्षा की; उस वर्षा से गोवर्धन धारण करके उसने हमारी रक्षा की। वृषासुर, अघासुर बकासुर और न जाने कौन कौन असुर आये उन सबको मार कर उसने हमें जीवनदान दिया। हाय! हम ऐसे कृतघ्न निकले कि उस अपने जीवनदाता महात्माके बिना जी रहे हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं। हमें तो उनके बिना एक क्षण भी जीवित न रहना चाहिये। मुझे भी लोग कृष्णका पिता कहते हैं, किन्तु मैंने पितापने का प्रण कहाँ निबाहा? पिता तो दशरथजी थे, जिन्होंने रामके वियोगमें अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। उद्धवजी हमारे प्राण शरीरसे निकलते नहीं। वे कृष्ण दर्शनकी लालासासे अटके हुए हैं।"

उद्धवजीने कहा—"बाबा! तुम ही तो व्रजके आधार हो। तुम तो सबको धैर्य बँधाने वाले हो, जब तुमही इतने अधीर होगे, तो कैसे काम चलेगा।'

रोते रोते आँसुओंको दुपट्टाके छोरसे पोंछते हुए हिचकियाँ लेते हुए नन्दजी बोले—"ऊधो! हम क्या करें। हमारा मन हमारे वशमें रहा नहीं। श्रीकृष्णकी प्यारी प्यारी लीलाओंने मन हर लिया। जब हमें उनकी बालकपनेकी लीलायें याद आती हैं, तो मन न जाने कैसा हो जाता है। उसकी चलन, खिलन, उठन बैठन सभीमें आकर्षण था। वह अपनी मातासे कैसा झगड़ता था। उसकी मैया अब बार बार उसीको स्मरण करके रोती है मुझसे झगड़ा कौन करेगा? कौन मचल मचलके माखन माँगेगा? कौन मेरा आंचल पकड़कर गाल चूमेगा। गोपियाँ जब उलाहना लेकर इसके पास आतीं तो यह भी डाँटती। कैसा भोला बनकर सब कुछ सहता था। [illegible] हैं रहें अपने घर गृहस्थीके काम काज करें, किन्तु उन

विचित्र चरित्र, लीला कटाक्षमयी प्यारी प्यारी चितवन, मंद मंद मनोहर मुसक्यान, अट्टहास उसकी प्यारी प्यारी भोली भोली बातें जब याद आती हैं तो हमारा सब विवेक नष्ट हो जाता है। धीरताका बाँध टूट जाता है, साहस चकनाचूर हो जाता है उत्साह भंग हो जाता है और हमारे सब अंग शिथिल हो जाते हैं, हम किसी भी कामके नहीं रहते।" यह कहते कहते नन्दजी अधीर होकर लुढ़कने लगे। उद्धवजीने दोनों हाथोंसे उन्हें सम्हालते हुए कहा—"बाबा! बाबा! आप क्या कर रहे हैं। धैर्य धारण कीजिये। इतनी अधीरता आपको शोभा नहीं देती।"

नन्दजी रोते रोते बोले—उद्धव! कैसे धारण करूँ। मुझे कोई ब्रजसे बाहर फेंक आवे तो सम्भव है मैं धैर्य भी धारण कर सकूँ। ब्रजके तो कणकण में कृष्णकी अनन्त स्मृतियें निहित हैं। हमारी दृष्टि जिधर ही जाती है उधर ही कृष्णकी मूर्तिमती स्मृति दिखाई देती है। यहाँ कृष्ण खेलता था, यहाँ खाता था, इन वनोंमें गौएँ चराने जाता था। इस पर्वतकी गुफाओं में छिपता था।' यहाँ उसने यह लीला की, यहाँ अमुक असुरको मारा, यहाँ अमुक दैत्यको पछारा। तिलभर भी तो ब्रजमें ऐसी भूमि नहीं जो उसके चरणचिन्होंसे चिन्हित न हो। एक भी मही तो ऐसी नहीं जो उसके अंग स्पर्शसे पावन न हुई हो। ये पर्वत, वन, उपवन, द्रुम, लतायें, ये क्रीड़ास्थल सभी तो श्रीकृष्ण की स्मृति दिलाकर हमारे हृदयमें हूक उत्पन्न करते हैं। हमें तो दशों दिशाओं में कृष्णही कृष्ण दिखाई देता है, निरन्तर कृष्णकी स्मृति होने से हमारा चित्त कृष्ण मय हो गया है।"

अवरुद्ध कंठसे उद्धवजीने कहा—"बाबा! बड़े भाग्यशाली हैं आप? जो श्रीकृष्णको पुत्र मानकर आप उनसे इतना प्रेम करते हैं।"

आह भरकर ब्रजराज बोले—"उद्धव ! वे हमारे पुत्र होनेके योग्य नहीं थे। मैं तो समझता हूँ कृष्ण कोई देवता थे। मनुष्यमें इतना पुरुषार्थ होना असंभव है। जब कृष्णका जन्म हुआ था, तो उन्होंने कहा था—"तुम्हारे लड़के में नारायणके समान गुण होंगे।" मैंने समझा गर्गजी बढ़ाकर बात कह रहे हैं। पीछे उसके काम देखकर तो मैं समझ गया यह कोई देवताओंमें भी श्रेष्ठ देवता हैं। बलराम भी देवता ही हैं। देवताओंका काम करने वे दोनों पृथिवीपर पैदा हुए हैं। आप ही सोचें उद्धवजी ! बालकपनमें असुरोंको वे दोनों ऐसे मार देते थे जैसे सिंह पशुओंको बिना प्रयासके मार देता है। कंसमें बताते हैं दश सहस्र हाथियोंके बराबर बल था, उसे बात की बातमें प्राणहीन बना दिया। चाणूर मुष्टिक इन जगत् प्रसिद्ध मल्लोंको हँसते-हँसते क्रीड़ामें ही मार गिराया। कुवलयापीड़ हाथीको सहजमें ही निर्जीव बना दिया। दो सौ हाथ लम्बे धनुषको ऊखके गन्नेके सदृश तोड़ डाला। सात दिनों तक सात कोश लम्बे गोवर्धन पर्वतको बिना विश्रामके उठाये रहा। जो जो देवता ब्रजमें आये सब कृष्णके पैरों पर ही पड़कर गये। वरुणलोकमें मैंने उसका वैभव देखा था। लोकपाल वरुण भृत्योंकी भाँति उसकी पूजा कर रहा था। प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त, बकासुर तथा अन्याय मायावी असुरोंको उसने बिना प्रयासके मार डाला। उस कृष्णको हम साधारण मनुष्य कैसे कहें। किन्तु कुछ भी क्यों न हो, हमारा तो उसमें वात्सल्य है स्नेह है। हमें तो सदा उसने बाबा ही कहा है। हम भी उसे सदा लाला कहके जानते मानते रहे हैं। हमारा तो लाला है, बच्चा है, बेटा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार जब नन्दजी विकल हो गये, तो रोते रोते यशोदाजीने उन्हें उठाया। समीपमें बैठी बैठी वे सब बातें सुन रही थीं और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहा रही

थीं। उन्होंने रोते रोते उद्धवसे कहा—"उद्धव ! तुम हमें धैर्य धरनेको कहते हो. हम कैसे धैर्य धारण करें। व्रजमें इतने स्त्री पुरुष हैं, किन्तु हमें तो सम्पूर्ण व्रज सूना ही सूना लगता है। जब मैं रसोई बनाने बैठती हूँ तो आँसुओं की धारासे आटा गीला हो जाता है। दाल पतली हो जाती है, सागमें पानी पानी हो जाता है, जब खाने बैठती हूँ, तो मुखमें कौर नहीं जाता। कृष्णके जूठे अन्न की लत इस जीभको पड़ गई थी। जिस अन्न को कृष्णने नहीं खाया, उसे कंठ नीचे उतारता नहीं। घंटों एक कौरको लिये रोती रहती हूँ। ग्वालवाल आकर 'मैया मैया, पुकारते हैं मेरा हृदय फटने लगता है, हाय! कृष्ण ऐसे ही पुकारता था, अब वह कब मुझसे मुँह भरकर मैया कहेगा। यह इतना बड़ा घर मुझे काटने दौड़ता है। गौशालामें अब मैंने जाना छोड़ दिया है। गौओं की दशा देखकर छाती फटने लगती है। वे सब दुबली हो गई हैं। लट गई हैं, तृण खाना उन्होंने छोड़ दिया है। वे जो कोई आता है उसे देखकर डकराने लगती हैं। मुझसे उनकी ऐसी दुर्दशा देखी नहीं जाती। अतः गोष्ठ की ओर जानेमें मेरा हृदय काँपता है। जब मोर पंखोंको देखती हूँ, मेरी छाती फटने लगती है, नित्य घरके वृक्षोंपर मोर बोलते हैं, बोलते क्या हैं रोते हैं मुझे ऐसा लगता है, वे कृष्ण कृष्ण कहकर विलाप कर रहे हैं। मानों पूछ रहे हैं—"हमारे पुच्छके मुकुटको पहिननेवाले हमारे साथ नाचनेवाले श्यामसुन्दर कहाँ गये ?" ये बन्दर अब न माखन लूटते हैं, न किसीको घुड़की ही देते हैं। कृष्ण इनको अपने हाथोंसे माखन खिलाता था। इनकी पूँछें पकड़कर कैसे कैसे खेल करता था। कहाँ तक कहूँ उद्धव व्रजमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, कोई स्थान नहीं, कोई घटना नहीं जिसमें कृष्ण की स्मृति निहित न हो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार कहते कहते मैया

यशोदा ढाह मारकर रोने लगीं। पुत्रस्नेहके कारण उनके स्तनों से दूध झरने लगा। मैया बाबाका श्रीकृष्णके प्रति ऐसा प्रगाढ़ प्रेम देखकर उद्धवजीका हृदय बाँसों उछलने लगा। ऐसा निष्छल निष्कपट प्रेम पहिले उन्होंने कहीं देखा नहीं था। नन्दजीके विरह दुःखको देखकर वे भी दुखी हुए और उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहने लगे।"

छप्पय

वर भोजन करवाइ बिछाई सुन्दर शैया।
दोनों बैठे पास नन्द अरु यशुमति मैया॥
कुशल प्रश्न करि कहें कृष्ण ब्रज क्यों नहिंआयो।
परदेशी बनि गयो स्वजन घरबार भुलायो॥
लीलाके संस्मरण सब, ब्रजरज कणकणमहँ निहित।
निरखत नितप्रति ही रहत, मथुरापथ ह्वैके चकित॥

उद्धवजीद्वारा नन्द यशोदाको सान्त्वना

[१०६०]

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४६ अ० ३० श्लो०)

छप्पय

निरखें जा-जा ठौर यादि लीला है आवति ।
चित्त कृष्णमय होहि आँखि नित नीर बहावति ॥
बोले उद्धव धन्य-धन्य दम्पति बड़भागी ।
कृष्ण प्रेम महँ छके रहो अतिशय अनुरागी ॥
घटघट व्यापी भुवनपति, देवें दरशन आइ हरि ।
वासुदेव व्रजचन्द प्रभु, प्रकटे नटवर रूप धरि ॥

जिसकी जिस भावमें निष्ठा हो जाती है, वह उसी भावको सत्य समझता है। अपने भावानुसार दूसरोंको उसी भावसे समझानेका प्रयत्न करता है। जिसके लिये जो भाव अनुकूल होता है, वह उसे सबके ही लिये सुगम समझता है। किन्तु

---

* उद्धवजी नन्द और यशोदाजीको सान्त्वना देते हुए कह रहे हैं— "हे मान देनेवालो ! आप दोनों स्त्री-पुरुष सम्पूर्ण शरीरधारियोंमें अत्यंत ही प्रशंसनीय हैं, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि अखिल जगत्के गुरु श्री-नारायण भगवान्में आपने अपनी इस प्रकार मति लगादी है।"

वास्तवमें यह बात नहीं। हमारे लिये जो भाव स्वाभाविक है। सुगम है, वही दूसरोंके लिये दुष्कर है दुरूह है। शिष्टता इसीका नाम है कि दूसरेके भावोंका आदर करते हुए अपने भावकी रक्षा करना। जो असहिष्णु पुरुष अपनी मान्यताके सामने दूसरोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें भला बुरा कहते हैं, अब उनके लिये हम क्या कहें। भगवान तो भावमय हैं, जिसकी जैसी भावना होती है उसे उसी भावनाके अनुसार फल देते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब नन्दजी और यशोदाजी अत्यन्त ही दुखित हुए तो उन्हें समझाते हुए उद्धवजी कहने लगे—"व्रजराज! आप राम कृष्णको साधारण पुरुष न समझें। ये सम्पूर्ण जगत के मूल कारण प्रधान पुरुष रूपसे अवस्थित हैं। ये समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें सर्वव्यापी होनेसे निवास करते हैं। ये पुराण पुरुष हैं। अनादि हैं, सर्वगत हैं, सबके कारण हैं। ये अद्वितीय हैं, इन्हीं से यह सम्पूर्ण प्रपञ्च है।"

नन्दजीने कहा—"एक होकर सबमें क्रिया कैसे करते हैं।"

उद्धवजी ने कहा—"बाबा! यह विषय गूढ़ है। आप ध्यान पूर्वक सुनेंगे और समझेंगे, तो आपका समस्त शोक मोह दूर हो जायगा। एक होकर भी ये भिन्न भिन्न प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट हैं। जैसे अग्नि एकही है, वही नाना स्थानोंमें नाना रूपसे प्रतीत होती है। लकड़ी टेढ़ी होती है, तो अग्नि भी टेढ़ी होकर उसमें प्रतीत होती है। गोल होने पर गोल रूपमें, मोटे होनेसे मोटे रूप और छोटी होनेसे छोटे रूपमें। इसी प्रकार नाना योनियोंमें भिन्न-भिन्न उपाधियोंको धारण करके ज्ञान स्वरूपसे जीवनका नियमन करते हैं। वैसे ही प्रतीत होते हैं। जीवनका एक मात्र कर्तव्य है इन्हीं सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णकी शरणमें जाना। जिनका प्राणान्तके समय भी एक क्षणके लिये ही विशुद्ध हुआ मन इनके चरण-

रविन्दोंमें लग जाता है, वे इन समस्त कर्म वासनाओंको छोड़कर ब्रह्ममय बन जाते हैं। सहस्र सूर्योंके सदृश वे परम तेजस्वी रूप धारण करके परमपदके अधिकारी बन जाते हैं। जिनकी इतनी महिमा है, उन सबके आत्मा और कारण श्रीकृष्णमें आपका ऐसा सुदृढ़ अनुराग है। वे भगवान् भूमिका भार उतारनेके लिये ही नर रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। उनसे प्रेम करना ही जीवका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है वह आपको स्वतः ही प्राप्त हैं, फिर आपके लिये कौन सुकृत करना शेष रहा। आप सब कुछ कर चुके।"

नन्दजीने कहा—"उद्धव! आपकी ये गूढ़ ज्ञानकी बातें मेरे बुद्धि में आती नहीं। आपका कथन सत्य ही होगा, किन्तु हम कृष्णको अन्तःकरणमें देख नहीं सकते। हमें तो उसकी साँवरी सलौनी सूरत देखने की ही इच्छा है। आप हमें यह बतावें कि श्रीकृष्ण व्रजमें कब आवेगा?"

इस पर उद्धवजी बोले—"देखिये बाबा! हम यादवोंके वे ही एकमात्र प्रभु हैं। वे अपने कर्तव्यसे कभी च्युत होनेवाले नहीं हैं। यादवोंकी भलाईके अभी उन्हें बहुतसे कार्य करने हैं। उन्हें समाप्त करते ही वे अति शीघ्र व्रजमें आवेंगे और आप जो उनके माता पिता हैं उन्हें आकर प्रसन्न करेंगे।"

निराशाके स्वरमें नन्दजीने कहा—"अरे, भैया! ऊधो! आवेंगे कब? कंसको मारनेके पश्चात् मैंने उससे कहा था "अब भैया व्रजको चल।" उसने गोल माल उत्तर दे दिया "बाबा! मैं यहाँका सब समाधान करके शीघ्र आऊँगा" सो अभी तक तो वह आया नहीं। मैं समझता हूँ, वैसे ही उसने झूठमूठ मुझे बहकानेके लिये कह दिया होगा।"

अपनी बातपर बल देते हुए उद्धव कहने लगे—"नहीं, बाबा! ऐसी बात नहीं है। उन्होंने कंसके मारनेके अनन्तर रङ्ग-

भूमिमें आपके पास. आकर जो भी कुछ कहा है, उसे वे अवश्य ही ब्रजमें आकर सत्य करेंगे। आप उन्हें अवश्य देखेंगे।"

नंदजीने उत्सुकताके साथ कहा—"कहाँ देखेंगे ? किस स्थल पर कृष्णसे भेंट होगी ?"

उद्धवजीने कहा—"बाबा ! जैसे ईंधनमें अग्नि व्याप्त है, वैसे ही श्रीकृष्ण तो सबके अन्तःकरणमें स्थित हैं। जहाँ ध्यान किया, उनके दर्शन हो जाते हैं। आप शोकका परित्याग करें। कुछ ही कालमें श्रीकृष्णको पास ही निहारेंगे।"

यशोदा मैया बोली—"उद्धव जब कृष्ण छोटा था, तो वह बहुत चंचलता करता था। मैंने उसे उलूखलमें बाँध दिया था, छड़ी लेकर धमकाया था। मुझे लगता है, वह उन्हीं बातोंको याद करके मान कर गया है, मुझसे अप्रसन्न हो गया है, इसीलिये वह लौटकर नहीं आया।"

हँसकर उद्धवजीने कहा—"अजी, माताजी ! आप कैसी बातें कर रही हैं ? भगवान् तो मान अपमान दोनोंसे रहित हैं। उनके लिये न कोई प्रिय न अप्रिय न कोई शत्रु न मित्र। वे तो समदर्शी हैं। उनके लिये ऊँच नीच, उत्तम अधम, सम विषम हेय ग्राह्य तथा त्याज्य अत्याज्य कुछ भी नहीं है। वे जन्ममरण से रहित हैं।"

यशोदा मैयाने कहा—"जन्मसे रहित कैसे है भैया ! उसने तो मेरे ही यहाँ जन्म लिया। मैं तो उसकी मैया हूँ। तुम चाहे न मानो वह तो मुझे अपनी मैया मानता ही था।"

उद्धवजीने कहा—"माताजी ! उन सर्वात्माकी न कोई माता है न पिता। वे स्त्री पुत्र घर द्वार अपने पराये सभीसे रहित हैं। वे देह गेह जन्म मृत्यु सबसे रहित हैं। उनके लिये न कोई कर्तव्य है न अकर्तव्य। वे यदि जन्म लेते हैं, तो केवल साधुओंकी रक्षाके ही निमित्त लेते हैं। वे मनुष्य शरीरमें ही

अवतार धारण करते हों, सो भी बात नहीं। वे कभी देवता बनकर याचना भी करते हैं और कभी कच्छ मच्छ बनकर तमो गुणी लीलायें भी करते हैं। कभी मनुष्य रूप रख कर मनुष्यों जैसी चेष्टायें करते हैं। वे अजन्मा होकर भी जन्म धारण करते हैं, निर्गुण होकर भी लीलाके लिये सत्व, रज और तम इन तीनों गुणोंको स्वीकार करते हैं। गुणातीत होनेपर भी वे मायाके गुणोंसे संसारकी रचना, रचे हुए संसारका पालन और अन्तमें संहार करते हैं। वे कुछ काम करते नहीं। करते हुए से दिखाई देते हैं।"

नन्दजीने कहा—"उद्धवजी! न जाने आप किस भगवान् की बात कह रहे हैं। हमारा कृष्ण तो सभी काम करता था। नित्य गौओंको चरानेके लिये वनमें जाता था। हमारे घरका सब काम काज वही तो करता था। हमने तो उसे निरन्तर काममें ही लगे देखा है। यह निठल्ला बेकाम होता, तो इतने बड़े बड़े असुरोंको कैसे मार सकता है।"

उद्धवजी हँसकर बोले—"बाबा! इसी का नाम तो भगवान् की माया है। अकर्ता होने पर भी भगवान् कर्तासे दीखते हैं। देखिये, बालक खेल मेल मे घॉई माई चॉई माई कहकर घूमते हैं, वेगसे चक्कर लगाते हैं। चक्कर लगानेसे पृथिवी वृक्ष सभी घूमतेसे दिखाई देते है। इसी प्रकार वेगसे चलती नौकासे नदीके किनारेके वृक्ष चलते से दिखाई देते हैं। वास्तवमें वृक्ष पृथिवी घूमते नहीं बालकोंके घूमने से वे भी घूमतेसे प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार चित्तके कर्ता होनेपर अहंकारके कारण आत्माही कर्ता प्रतीत होने लगती है। नहीं तो आत्मामें कर्तापन कहाँ है। सबके आत्मा तो श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं।"

यशोदाजीने कहा—"उद्धव! न जाने तुम आत्मा, भगवान्,

सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी किसे बता रहे हो हम तो इतना ही जानते हैं कि श्रीकृष्ण हमारा पुत्र है।"

उद्धवजीने शीघ्रतासे कहा—"मान लो, वे आपके पुत्रही हैं, वे केवल आपके ही नहीं। पुत्र हैं तो वे सभीके पुत्र हैं। सभीके आत्मा हैं, सभीके पिता हैं, सभीके माता हैं तथा सभीके ईश्वर हैं। संसारमें जितनी दिखाई देने वाली वस्तु हैं, जितनी सुनी जानेवाली वस्तुएँ हैं। जितनी हो गई हैं, जितनी आगे होंगी। स्थावर जंगम, छोटी बड़ी जितनी भी वस्तुओंकी कल्पना की जा सकती है, वे सब अच्युतसे पृथक नहीं हैं। संसारमें एकमात्र वे ही परमार्थ वस्तु हैं।"

नन्दजीने कहा—"हाँ उद्धव ! हमारा भी सर्वस्व श्रीकृष्ण ही था, हमें भी उसके विना संसार सूना सूना दिखाई देता है। उद्धव तुम बड़े ज्ञानी हो, किन्तु हम तो कृष्णवियोगमें दुखित हैं हमारी मोटी बुद्धिमें तुम्हारो बातें बैठतीं नहीं। हमें तो सन्तोष तब हो जब मोर मुकुट बाँधे, कारी कमरी कंधेपर धारण किये, बाँसुरी बजाता हुआ श्रीकृष्ण हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाय।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार श्रीकृष्णके ही सम्बन्धमें बातें करते करते अरुणोदय हुआ। ब्रजाङ्गनाओंने उठकर घरोंमें दीपक जलाये। झाड़ू दी देहलीपर वास्तु पूजा करके दही मथने लगीं। जब घरोंसे आटा पीसनेकी चक्कीकी और दही मथनेकी ध्वनि सुनाई पड़ी तब उद्धवजीने समझ लिया कि अब अरुणोदय हो गया। अब उद्धवजी उठे और चुपके चुपके गोपियोंके घरोंको झाँकते हुए यमुनाजीकी ओर चले। पूरी रात्रिभर वे जागते ही रहे। कृष्णकथामें उन्हें पता ही न चला, रात्रि कब बीत गई। नन्दयशोदाजी भी सम्पूर्ण शरीरको भुलाकर कृष्णकथामें ही तन्मय हो गये। वे खानापीना सब

कुछ भूल गये थे। वे रात्रियाँ ही धन्य हैं जो प्यारेके चिन्तनमें व्यतीत हों। जो रात्रियाँ सोकर कटी वे तो व्यर्थ बीतीं।

छप्पय

बाबा ! धारो धीर बेगि सुधि यदुपति लेंगे।
करें प्रतिज्ञा सत्य दयानिधि दरशन देंगे॥
को तिनिके हैं पिता सुहृद् सुत माता भ्राता।
अखिल विश्वके बीज विनोदी सब जग श्राता॥
सुख साधुनि कूँ दैन हित, सरस सुखद क्रीड़ा करें।
देव, मनुज, पशु,पच्छि, अज, विविध रूप नटवर धरें॥

व्रजाङ्गनाओंकी तर्कना

[१०६१]

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः।
दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ❀
(श्री भा० १० स्क० ४६ अ० ४७ श्लोक)

छप्पय

करत करत यों बात रात बीती सब जागत।
अरुनोदय ह्वै गयो गोपिका द्वीप जलावत॥
मथिवे लागीं दही वलय कंकन धुनि करहीं।
कुंकुम मंडित गंड चन्द्रविद्युति द्युति हरहीं॥
चारुचरित चितचोरके, कलकंठनितैं गाइकें।
दशहु दिशनिकूँ भरति मनु, अनुपम भाव जनाइकें॥

सहसा कोई आशायुक्त घटना दिखाई दे जाती है या कानोंमें भनक पड़ जाती है, तो उस विषयमें हृदयमें ऊहापोह होना स्वाभाविक है। हृदय तो आशासे ही भरा रहता है। प्रेमीका जीवन आशाके आधारपर ही टिका रहता है, किन्तु प्रेम शंकाशील है। हमारा प्रेमी हमें भी उतना ही प्यार करता है, जितना

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब भगवान् सूर्य नारायण उदय हो गये तब व्रजाङ्गनाओंने नन्दजीके द्वारपर एक सुवर्णमंडित रथ देखा, तो वे परस्परमें कहने लगीं—"यह रथ किसका है!"

हम उसे करते हैं इस विषयमें प्रेमियोंका हृदय निर्णय नहीं कर पाता। डॉवाडोलसा बना रहता है। कभी तो मन मान लेता है, कभी संदेह करने लगता है। हमारा प्रिय हमारे लिये चिंतित होगा यह निर्णीत विषय नहीं है। शंकास्पद है। फिर भी घटनाओं को देखकर तर्कना किये बिना रहा ही नहीं जाता। प्रथम प्रेममें अनिष्ट की ही शंका होती है। इन्हीं सब भावोंमें प्रेम निरन्तर बढ़ता रहता है। प्रेमकी वृद्धिकी कोई सीमा नहीं, इयत्ता नहीं। वह बढ़ता ही जाता है, बढ़ता ही जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नन्द यशोदाजीके साथ बातें करते करते उद्धवजीने वह रात क्षणके समान बिता दी। उन्हें पता ही न चला रात्रि कब बीत गई! पता तो उन्हें तब चला, जब उन्हें घमर घमरका शब्द सुनाई दिया। उद्धवजीने नन्दजीसे पूछा—"बाबा! यह क्या हो रहा है?"

आकाशके तारोंकी ओर देखकर नन्दजी बोले—"उद्धवजी! प्रातःकाल हो गया। देखो, रात कुछ मालूम ही न पड़ी कब व्यतीत हो गई। कृष्ण वियोगमें ये ही रातें हमारी रोते रोते युगके समान व्यतीत होती थीं, आज कृष्णकथामें पूरी रात्रि पलके सदृश प्रतीत हो गई। अरुणोदय हो गया। यह घर घर दही मथा जा रहा है। हमारे यहाँ व्रजमें सूर्योदयके पूर्व ही स्त्रियाँ घरभरके लिये आटा पीसकर दही मथकर रख देती हैं। तब गृहस्थीके अन्य काम काज करती हैं।"

उद्धवजीने आश्चर्यके साथ कहा—"बाबा! यह तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों ताल स्वरमें बहुतसे बाजे एक लयमें बज रहे हों?"

सूखी हँसी हँसकर नन्दजीने कहा—"ये गाँवोंकी गँवारिनि गोपियाँ ताल स्वर क्या जानें। सबको दही मथनेका अभ्यास है। सबके हाथ सधे हुए हैं। सब एक ही गतिसे मथ रही हैं। मथते

समय इनके हाथोंकी चूड़ियाँ, कंकण तथा अन्यान्य आभूषण हिल हिलकर खनखन शब्द करते हैं। अनजान पुरुष इन्हें बाजा ही समझते हैं। ये बाजे बजाये नहीं जा रहे हैं। आभूषण अपने आप बज रहे हैं। दही मथते समय, आटा पीसते समय, तथा अन्न आदि कूटते समय गीत गाते रहनेसे श्रम नहीं मालूम पड़ता, इसलिये ये व्रजाङ्गनायें दही मथते समय कुछ गुनगुनाती रहती हैं, गीत गाती रहती हैं।"

उद्धवजीके जीवनमें व्रजमें निवास करनेका यह प्रथम ही अवसर था। उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। वे बोले—"बाबा! अब अरुणोदय हो गया। अब तो मैं कुछ दिनों तक यहाँ रहूँगा। फिर बातें होंगी। अब मैं स्नानादिसे निवृत्त होने तथा आह्निक कृत्य करने जाता हूँ।"

नन्दजीने कहा—"अच्छी बात है, भैया! जाओ सेवकको साथ ले जाओ।"

उद्धवजी बोले—"नहीं, बाबा! सेवक की क्या आवश्यकता है, मैंने देखा है।" यह कहकर वे अकेले ही हाथमें पात्र लेकर चल दिये।

उद्धवजी बड़े कुतूहलके साथ गोपोंके घरोंको झाँकते जाते थे। वहाँ उन्हें एक विचित्र सरस संसार दिखाई दिया। गोपोंके घरोंमें दीपक जल रहे हैं। गोपाङ्गनायें घरोंको झाड़ बुहारकर उनमें जल छिड़ककर तथा वास्तुपूजा करके दही मथ रही हैं। घरकी दीवालोंकी खिड़कियोंमें छोटी-छोटी रस्सी डालकर उनके बीचसे रई निकाली गई है। सामने बड़े-बड़े माट रखे हैं, छोटे छोटे पात्रोंसे उस माटमें दही उड़ेल लिया गया। उसमें रई डाल दी है। रईमें एकदाम लपेटी हुई है। दामके दोनों छोरोंपर काठकी छोटी-छोटी हाथसे पकड़नेको खुंडी लगी हैं। मटकाके नीचे छोटे छोटे पत्थरोंके टुकड़े लगे हैं, जिससे माट हिलने

डुलने न पावे। वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हुई गोपिकायें पीढ़ापर बैठकर दहीको मथ रही हैं। उनके वक्षःस्थल और पीन उभरे हुए हैं। करोंकी उँगलियाँ कोमल और पतली-पतली हैं उनसे वे बार-बार रस्सीको दायें-बायें खींच रही हैं। खींचनेसे घमर-घमरका शब्द हो रहा है। दही पतली होकर उसमें झाग उठ रहे हैं। झाग उठनेसे मथनेका शब्द गम्भीर हो गया है। जब ये इधर से उधर रस्साको खींचती हैं, तो उनके करोंमें जो कंकण, छन्न, पछेली, दुआ, मठिया, परीबन्द तथा चुड़ियाँ हैं ये हिलनेसे परस्परमें रगड़ खानेसे बजती हैं। कंठमें जो गुलूबन्द, कण्ठा, कण्ठश्री, दुमनियाँ, तिमनियाँ, पंचमनियाँ, एकलरी, दुलरी, तिलरी, चौलरी, पचलरी, सतलरी, जौमाल, चम्पकली, चन्द्रहार, पूरनमाल, मोहनमाल तथा नाना प्रकारके हार पड़े हैं ये भी खनखन शब्द करते हैं। पैरोंके पाइजेब, कड़े, छड़े, बिछुआ तथा नूपुर आदि भी बीच बीचमें बज जाते हैं। उनके नितम्ब और स्तन पीन होने से मंथरगतिसे हिलते हैं। अतः ताल स्वर और लय सब सम में अवस्थित रहते हैं। हाथोंके हिलनेसे उनका कान्तिमय मुख भी हिलता रहता है। कानोंके कनक कुंडलोंकी कमनीय कान्तिसे कुमकुममंडित कपोल कुछ अरुण वर्णके बनकर विचित्र छटा छिटका रहे हैं। दीपककी दीप्तिसे दमकती हुई तथा आभूषणोंके मणियोंकी कान्तिसे चमकती हुई वे व्रजाङ्गनायें बिजुलियोंके समान शोभायमान प्रतीत होती थीं। ये अपनी कमनीय कंठसे कृष्णकी कलित कथाओंका गान करती जाती थीं। मानों वे गानकी दिव्य सुगन्धिसे संसारके समस्त अमंगलोंको नष्ट कर रही हों। दशों दिशाओंको पावन कृष्णचरित्रसे भर रही हों। उनका वह दधिमथनका निनाद तथा आभूषणोंकी ताल लयके सहित झंकार और परम सुखमय संगीत भूलोकमें ही नहीं स्वर्गलोक तक व्याप्त हो रहा था। स्वर्गमें बैठे बैठे देवता

दिव्य संगीतसुधाका सुखपूर्वक पान कर रहे थे और गोपाङ्ग-
ओंके सौभाग्यपर सिहा रहे थे। इनकी प्रशंसा कर रहे थे।
वजी इस शोभाको निहारते हुए जलाशयकी ओर चले गये।
र गोपिकायें अपने दधिमंथन आदि कर्मोंसे निवृत्त होकर
ने-अपने घरोंके द्वारोंपर आईं।

भगवान् तमारि मरीचमाली रक्तवसन धारण किये प्राची
शसे अनुमति लेकर उदित हुए। गोपिकाओंने दूरसे ही नन्द-
के द्वारपर एक सुवर्णमंडित रथ खड़ा देखा। देखते ही उन्हें
म आश्चर्य महान् विस्मय हुआ। एकने दूसरीको दिखाया,
रीने तीसरीको क्षणभरमें बात फैल गई। झुन्डकी झुन्ड गोपि-
यें उस रथको देखने एकत्रित हो गईं। गोपियोंको रथ पहि-
ननेमें देर नहीं हुई। किसीने पूछा—"यह किसका रथ है।"
बोल उठी, "नहीं पहिचानती यह तो वही अक्रूरका क्रूर
है।"

इसपर कई एक साथ बोल उठीं—"इसमें कौन आया है ?
श्यामसुन्दर आये हैं ?"

यह सुनकर दूसरी दाँत पीसकर बोली—"श्यामसुन्दर क्यों
ने लगे। अब तो वे राजा हो गये, व्रजमें उनका रखा ही क्या
अब तो वे नागरिक हो गये। पढ़ लिख गये, पढ़े लिखोंका
पालोंके गाँवमें क्या काम ?"

इसपर एक अन्य बोली—"तो प्रतीत होता है, वही क्रूर
हर फिर आया।"

दूसरीने पूछा—"अब अक्रूर किसे लेने आया है ? हमारे
णोंको तो वह प्रथम ही हर ले गया। अब उसे किसकी
वश्यकता है। हम सब व्रजवासी तो प्राणहीन हैं।"

इसपर एक बोली—"अक्रूर बड़ा स्वामिभक्त है। पहले
मीके कहनेसे हमारे प्राणनाथको ले गया, हमें मृतकतुल्य

बन गया। यह काम करके उसने अपने जीवित स्वामीका
कार किया, अब उसका स्वामी मर गया है, तो मृतकको मां
पिंड देने हमें लेने आया होगा। इस प्रकार हमारे मांससे
मरे हुए स्वामीके पिन्डदानादि और्ध्वदैहिक कर्म करके
ऋणसे उऋण हो जायगा।"

इसपर सब बोलीं—"हम तैयार हैं, अक्रूर हमें ले
उसी मथुरामें चलकर मरेंगी जहाँ हमारे मदनमोहन हैं।
है मरते समय उनके दर्शन ही हो जायँ या हमारे मृतक शरी
ही वे आकर छूवें। इतनेसे ही हम कृतार्थ हो जायँगी।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपिकायें इस प्रकार ऊह
कर ही रही थीं, कि उन्हें सामनेसे नित्य कर्मोंसे निवृत्त
उद्धवजी आते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखते ही पहिले तो
दूरसे श्यामसुन्दरका भ्रम हुआ, फिर वे समझ गईं यह
सुन्दरका भेजा हुआ कोई आदमी है। यह रथ इसीका है।
रथमें यह मथुरासे आया है।" ऐसा निश्चय करके वे उद्ध
को ध्यानपूर्वक देखने लगीं।

गोपियोंने देखा, इसकी चाल, ढाल, चलन, चितवन
रंग अवस्था सब श्यामसुन्दरके सदृश ही है। उन्हींका प्र
यह पीताम्बर पहिने हुए है। उन्हींकी प्रसादी कमल कुसु
अम्लान माला धारण किये हुये हैं। इसके कानोंमें मणि
कुंडल शोभित हो रहे हैं। जिनकी आभासे इसका श्र
आनन देदीप्यमान हो रहा है। इसकी विशाल बाहु भी वनम
के सदृश जानुपर्यन्त लटकी हुई हैं। तो वे तर्कना करने लग
चाल-ढाल और रथको देखकर तो यही अनुमान होता है,
मथुरासे आया है, कोई राजवंशका ही कुमार है। यह
साधारण पुरुष नहीं है। श्रीकृष्णका अत्यन्त ही निकटतम
रङ्ग अनुचर है। श्रीकृष्णका कृपाप्रसाद इसने प्राप्त कर

। श्यामसुन्दरकी प्रसादी वस्तुओंसे इस बातका सहजमें ही
नुमान लगाया जा सकता है। यदि यह श्रीकृष्णका अत्यन्त
ारङ्ग है, तो अवश्य ही उन्होंने दूत बनाकर इसे हमारे पास
ा है, कोई शुभ सन्देश इसके हाथों हमारे लिये पठाया
।" ऐसा अनुमान करके वे अत्यन्त उत्कण्ठावश पवित्र कीर्ति
हरिके चरणकमलाश्रित श्रीउद्धवजीके निकट गईं उन्हें चारों
रसे प्रेमपूर्वक घेरकर पूछने लगीं—"क्या आप मथुरासे
ये हैं। व्रजको देखनेके लिये, आपने कष्ट किया है। देखिये
मुख जो हरी-हरी कदमखंडी है, वहाँकी शोभा बड़ी ही अद्-
है। आप वहाँ पधारें तो हम आपसे कुछ बातें करें।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रेमियोंके संकेतोंको प्रेमी ही
मझ सकते हैं। उद्धवजी उनके भावको समझ गये, ये श्रीकृष्ण
बातें एकान्तमें पूछना चाहती हैं। अपने दुख सुखकी बातें
ान्त में बैठकर कहना चाहती हैं। अतः उन्होंने कहा—"मैं
ऊँगा" यह सुनकर गोपिकायें परम उत्कंठाके साथ कदम
डियोंकी ओर चली गईं।

छप्पय

दिनकर निजकर किरन प्रसारत उदित भये जब।
नन्दपौरि पै लख्यो कनकमय गोपिनि रथ तब॥
ह्वैके विस्मित कहें परस्पर को रथ लायो।
का श्वफल्कसुत फेरि मधुपुरी तैं व्रज आयो॥
करति तर्कना परस्पर, उपमा दै दै कें सबहिँ।
नित्य कर्म तैं निबटिकैं, आये उद्धवजी तबहिँ॥

उद्धजी और व्रजाङ्गनायें

[१०६२]

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतम्,
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ३ श्लो

छप्पय

निरखे उद्धव कमलनयन पीताम्बरधारी।
कमलकुसुम वनमाल अलकवर चितवन प्यारी॥
समुझीं कछु सन्देश श्यामको लैकें आयो।
मातु पिता संतोष हेतु घनश्याम पठायो॥
करि आदर एकान्तमहँ, उत्कंठित ह्वै लै गईं।
समाचार सब श्यामके, सहम सकुचि पूछति भईं॥

हृदयमें प्रेम भरा हो और ऊपरसे अटपटी बातें कही
तो वे ऐसी लगती हैं मानो नारियलका फल, ऊपरसे देखने

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब व्रजाङ्गनाओंको
हुआ, कि ये उद्धवजी रमापति श्रीकृष्णचन्द्रके सन्देशको लाने
दूत हैं, तो उन्होंने लजीली मुसकानमयी चितवन तथा सुमधुर
आदिसे विनयावनत होकर उनका भलीभाँति सत्कार किया। फिर
एकान्त स्थानमें आसन पर बिठाकर श्रीकृष्णकी बातें पूछने लगीं।"

ऊबड़ खाबड़ सूखा सा लगता है किन्तु भीतर उसमें मीठी गिरी छिपी रहती है। इसके विपरीत जो बनावटी चिकनी चुपडी बातें होती हैं, वे इन्द्रायनके, फरफेंदुए के फलके सदृश होती हैं, जो देखनेमें ऊपरसे सुन्दर होता है, भीतर उसमें कड़वाहट भरी रहती है। घी का लड्डू चाहे ऊपरसे सुन्दर न बना हो, किन्तु उसके स्वादमें कोई अन्तर नहीं आता, इसी प्रकार प्रेमकी बातें कैसे भी कही जायँ, उनसे कहने सुनने वाले दोनोंको ही सुख होता है। दो प्रेमियोंकी बातें सुननेको मिल जायँ, तो जीवनमें इससे बड़ा लाभ कोई और हो नहीं सकता। प्रेमियोंका संवाद सुनना ही संसारमें सर्वश्रेष्ठ सुख है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब गोपियोंने समझ लिया कि ये श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तो उन्हें कदम्बखंडी में आनेके लिये कहकर गोपिकायें वहाँ जा बैठीं और बड़ी उत्सुकतासे उद्धवजीकी प्रतीक्षा करने लगीं। उद्धवजी घरमें आये। मैयाने उन्हें जलपान कराया। फिर उद्धवजी व्रजराजसे बोले—"बाबा ! मैं तनिक व्रजमें घूम आऊँ श्यामसुन्दरके सुहृद सखा आदिकोंसे मिल आऊँ। व्रजकी शोभा भी देख आऊँ।"

नन्दजीने कहा—'बड़ी अच्छी बात है भैया ! जाओ सभी श्रीकृष्णके समाचार सुननेको समुत्सुक हैं। घूम फिरकर शीघ्र ही आ जाना।"

"हाँ बाबा ! मैं शीघ्र ही आऊँगा" यह कहकर उद्धवजी अँगरखा पहिनकर पगड़ी बाँधकर कंधेपर दुपट्टा डालकर कदंब-खंडियों की ओर चल दिये। गोपिकाओंके लिये पलपल भारी हो रहा था वे दूर तक आ आकर देखती थीं। जब उद्धवजी न दिखाई देते, तो वे निराश हो जातीं। कुछ कालमें उन्हें उद्धवजी सामनेसे आते हुए दिखाई दिये; सभीने संभ्रमके

उनका स्वागत किया। बैठनेका सुन्दर आसन दिया। सभी चारों ओर से उन्हें घेरकर बैठ गईं। वे अपनी मधुर मुसकानमयी चितवनसे लज्जापूर्वक उद्धवजीको देख रही थीं। वे चाहती थीं, सर्वप्रथम उद्धवजी हमसे कुछ पूछें, किन्तु उद्धवजी तो उनकी प्रेममयी दृष्टि और अनुपम उत्सुकताको देखकर ही आश्चर्य चकित हो गये। वे निर्णय ही न कर सके, कि इनसे सर्वप्रथम क्या पूछूँ।

उद्धवको दुविधामें फँसा देखकर ब्रजाङ्गनायें उनकी विवशता को समझ गईं। इसलिये सर्व प्रथम उन्होंने ही कहना आरम्भ किया "महानुभाव! हम अनुमान लगा रही हैं, कि आप यदुवंश विभूषण श्रीकृष्णजीके दूत बनकर ब्रजमें आये हो ?"

धीरेसे उद्धवजीने कहा—"आपका अनुमान कभी अन्यथा हो सकता है क्या ? अवश्य ही मुझे यदुनाथने यहाँ ब्रजमें सन्देश देनेके लिये पठाया है।"

गोपिकाओंने कहा—"हाँ, उनके माता पिता यहाँ रहते हैं, अतः तुम्हारे स्वामीने कुछ लोकलाजसे डरकर उनकी कुशल क्षेम पूछने आपको भेजा होगा ?"

उद्धवजीने कुछ अस्पष्ट स्वरमें कहा—"नहीं ऐसी बात नहीं है। केवल माता पिताकी कुशल लेनेही मुझे नहीं भेजा है। उनके अतिरिक्त भगवान् औरोंके लिये भी चिन्तित हैं।"

आश्चर्यकी मुद्रा दिखाते हुए व्यंगके स्वरमें ब्रजाङ्गनायें बोलीं—"माता पिताके अतिरिक्तको ब्रजमें और कोई ऐसा दिखाई देता नहीं, जिसकी उन्हें याद आवें। जिसके लिये वे दूत भेज कर सन्देश पठावें। माता पिताके अतिरिक्त अन्य किसीसे उन्हें क्या प्रयोजन ? अपने माता पिता, भाई बहिन जिनसे रक्तका सम्बन्ध है, इनके स्नेहबन्धनको काटना तो मुनियोंके लिये भी कठिन हो जाता है। कैसे भी त्यागी विरागी हो जायँ माता पिता भाई बहिनको देखकर हृदय भरही आता है। श्रीकृष्णको

मथुराका वैभव पाकर भी माता पिताकी याद आ जाना आश्चर्य की बात नहीं है।"

उद्धवजीने कहा—"भगवान्‌को माता पिताकी याद नहीं आती है। औरोंकी भी वे बहुत याद करते रहते हैं। वे तुम्हारी मैत्रीकी बात याद करके भी अधीर हो जाते हैं।"

यह सुनकर व्यंगके स्वरमें गोपियाँ कहने लगीं—"अजी, उद्धवजी ! क्यों तुम मुँह देखी बात कह रहे हो ? क्यों हमें फुसला रहे हो। अपने सगे सम्बन्धियोंमें स्नेह तो स्वाभाविक होता है उसे तो मेटना भी चाहें तो नहीं मिटता। स्वजनोंके अतिरिक्त जो अन्योंके साथ मैत्री की जाती है, वह किसी न किसी स्वार्थको सम्मुख रखकर की जाती है। वह मैत्री नहीं। प्रयोजन की प्रीति है स्वार्थका स्नेह है अदले बदलेका व्योहार है। प्रेमका स्वांग है। जबतक अपना प्रयोजन निकलता है, तब तक तो प्राण देने का ढोंग रचते हैं। जहाँ स्वार्थ सिद्ध हुआ, प्रयोजन पूर्ण हुआ, तुम अपने घर हम अपने घर। कहाँकी प्रीति कैसी मैत्री ?"

उद्धवजीने कहा—"ऐसी बात नहीं, सब स्वार्थसे ही स्नेह नहीं करते, कुछ बिना स्वार्थके केवल प्रेम करनेके लिये भी प्रेम करते हैं।"

गोपियोंने गम्भीरताके साथ कहा—"ऐसा प्रेम संसारमें तो देखा नहीं जाता। देखिये संसारमें स्त्री पुरुषोंका प्रेम सबसे अधिक घनिष्ट माना जाता है। यौवनके उफानमें एक दूसरेपर प्राण देनेको तत्पर रहते हैं। सौन्दर्यके पीछे यौवनके पीछे पागल हो जाते हैं। जहाँ सुन्दरता नष्ट हुई, यौवन ढल गया, वहाँ वैसा प्रेम नहीं रहता। किसी प्रकार गाड़ी ढकेली जाती है। भौंरोंको देखिये फूलोंपर प्राण देते हैं उनके ऊपर गुनगुनाते हुए मड़राते रहते हैं। उनके बन्धनमें बँध जाते हैं। कमलोंके साथ मु

हैं। किन्तु जहाँ पुष्पोंमें मधु नहीं रहा, वहाँ उनके समीप झाँकते भी नहीं। क्यों है न यही बात ?"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, यह तो है, किन्तु सब पुरुष भ्रमरोंके समान ही स्वार्थी नहीं होते। पाँचों उँगली एक सी नहीं होतीं। संसारमें सभी प्रकारके लोग होते हैं।"

गोपिकाओंने कहा—"हमें तो सम्पूर्ण संसारमें ही स्वार्थका बोल बाला दिखाई देता है। देखिये वेश्यायें प्रेमका कैसा ढोंग रचती हैं। दूरसे वे सजीवजो कैसी सुन्दरी दिखाई देती हैं। अपने धनिक प्रेमियोंके कंठमें बाहु डाकर उसे अपना शरीर समर्पित कर देती हैं। इतना स्नेह प्रदर्शित करती हैं, कि मनुष्य पागल हो जाता है, किसी भी प्रकार उनके फंदेसे छूटनेमें असमर्थ हो जाता है, अपना तन, मन, धन, बलवीर्य तथा सर्वस्व उनके ऊपर निछावर कर देता है। किन्तु जहाँ वह उनका प्रेमी धनहीन हुआ। उनकी इच्छानुसार धन देनेमें असमर्थ हुआ, कि फिर उससे मुँहसे बोलतीं तक नहीं। कोठेपर पैर नहीं रखने देतीं।"

उद्धवजीने कहा—"तुमने भी कैसा बुरा दृष्टान्त दिया। वेश्या तो वेश्या ही ठहरीं। वे तो पण्यस्त्री कहाती ही हैं। धनके लिये ही वे प्रेमका जाल बिछाती हैं। सब जानते हैं, उनका प्रेम स्वार्थका होता है।"

बीचमें ही गोपियाँ बोल उठीं—"उन्हींका प्रेम स्वार्थका नहीं होता, सभीका स्वार्थका ही प्रेम होता है। अच्छा वेश्याओंकी बात छोड़ दो। शास्त्रकार कहते हैं—"आठों लोकपालोंके अंशसे राजा होता है। राजाके शरीरमें सभी देवताओंका वास होता है अतः प्रजाको राजाका सदा आदर करना चाहिये। उससे निरन्तर प्रेमका व्यवहार करना चाहिये।" किन्तु क्या समस्त प्रजा सभी राजाओंसे प्रेम करती है। राजा जबतक दस्युओंको भगानेमें

समर्थ रहा, पालन करनेके योग्य रहा, तब तक उससे सब प्रेम करते हैं। जहाँ वह बलहीन हो गया। प्रजापालनमें असमर्थ हुआ, वहाँ प्रजा उस राजाका परित्याग कर देती है। उसे आय-का षष्ठांश नहीं देती। राजाप्रजामें प्रेम भी स्वार्थसे ही है। विद्यार्थियोंको देखिये। जब तक विद्या पढ़ते हैं तबतक गुरुजीकी सेवा करते हैं, पैर छूते हैं जहाँ पढ़ लिख गये, कहाँके गुरु कैसे आचार्य। अपने स्त्री बच्चोंमें ऐसे घुलमिल जाते हैं, कि कभी गुरुके दर्शनोंको नहीं जाते। इन बड़े-बड़े यज्ञ करानेवाले वैदिक ब्राह्मणोंको देखो। जबतक यजमानसे काम निकलता है, उससे दक्षिणा नहीं मिलती, तबतक लालाजी, सेठजी, श्रीमान् और न जाने क्या क्या कहते हैं। जहाँ दक्षिणा मिल गई टेंट गरम हो गई। तहाँ यजमान अपने घर यजमानी अपने घर। सीधा-सामान बाँधा घरकी ओर चल दिये।"

उद्धवजीने कहा—"ये सब तो अजीविकाके लिये एक दूसरे से प्रेम करते हैं। प्रेमके लिये प्रेम तो ये नहीं करते ?"

गोपियोंने दृढ़ताके साथ कहा—"हमें आप एक उदाहरण दें प्रेमके लिये प्रेम कौन करता है, हमें तो संसारमें स्वार्थका ही प्रेम दिखाई देता है। पक्षी भी उसी पेड़से प्रेम करते हैं, जो पेड़ फल वाला हो। उसीपर रहेंगे, दिन भर उसीके गीत गायेंगे। जहाँ फल समाप्त हुए कि फुर्र-फुर्र करके उड़ जाते हैं। फिर उसको देखते भी नहीं। अच्छा ये तो पशु पक्षी ठहरे। ये जो घरबार छोड़े लँगोटी लगाये साधु महात्मा घूमते हैं क्या इनका प्रेम हृदय-से होता है ?

दोपहरको जहाँ भूख लगी कि ये गृहस्थियोंके घर जायँगे। कितना प्रेम दिखायेंगे। तुम्हारे बाल बच्चे अच्छे हैं। बड़ा लड़का कहाँ है, कुछ पढ़ता है या नहीं। लड़की विवाह योग्य हो गई, उसके लिये कोई योग्य वर ढूँढ़ना चाहिये।" ऐसी —

कर बातें करते हैं मानों हमारे ये परम हितैषी हैं। आत्मीय हैं हमसे बड़ा प्रेम करते हैं। जहाँ पेट भरके रोटी खाई। अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ, फिर चाहे लड़का भाड़में जाए, लड़की चूल्हे में पड़े उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। दूसरे दिन दूसरे गृहस्थसे जाकर ऐसी ही चिकनी चुपड़ी बातें बनावेंगे। संसारमें जिधर देखो उधर ही स्वार्थका प्रेम दीखता है। जीवनभर जिस वनमें मृग रहते हैं, जहाँ उसमें आग लगी कि उस वनको छोड़कर भाग जाते हैं। व्यापारी धनके लिये अपनी जन्मभूमिको छोड़ जाते हैं। पत्नी अपने स्वार्थके लिये पतिकी हत्याकर देती है। राज्यके लिये भाई-भाईका गला काट देता है। सम्पत्तिके लिये पुत्र पिता को जहर दे देता है। स्वार्थसिद्धिके लिये मनुष्य स्वाभाविक प्रेमको भी तिलाञ्जलि दे देते हैं। जार पुरुष परनारीके प्रति कितना प्रेम प्रदर्शित करता है, किन्तु अपना स्वार्थ सिद्ध होनेपर वह उस अनुरागिणी स्त्रीका तनिक भी ध्यान नहीं करता। स्वार्थ साधके चला जाता है। सो, उद्धवजी! कृष्ण तो स्वार्थी हैं। उनकी मैत्री दिखावटी है। जब कोई उनसे प्रेम करनेको नहीं था, तब उन्होंने हमसे झूठा बनावटी प्रेम किया। अब तो उन्हें नगर-की रहनेवाली सुन्दरियाँ मिल गई हैं। अब वे हमारी क्यों याद करेंगे। शिष्टाचारके लिये लोक दिखावेके निमित्त माता-पिता की सुधि लेने आपको उन्होंने भेजा होगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार श्रीकृष्णकी चर्चा करते-करते उन गोपाङ्गनाओंकी मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्ति श्रीकृष्णचन्द्रके ही चरणोंमें लग गई। भगवान्का स्मरण करते-करते उन्हें भावसमाधि हो गई। वे घर-द्वारकी समस्त चिन्ताओंको भूल गईं और तन्मय होकर मूर्छित हो गईं। उद्धवजी उनकी ऐसी प्रेमकी दशा देखकर परम विस्मित हुए।"

छप्पय

प्यारेको सन्देश कहन व्रज आप पधारे ।
हो कारेके सखा रंगके तुमहू कारे ॥
समुझति हीं हम सदा प्रेम घनश्याम करैंगे ।
छाया तन मन प्रान सरिस नित सङ्ग रहैंगे ॥
फलहित खग मधुहित भ्रमर, विटप सुमन सँग प्यार है ।
निकसे कपटी कुटिल हरि, स्वारथको संसार है ॥

भ्रमरगीत

[१०६३]

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

उद्धव बैठे चुप्प व्यग सुनि हिय भरि आयो ।
मधुलोलुप इक भ्रमर सहजही तहँ उड़ि आयो ॥
करि उद्धवकूँ लक्ष्य प्रेमको पाठ पढ़ायो ।
ताहि मानि हरिदूत कोप अरु मान दिखायो ॥
गुनगुन करि आयो भ्रमर, कहति कुपित पद पकर मत ।
तू मधुकर माधव सरिस, मधु लोलुप स्वारथनिरत ॥

उत्प्रेक्षा व्यञ्जनाके द्वारा किसीके सम्बन्धकी बात किसीपर डालकर कही जाती है, तो उसे व्यङ्ग करते हैं। काकु वचनोंसे भी व्यंग किया जाता है, दूसरोंपर डालकर भी कहा जाता है और प्रत्यक्षमें शब्दोंके चातुर्यसे भी कहा जाता है। व्यंगवचन जितना ही सरस होगा, उसमें जितना ही मसत्व होगा, वह

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! कोई गोपी ध्यानमें श्रीकृष्ण-संगम सुखका अनुभव कर रही थीं, उसी समय उसे कोई भ्रमर दिखाई दिया। उसे देखकर और उसमें अपने प्यारेके भेजे हुए दूतकी कल्पना करके वह इस प्रकार कहने लगी।"

उतना ही रोचक और आनन्ददायक होता। जैसे समस्त निरू-
इणोंमें शृङ्गारका प्रधान स्थान है, वैसे ही जितने सरस प्रसंग
हैं, उनमें विरहमिश्रित व्यंग वचनोंका ही प्राधान्य है। प्रेमीके
प्रति व्यंग वचन कहकर अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करना
है। हमारे मनमें उनके प्रति कितना अनुराग है, कितना प्यार है,
कितना ममत्व है, किन्तु वे कितने कठोर निर्मोही रूखे और
निस्पृह हैं यही इन प्रेमके वचनोंका तात्पर्य होता है। अपनी
विवशता और उनकी अनीतिको सिद्ध करना है। यही प्रेमका
स्वरूप है, क्योंकि प्रेम सीधा नहीं चलता, उसकी गति सर्पकी
भाँति कुटिल होती है, इसलिये प्रेमके वचन सीधे और सरल
नहीं होते। वे टेढ़े मेढ़े घुमाव-फिरावके होते हैं। समझने
वाले उनका अर्थ समझते हैं। दूसरे नीरस हृदयवाले मुँह ही
ताकते रह जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! दुख-सुख अपने आत्मीयसे
कहनेसे कुछ हलका हो जाता है। इसी प्रकार जब हृदय प्रेमसे
भरा हो और उस प्रेमके उफानको अपने प्रेमीके सम्मुख, या
ऐसे व्यक्तिके आगे जा जाकर प्रेमीसे कह दे, उनके सम्मुख
व्यक्त करनेसे चित्त शांत हो जाता है। भावोंका उफान कुछ
कालको स्थिर हो जाता है। प्रेमियोंके समय काटनेका यही तो
एकमात्र साधन है। प्यारेकी चर्चा करते रहना। अपनी विव-
शता और उनकी निष्ठुरताका बखान करते रहना। इतनी भी
औषधि न मिले तो प्रेमका रोगी कितने दिनों जीवित रह सकता
है। उसे तो अखंड समाधि लग जायगी या इस शरीरका अंत
ही हो जायगा। प्यारेके सम्बन्धमें कुछ कहते रहना यही प्रेमियों-
का व्यापार है। निरन्तर दर्शनोंकी चटपटी लगी रहे।
उत्कंठा प्रतिक्षण प्रबल होती रहे और उसमें जो
उसपर खीज होती रहे इसीमें प्रेमियोंका समय कट

गोपिकायें जब उद्धवजीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी निष्ठुरता की चर्चा कर रही थीं, तब उनकी आँखोंके सम्मुख श्रीकृष्णकी वे सभी कमनीय क्रीड़ायें जो उन्होंने किशोरावस्था तथा कुमारावस्थामें की थीं नाचने लगीं। उन सभी लीलाओंके स्मरणमें उनका हृदय भर आया। अन्तःकरणमें प्रेमका बवंडर सा उठने लगा। वे अपने भावोंको संवरण न कर सकीं इसलिये लोकलाजको तिलाञ्जलि देकर ढाह मारकर रोने लगीं। रोते रोते वे मूर्छित हो गईं और भाव जगत्में श्रीकृष्ण संग पाकर निवृत्त हो गईं।

उन सखियोंमें जो सबसे प्रधाना थीं श्रीकृष्णकी परमप्रेयसी थीं, वे श्यामसुन्दरके समागम सुखका समाधिमें अनुभव कर रही थीं। सहसा उनके चरणोंके सम्मुख एक काला भ्रमर आकर गुनगुन करने लगा। वह भ्रमर और कोई नहीं था। वही छलिया, बहुरूप प्रिय, कपटी कृष्ण भ्रमरका रूप रखकर प्रेम भावके उद्दीपनके निमित्त उद्धवजीको प्रेमकी शिक्षा दिलानेके निमित्त आया था और कुछ कहकर गुनगुना रहा था। भावमें प्यारीजी प्रियतमसे मान कर रही थीं। सहसा मधुकरकी गुनगुनाहट सुनकर उनका ध्यान भंग हुआ। उन्हें ऐसा लगा मानों मदनमोहनने मुझे मनानेको इस मधुकरको दूत बनाकर भेजा है और यह उनकी ओरसे मेरे पैरोंको छू रहा है, तथा प्यारेकी निष्ठुरताके लिये क्षमा याचना कर रहा है। इससे उनका वही भाव बना रहा और उस भ्रमर दूतपर कुपित होकर उससे व्यंग वचन बोलने लगीं। भौंरा भी कुछ गुनगुन शब्द बोलता था, किन्तु उसकी भाषाको प्यारीजीके अतिरिक्त कोई समझता ही नहीं था। उसके गुनगुन शब्दका अर्थ समझकर वे भी उसका उत्तर देतीं। इसी प्रकार वे भ्रमरको उपलक्ष्य करके श्रीकृष्णके संबंधमें बहुत सी खरी खोटी बातें कहने लगीं।

प्यारीजी कहने लगीं—"हे धूर्तके सखे, भौंरे! देख सावधान तू हमारे पैरोंको मत छूना।"

भौंरा बोला—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी मैंने क्या अपराध किया है, जो आप मुझे चरण स्पर्शसे वञ्चित रख रही हैं?)"

प्यारीजीने कहा—"कपटीके सखा कपटी ही होते हैं। कारे सभी कुटिल होते हैं। कृष्णवर्ण ही बुरा होता है, एक कृष्णने हमारे साथ छल किया है। दूधका जला छाछको फूँक-फूँककर पीता है। श्यामसुन्दरने हमें ठगा है, हमारे साथ विश्वासघात किया है। क्षणभर प्रेम करके हमें तड़पाया है। तबसे हमें कारोंसे घृणा हो गई है। तू हमारे शरीरसे हाथ मत लगाना।"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन। (अर्थात् प्यारीजी आप मुझे हाथसे न छूने देंगी, तो मैं अपनी मूँछोंसे आपके चरणों को छूऊँगा।)"

चौंककर श्रीजी बोलीं—"देखना, तेरी इन बड़ी बड़ी मूँछोंसे मुझे बड़ी घृणा है। क्योंकि पहिली बात तो यह है कि तेरी मूँछें लम्बी हैं। लम्बी दाढ़ी मूँछोंवाले कपटी होते हैं। फिर ये काली हैं। काले प्रायः कुटिल होते हैं, तीसरे तेरी मूँछें कड़ी हैं। कड़े बालवालोंका हृदय भी कड़ा होता है, चौथे इन मूँछोंमें जो केशर लगी हैं उससे मुझे अत्यन्त ही घृणा है।"

भ्रमरने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी केशर तो बड़ी सुगन्धित वस्तु होती है, उससे तो चित्त प्रसन्न होता है, आपके वक्षःस्थलमें भी तो केशर लगी है?)"

प्रियाजीने कहा—"मुझे केशरसे घृणा थोड़े ही है। तेरी मूछोंकी केशरसे मुझे घृणा है। वह इसलिये कि श्रीकृष्णके कंठमें अम्लान पुष्पोंकी माला पड़ी रहती है, उसी मालासे कुब्जा आदि दासियोंका आलिंगन करते हैं, इससे उसके वक्षःस्थलकी

केशर उस मालामें लिपट जाता है। उसी मालापर ु ले
नू बैठना है, तेरी मूँछोंमें वह केशर लग जाती है। इसलिये
केशरको देखकर हमें डाह होतो है, घृणा होती है। क्षत्रिय याद
की सभामें क्या यह प्रशंसाके योग्य है। दासीके संसर्गके सूचि
करनेवाले चिह्न क्या सभ्य समाजमें हास्यास्पद नहीं हैं।
समझना होगा यह हमारे प्यारेका प्रसाद है। हमें ऐसा प्र
नहीं चाहिये। इस प्रसादको वे अपनी मानिनी कामिनियोंको
प्रदान करके उन्हें प्रसन्न करें। अतः तू हमारे पैरोंको मत छूना

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी हम
भी तो सही श्रीकृष्णने तुम्हारा क्या अपकार किया है,
तुम्हारे साथ विश्वासघात किया ?"

प्यारीजी बोलीं—"तुम्हारे कारे स्वामीने हमारे साथ वधि
का-सा, बहेलियेका-सा, जुआरीका-सा तथा सुरापीका सा व
किया है। जैसे वधिक सर्वप्रथम पशुको हरी हरी घास खिला
प्रेमसे थपथपाकर विश्वास उत्पन्न करा लेते हैं, फिर सह
उसके कंठपर छुरी चला देते हैं, उसका वध कर देते हैं,
बहेलिया बीन बजाकर दाने बखेरकर पशुपक्षियोंको लाल
देकर बुला लेता है, फिर फँसाकर मार डालता है। जैसे जुआ
पहिले कुछ जिताकर लोभ उत्पन्न करा देते हैं और फिर सब
अपहरण कर लेते हैं। जैसे सुरापी प्रथम एकएक चुल्लू
पिलापिलाकर प्रथम लत डाल देते हैं, जब वह सुरापी
जाता है, तो उसे छोड़ देते हैं। वैसे ही श्रीकृष्णने हमें फँसा
कहींकी नहीं रखी। प्रथम हमें अपने अधरामृतका लाल
देकर फँसा लिया। प्रथम तो उस अत्यंत मधुर परममादक रस
हमें पिला दिया उसका आदी बना दिया। जब हम उससे मद
माती हो गईं, तो परदेशीकी भाँति छोड़कर सदाके लिये चला
गया। प्रतीत होता है, तैंने ही उसे यह विद्या सिखाई है। तू भी

नों ऐसो ही कुटिलता किया करता है। प्रथम तो तू अधखिली कलियोंके ऊपर बैठ जाता है। उन्हें झकझोर देता है, उनके मधुका मत्त होकर पान करता है। जब तू पान कर लेता है तृप्त हो जाता है, तो फिर उनकी ओर आँखे उठाकर भी नहीं देखता। ऐसे ठगिया, छली, कपटी, विश्वासघाती, धूर्त, स्वार्थी मधु लोलुप व्यक्तिका विश्वास कौन करेगा। कौन उनकी चिकनी चुपड़ी बातोंको सुनेगा? अतः तू जा, लौट जा हमें तेरा सन्देश नहीं सुनना है।"

भौंरा बोला—"गुन गुन गुन (अर्थात् श्रीजी! आप तो श्रीकृष्णको ठगिया, छली, कपटी, विश्वासघाती, धूर्त, स्वार्थी और न जाने क्या क्या कह रही हैं, किन्तु लक्ष्मीजी तो उनके दा पैर पलोटती रहती हैं, वे भी तो स्त्री ही हैं?)"

श्रीजीने आश्चर्यके साथ कहा—"न जाने यह चंचला लक्ष्मी न चितचोरके चरणोंसे क्यों चिपटी रहती है? प्रतीत होता है न चतुर चूडामणिने अपनी चिकनी चुपड़ी चटकीली बातोंसे स चञ्चलाके चित्तको चुरा लिया है। स्त्रियाँ तो भोलीभाली होती , वे कपटी पुरुषों की कुटिलता क्या समझती हैं। लक्ष्मीजी- ो अवश्य फुसला लिया है। नहीं तो श्रीकृष्ण प्रीति करने योग्य नहीं। प्रीतिकी रीतिको वे क्या जानें।"

भौंराने कहा—"गुन, गुन, गुन, गुन (अर्थात् प्रियाजी! वे ाणपुरुष तो अज हैं, अच्युत हैं, अनादि हैं, अखिलेश हैं। पुण्यकीर्ति हैं, पुण्यश्लोक हैं। वेद भी उनका भेद नहीं जान ते वे भी उनको नेति नेति कहकर ही चुप हो जाते हैं।)"

प्रियाजी बोलीं—"अरे, भाटके भाई भौंरे! तू हम वनवा- सियोंके सामने उन बनवारीकी बारम्बार लड़ाई क्यों कर ा है? क्या हम उन कपटीकी कुटिल चालोंको जानती नहीं। कारे कृष्णकी कीर्तिकथा हमें अपनी ओर न खींच सकेगी।

यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी। जो उन्हें जानती न हों, वे तेरी चिकनी चुपड़ी बातोंमें भले ही आजायँ। हम तो उनकी नसनस पहिचानती हैं। तू उनका यश सुनाकर हमसे कुछ पारितोषिक प्राप्त करना चाहता होगा, सो यह तेरा प्रयास वृथा है। हम तो उनकी छठी तककी बात जानती हैं, तबकी बातें जानती हैं जब तेरा जन्म भी न होगा। नानीके आगे ननसालकी बातें बनाना व्यर्थ है। हाँ, तुझे ठगना ही है तो मथुरावासिनी नवेली नागरियोंको ठग। उनका नटवरसे नेह नवीन है। वे अभी उनकी करतूतोंसे अनभिज्ञ हैं। अभी नई ही उनकी मनमोहनसे मैत्री हुई है उनके दर्शनोंसे वे अपने मनोभव हृद रोगको शांत हुआ समझती हैं। वे तेरी लच्छेदार बातोंमें आजायँगी। वे तेरी इच्छा पूर्ण करेंगी, तुझे मुँहमाँगा पारितोषिक देंगी। हमारे सामने तेरा परिश्रम अरण्यरोदन मात्र है।"

भ्रमरने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् लाड़िलीजी! आप मेरी बातपर विश्वास करो। कृष्णको कपटी कुटिल कृतघ्न मत कहो। उन्होंने बड़े प्रेमसे अनुरागभरित हृदयसे मुझे आपके पास मनानेके लिये भेजा है। तुम उनपर प्रसन्न हो जाओ। उनके अपराधोंको क्षमा कर दो।)"

इसपर वे बोलीं—"तू सिरपर सालग्राम रखकर मुखमें सोना देकर बीच गंगाजीमें खड़े होकर भी इस बातको कहे तो भी तेरी इस बातको मान नहीं सकतीं। उन्हें हम गाँवकी गँवारिनि अहीरिनियोंसे प्रयोजन ही क्या? पुरुष सेवासे सौंदर्यसे और सुकुमारता, सरलता तथा सरसता तथा गुणोंसे रीझता है। हममें तो इनमेंसे एक भी नहीं है। न हममें सेवा करनेकी योग्यता है, भला लक्ष्मीजी जिनके निरन्तर पैर पलोटती रहती हैं उनकी हम अबला सेवा ही क्या कर सकती हैं। सौंदर्य हम गाँवकी ग्वालिनियोंमें है नहीं। नगरकी नवेली युवतियोंके

सम्मुख हम कुछ भी नहीं। दिनभर घरका कामकाज करते-करते हमारा शरीर कठोर हो गया। नारी सुलभ सुकुमारता हममें है ही नहीं। पढ़ना लिखना हम जानती नहीं। श्रीकृष्ण हमारे किस गुणपर रीझकर हमें याद करेंगे ? उन्हें कमी किस बातकी है ? संसारमें ऐसी कौन सी स्त्री होगी जो उन्हें प्राप्त न हो सके। भूलोकमें, पाताल तथा स्वर्गमें ऐसी एक भी सुन्दरी न निकलेगी, जो उनकी कपटभरी मनोहर मन्द मन्द मुसकानरूप जालमें फँसकर वक्रभ्रुकुटि विलासरूप बाणसे बिंधकर घायल न हो सकती हो ? ऐसे शक्तिशाली, प्रभावशाली वधिकको प्रयोजन ही क्या कि हम गुणहीनोंकी याद करे उनके लिये सन्देश भेजे ? हम तो मतिमलीना हैं, दीना हैं, अकिंचना हैं, हमारी याद वे क्यों करने लगे ?"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी जब आप विश्वास ही नहीं करतीं, तो मैं जाता हूँ कुछ उनके लिये सन्देश तो दे दें। मैं जाकर उनसे कहूँगा क्या ?)"

प्यारीजी बोलीं—"तू जाकर हमारी ओरसे यही कहना, कि हममें ऐसा एक भी गुण नहीं है कि आप हमें स्मरण करें। हम अबला हैं, दीना हैं, मतिमलीना हैं, कुरूपा हैं, कुलटा हैं सब कुछ हैं। हमारे गुणोंकी ओर ध्यान देनेसे तो हम सर्वथा त्यागके योग्य ही हैं। किन्तु आप अपने नामको स्मरण करलें। सब लोग आपको 'उत्तमश्लोक' कहते हैं। उत्तमश्लोक वे ही कहाते हैं जो दीन दुखियोंपर दया दिखाते हैं। दीनोंपर दया करनेसे ही तुम्हारा नाम दीनदयाल है। दीनोंके सम्बन्धी होनेसे ही तुम दीनबन्धुके नामसे प्रसिद्ध हो। अपने नामको सार्थक करो। हमसे अधिक दीन इस संसार में और कौन होगा। हमारी ओर देखकर तुम व्यवहार करते हो, सो तो ठीक ही है इसके हम योग्य ही हैं, किन्तु तुम्हारी जैसी प्रसिद्धि है, उसके अनुरूप

आपका व्यवहार नहीं है। यह हमारे साथ अन्याय है, छल है, कपट है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! व्रजाङ्गनाओंके ऐसे विनीत और प्रेममें भरे वचनोंको सुनकर भ्रमर रुक गया। पहिले तो उसने जाने का निश्चय कर लिया था, किन्तु जब उसने देखा व्रजाङ्गनाओंकी दीनता पराकाष्ठापर पहुँच गई है। वे श्यामसुन्दरसे अत्यधिक रूठी हुई हैं, तो उसने एक बार पुनः प्रयास किया। फिर श्रीजीके चरणोंके समीप मँड़राने लगा। बारबार गुनगुनाने लगा क्षमा याचना करने लगा। इसपर जो श्रीजीने उसे झिड़का उस प्रसंगको मैं आगे कहूँगा॥"

छप्पय

जिन कुंजनि सुख दयो न ते अब तनिक सुहातीं।
अधरामृत कूँ प्याइ बनाईं हम मदमातीं॥
गये त्यागि मधुपुरी न अब व्रजवास सुहावे।
तू हू करि मधुपान त्यागि सुमननि कूँ जावे॥
स्वामी सेवक एकसे, चोर चोर भाई सगे।
निज घर जा, हम अति व्यथित, हरि कटाक्ष सर हिय लगे॥

भ्रमर का तिरस्कार

[१०६४]

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० १६ श्लोक)

छप्पय

धरि चरननिपै शीश विनय अति भ्रमर दिखावै।
बार बार हरि चरित मधुर अति गाइ सुनावै॥
क्रूर कृष्णकी कथा कामिनी नाहिँ सुनैंगी।
नकटी को तिहि अधिक निकट हरि जाहि बनैंगी॥
खाइ छेद पत्तल करे, बामन बनि बलि नृप ठग्यो।
करें कहा परवश भईं, कठिन कुटिल महँ मन लग्यो॥

* श्रीजी भ्रमरसे कह रही हैं—"भौंरे! तू अपने शिरको मेरे पैरों परसे हटा ले। मैं जानती हूँ तू अनुनय विनय करनेमें बड़ा निपुण है, चिकनी चुपड़ी बातोंसे अपने दूतकर्ममें दक्ष है, यह सब तैंने उन कृष्ण से ही सीखा है। तू सोच जिन्होंने उसीके निमित्त अपने पति, सुत तथा समस्त परलोकादि धर्मोंको त्याग दिया है ऐसी हम अबलाओंको जिस अकृतज्ञने त्याग दिया है, उसका फिर भी विश्वास किया जा सकता है क्या?"

प्रेमका फन्दा अत्यन्त ही सुदृढ़ होता है। मन जिसमें फँस जाता है, फिर उसका निकलना अत्यन्त कठिन होता है। जैसे मछलीका काँटा शरीरमें घुस तो तुरन्त जाता है, किन्तु उसे जितनाही निकालना चाहो, उतना ही वह और भीतर घुसता जाता है। जिसमें मन उलझ गया है, उससे जितना ही मन हटाना चाहते हैं उतना ही और अधिक उसमें चिपट जाता है, जितना ही भुलानेका प्रयत्न करते हैं, उतनाही वह अधिक याद आता है. जितनेही उसके अवगुण देखते हैं, उतनेही वे अवगुण परम मधुर और आकर्षक प्रतीत होते हैं। जितना ही उसे कुरूप सोचते हैं उतनाही वह सुन्दर प्रतीत होता है। उसकी चर्चासे जितने ही विरक्त होना चाहते हैं उतनाही उनमें अधिकाधिक अनुरक्ति बढ़ती जाती है। इसीलिये कहा है प्रेमकी सभी बातें उलटी ही होती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भ्रमरने जब देखा व्रजाङ्गनाओं का प्रणय कोप पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है, तो वह उन सबकी स्वामिनी श्रीजीके पैरोंमें पड़ गया। अर्थात् उसने पंख फटफटाना तथा गुनगुनाना बन्द कर दिया और अपने सिरको झुकाकर श्रीजीके चरणोंका आश्रय लिया। भ्रमरको चरणोंपर सिर रख कर अनुनय विनय करते देखकर श्रीजी कहने लगीं—"अरे, मधुकर ! तू अपनी कपटमायाका ताना बाना यहाँ मत पूर। हम तेरी सभी चालोंको जानती हैं। जो मुँहके मीठे होते हैं, वे हृदयके खोटे होते हैं। जो जितनीही नम्रता दिखाते हैं, उतके हृदय में उतनी ही पैनी विषभरी छुरी छिपी रहती है। तैंने जो अपना सिर हमारे पैरोंपर रख दिया है, इसे तुरन्त हटा ले। तेरी ठग विद्या यहाँ न चलेगी। हम तेरे गुरुकी ये सब करतूतें देख चुके हैं। जिस कारे का तू चेला है। जिस अध्यापकसे तैंने यह चिकनी चुपड़ी बातें करना सीखा है, उससे हमारा भी परिचय

है। हम एक बार उसके फंदेमें फँसकर उसकी परीक्षा ले चुकीं। वह निर्मोही अकृतज्ञ निकला। पहिले जो वह मीठी मीठी बातें बनाता था, उन्हीं पर विश्वास करके हम उसके चक्करमें आ गईं। जिससे न घर की रहीं न घाटकी उसने हमें विश्वास दिलाकर हमारे साथ विश्वासघात किया। तू स्वयं सोच हमने तेरे गुरुगोविन्दके लिये क्या नहीं किया। संसारमें पति सुत सगे सम्बन्धियों का मोह छोड़ना अत्यन्त कठिन है। उसके लिये हमने सब कुछ छोड़ा, लोक परलोककी चिन्ताका परित्याग किया। संसारी सुखोंको तिलाञ्जलि दी. किन्तु इसके बदलेमें उसने हमारे साथ क्या किया, हमें बटाऊकी भाँति छोड़कर चला गया। नेहके नातेको अंत तक नहीं निभाया, हमे विरह व्यथामें तड़पाया। ऐसे निष्ठुर निर्मम विश्वासघातीका कभी विश्वास किया जा सकता है?"

भौंराने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् महारानीजी वे तो सदा साधुरक्षण करते रहते हैं। वे तो दयाके समुद्र हैं, दुखियोंका दुख दूर करनेको ही उन्होंने दशावतार धारण किये। फिर आप उन्हें निर्दय निष्ठुर कैसे बता रही हैं।)"

इसपर श्रीजीने कहा—"ऐसे भयंकर अवतारोंको दूरसे ही डंडौत है। समुद्रमें कछुआ बने। कछुआ कौनसा अच्छा जन्तु है, सब देखते ही डर जाते हैं। काट लेता है। मत्स्य बनकर समुद्रमें तैरते रहे स्त्रियोंके लिये क्या किया। सूअर बने, जिन्हें देखकर ही पृथिवी डर गई। सूअर भी कोई छूने योग्य जन्तु है। आधे मनुष्य और आधे सिंह बने, जिनकी बड़ी बड़ी ठाढ़ों को देखकर देवता भी डर गये। लक्ष्मीजीकी ओर जहाँ दहाड़ मारी कि वे तो मारे डरके थरथर काँपने लगीं। परशुराम बने जिन्होंने स्त्रियोंके गर्भ गिरा दिये भ्रूण हत्यायें कीं। स्त्रियोंके साथ उन्होंने किस अवतारमें दिया दिखाई।"

भौंराने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् रामावतारमें तो भगवान्‌ने कैसा सुन्दर रूप धारण किया था, जनकनन्दिनीके प्रति कैसा प्रेम प्रदर्शित किया था ?")

डाँटकर श्रीजी बोलीं—"अरे, भौंरे! जो जानता न हो उसके सम्मुख ऐसी झूठी बातें कहना। हमतो तेरे स्वामीके दश ही नहीं चौबीस जन्मोंकी बातें जानती हैं। सीताजी को ब्याहकर लाये। उसे घरमें ही छोड़कर चौदह वर्षके लिये वन जा रहे थे। वह पतिव्रता हठ करके उनके साथ लग ली। वनमें उसकी वे रक्षा भी न कर सके। राक्षसराज रावण उन्हें चुरा ले गया। उसके मरने पर जब सती सीता सम्मुख आई, तो सबके सामने कहते हैं तू दूसरेके घरमें रही है, तुझे मैं स्वीकारूँगा नहीं कोई उन कुटिलसे पूछता, कि रावणके घरमें रही है तो किसके दोषसे। भर्ता तो वही कहाता है जो भार्याका भरण पोषण करे। जब तुम अपनी स्त्रीको राक्षस के फंदेसे नहीं बचा सके, तो तुम भर्तापद से च्युत हो गये। अब जब वह आती है तो तुम उसके मत्थे दोष क्यों मढ़ते हो ? दोष तो तुम्हारा ही है। अस्तु जैसे तैसे अग्निमें तपा तपाकर उसे लाये फिर गर्भवती होनेपर उसे जंगलमें छुड़वा दिया। ऐसी क्रूरता अपनी अनुरक्ता पत्नीके साथ कोई कर सकता है। बेचारी सूर्पणखाने उनका क्या बिगाड़ा था। कामिनीको जब काम पीड़ा देता है, तो उसे पुरुषकी ही शरण लेनी पड़ती है। किन्तु शरणमें आई उस अबलाको स्त्रीजित होनेके कारण तिरस्कृत किया। केवल तिरस्कार ही किया हो, सो बात नहीं, नाक कान काटकर उसे नकटी बूची बना दिया। यह तुम्हारे पुरुषोत्तम की करतूत है। इससे बढ़कर क्रूरता, कठोरता क्या हो सकती है ? बलिने उन वामन बने कपटी का क्या बिगाड़ा था। उसका सर्वस्व हरण भी किया और उलटे बाँध भी लिया। यह तो कारे कौएका

सा व्यवहार किया. कि यज्ञमें आकर हविको जूठा भी करदे और वहाँ विष्ठा भी कर दे। अतः हमने तो अब कान पकड़ा है, कारेका कभी चर्चा भी न करेंगी। कारेसे कभी मैत्री भी न करेंगी ?"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी ! बुरा मत मानना। तुम केवल मुँहसे कह ही रही हो मैं तो जबसे आया हूँ, यहाँ तभीसे उसी कारेकी चर्चा सुन रहा हूँ। आप एक क्षणको भी उसकी बात कहे बिना नहीं रहतीं।")

यह सुनकर विवशताके स्वरमें श्रीजी बोलीं—"भ्रमरवर ! तुम्हारा कहना सत्य है। हम चाहतीं नहीं कृष्णकी कथा कहें, किन्तु बिना कहे हमपर रहा नहीं जाता। न जाने उसकी चर्चामें क्या अमृत भरा हुआ है, कैसा उसमें वशीकरण मन्त्र है, कि वाणी उसके बिना कुछ बोलना ही नहीं चाहती। कर्ण उसकी कथा सुनकर इस प्रकार मुँह फाड़े ही रह जाते हैं, मानों उनके मुखमें कोई अमृत उड़ेल रहा हो। उनकी ललित लीलाओंमें ऐसा आकर्षण है, कि जिसने भी एक बार उन्हें ध्यानपूर्वक सुन लिया उसे फिर घरद्वार, कुटुम्ब परिवार कुछ ही नहीं भाता। राग द्वेष, लोभ मोह, सुखदुख, शीत उष्ण तथा मानापमान आदि राग द्वन्द्वोंसे छूटकर वह कपोती वृत्ति धारण कर लेता है। निष्किञ्चन और अनिकेत होकर पक्षियोंके समान भिक्षावृत्तिपर आश्रित हो जाता है। इसी प्रकार हम भी फंस गईं। अब हम उसकी चर्चा छोड़ना चाहती हैं। किन्तु चर्चा हमें नहीं छोड़ती। यही विवशता है। हम ऐसा नहीं जानती थीं यह ऐसा बुरा रोग है। यदि हम जानतीं, तो इस प्रेमके सुग्गेको पालतीं ही नहीं। अरे यह फोड़ेके समान यह रोग कभी अच्छा नहीं होता। भी फिर फूट जाता है, फिर भर जाता है।"

भ्रमर ने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् महारानी जी ! आप सब जानबूझ क्यों प्रेमक फंदेमें फँस गयीं ।")

श्रीजी बोलीं—"अरे, भ्रमर ! भूल मनुष्य से ही होती है। जिस समय व्याध हाथमें बीन लेकर सुन्दर स्वरमें लयके साथ उसे बजाता है, तो कृष्ण मृगकी भोली भाली हिरनियाँ उस रागको सुनकर आत्मविस्मृत हो जाती हैं । कानोंको खड़ा करके ये नेत्र बन्द करके उस सुरीली तानको सुनती रहती हैं । उसी बीचमें बधिक उनपर बाणवर्षा कर देता है । उन्हें घायल बना देता है । विश्वास उत्पन्न करके बधिक विश्वासघात करता है। यही दशा हमारी हुई । हम तुम्हारे कृष्णको पहिले से जानती तो थीं नहीं । उसकी चिकनी चुपड़ी मीठी-मीठी रसीली रँगीली हृदय और मनको सुख देनेवाली लच्छेदार बातोंमें आ गईं । हमने उनकी कपट भरी बातोंको सत्यके समान मान लिया । हमें भी उन्होंने जैसे वधिक हरिनियोंको बधता है और उनकी पीड़ाका अनुभव नहीं करता उसी प्रकार वे हमें बारम्बार अपने नखस्पर्श से होनेवाली कामव्यथाका अनुभव करा चुके हैं । उस समय तो वह पीड़ा प्यारी प्यारी थी, किन्तु अब तो वह शूलकी भाँति हमारे हृदयमें चुभ रही है । इसलिये अब तुम कृष्णकी चर्चा छोड़ो उन कुटिलकी कथा न कहकर और कथा कहो । नहीं तो तुम यहाँसे भाग जाओ ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियों ! यह सुनकर भौंरा गुन गुन करता हुआ उड़कर अन्यत्र चला गया । उसके जाते ही प्रियाजीका हृदय धक-धक करने लगा । प्रेमीको किसी भी दशामें सन्तोष नहीं । क्षण क्षणमें उसका भाव बदलता है । हिर फिरकर उसे अपना प्यारा ही याद आता है । श्रीजी सोचने लगीं हाय ! मैंने बड़ा बुरा किया । कितने प्यारसे तो श्यामसुन्दरने दूत भेजा था, मैंने उसका अपमान किया । तिरस्कार किया । बड़ी भूल

हुई अब ऐसा न करूँगी।" यह सोचकर वे पुनः भौंरे की प्रतीक्षा करने लगीं।

छप्पय

चाहें भूल्यो तऊ यादि आवें श्रीहरि नित।
करै नित्य मन मत्त मनन माधवकी मूरत॥
सोचें अवगुन सतत किन्तु चित तिनि गुन जानें।
कान्ह कथा नहिं सुनें कान परि सीख न मानें॥
फँसी बधिकके जालमहँ, घरकी रहीं न घाटकी।
परि न दुबारा चढ़ि सके, चूल्हे हण्डी काठकी॥

भ्रमरका सत्कार

(१०६५)

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किम् ,
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वम् ,
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० २० श्लो०)

छप्पय

अच्छा, मधुकर ! फेरि पठायो प्रियतम तुमकूँ ।
प्यारेको सन्देश सुनाश्रो अब तुम हमकूँ ॥
कैसे हरितैं मिलें भ्रमर अर युक्ति बताश्रो ।
उन पर पद्मा बसति सौतितैं पिंड छुड़ाश्रो ॥
कुशल कहो कंसारिकी, करत कबहुँ ब्रजकी सुरति ।
कब दासिनिपै दया करि, दरशन देंगे प्रनतपति ॥

---

* श्रीजी भ्रमरसे पुनः कह रही हैं—हे प्यारेके सखा ! क्या तुम पुनः लौट आये । सच बताश्रो तुम्हें हमारे प्रियतमने ही पठाया है क्या ? अच्छा हे अङ्ग ! माँगो तुम क्या माँगते हो ? तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगी तुम हमारे माननीय हो । हे सौम्य ! जिन श्रीकृष्णचन्द्रका सग छोड़ना अत्यन्त ही कठिन है, उनके समीप तुम हमें कैसे ले चलोगे ! क्योंकि उनके वक्षःस्थलपर तो सदा नववधू लक्ष्मी विराजमान है ।"

प्रेमियोंकी और पागलोंकी एकसी ही दशा होती है। कभी वे अप्रसन्न हो जायँगे, फिर तनिकसी ही देरमें अनुनय विनय करने लगेंगे। कभी निराश हो जायँगे, फिर प्रियमिलनकी आशासे आनन्दित हो उठेंगे। कभी किसीको दुतकार देंगे, फिर प्यार करने लगेंगे। उनमें दृढ़ता नहीं रहती उनका ध्यान अपने वचनोंपर अपने विचारोंपर तथा अपनी क्रियाओंपर नहीं रहता। उनको तो समस्त चेष्टायें प्रियतमके ऊपर केन्द्रित हो जाती हैं। किसी तरह प्यारे प्रसन्न हो जायँ, कैसे भी उनका दर्शन हो जाय, यही उनका एकमात्र लक्ष्य है। उन्हें कोई छोटा कहे, मोटा कहे, खरा कहे, खोटा कहे इस ओर वे ध्यान देते ही नहीं। उनका ध्यान तो निरन्तर प्यारेकी मनमोहिनी मूरतमें ही लगा रहता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भौंरा जब उड़ गया, तो श्रीजी-को विचारधारा परिवर्तित हो गई। वे सोचने लगीं—"मैंने बड़ा पाप किया। मैं अपने धर्मसे च्युत हो गई। अपने यहाँ अतिथि आवे तो उसका पाद्य अर्घ्य आदिसे स्वागत करना चाहिये, उसकी सब भाँतिसे सेवा करनी चाहिये, मैंने यह सब तो किया नहीं, उलटे उसे डाँटा डपटा। अतिथि भी वह ऐसा वैसा सामान्य नहीं था, प्यारेका प्रतिनिधि था, उनका पत्रवाहक दूत था। कोई सुखद सन्देश लाया होगा। क्रोधमें भरकर मैंने उसका स्वागत नहीं किया सन्देश नहीं सुना कान्तकी कुशल क्षेम नहीं पूछी। अपनी ही गाती रही। हाय! मेरी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये वह निराश होकर लौट गया। अबके वह आवेगा, तो मैं उसका स्वागत करूँगी, कुशल पूछूँगी दो मीठी मीठी बातें करूँगी, अपना दुख सुनाऊँगी। प्यारेके उपहारको हृदयसे लगाऊँगी, कुछ उनके पास पठाऊँगी, किन्तु अब जाने वह फिर लौटकर आवेगा या नहीं।" प्यारीजी यह सोच ही थीं कि फिर उन्हें कानोंमें

गुन गुन गुनका सुमधुर संगीतमय सुखद शब्द सुनाई दिया उसे सुनते ही वे चौंक पड़ीं। आँखोंको उठाकर जो उन्होंने देखा, कि उन्हें वही भौंरा गुन गुन करते हुए मथुराकी ओरसे आता हुआ दिखाई दिया।

देखते ही श्रीजी उठकर खड़ी हो गई। उनके उठते ही, समस्त ब्रजाङ्गनायें उठ गई, उद्धवजी भी सबके साथ उठकर खड़े हो गये।

श्रीजीने भ्रमरको सम्बोधित करते हुए कहा—"हे प्रियतमके सखे! तुम्हारा स्वागत है स्वागत है, आओ आओ। इस आसन पर बैठ जाओ। तुमसे हम एक बात पूछें?"

भ्रमरने कहा—"गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी मेरा अहो भाग्य पूछिये।")

प्यारीजीने कहा —"हम यह जानना चाहती हैं, तुम सत्य सत्य बता दो, कि तुम्हें श्यामसुन्दरने ही भेजा है। या तुम हमें धैर्य बँधाने चले आये हो?"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी! मैं सत्य सत्य कहता हूँ, श्यामसुन्दरने ही मुझे भेजा है। मैं आपका दास अनुचर तथा किंकर हूँ।")

प्यारीजीने कहा—"यदि तुम्हें मदनमोहनने ही भेजा है, तो तुम हमारे परम माननीय हो, अत्यंत आदरणीय हो वन्दनीय तथा प्रशंसनीय हो। अब बताओ, तुम्हारी इच्छा क्या है! हमसे तुम क्या चाहते हो?"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी! मैं आप सबको श्यामसुन्दरसे मिलना चाहता हूँ। मेरी बड़ी इच्छा है, एक बार आप सबका मिलन देखूँ?"

प्यारीजीने कहा—"भ्रमर! यह तो तुमने हमारे मनकी ही बात कह दी। तुम हमें धैर्य बँधानेको तो नहीं कह रहे हो।

अच्छा, बताओ तुम हमें हमारे प्राणनाथके समीप कैसे ले चलोगे ?"

भ्रमरने कहा—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी ! अभी तो आप कह रही थीं "अब खाई सो खाई अब खाऊँ तो राम दुहाई।" फिर अभी उनके समीप चलनेको तैयार हो गई हो ?")

प्यारीजीने कहा—"अरे, मधुकर ! यह बात तो हमने आवेश में आकर कह दी थी, वास्तविक बात तो यह है, कि उनका संग छोड़ना अत्यंत ही दुरत्यज है। हम छोड़ना भी चाहें, तो उनके संगकी लालसाको छोड़ नहीं सकतीं। कोई हमें उनके समीप ले चले तो हम जन्मजन्मों तक उसकी ऋणी बनी रहेंगी।"

भौंरेने कहा—"गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी मेरे साथ चलें ?)"

आहभरकर श्रीजी बोलीं—"चलें कैसे भैया ! उन श्याम-सुन्दरके वक्षःस्थलमें तो निरन्तर नववधू लक्ष्मीजी क्रीड़ा करती रहती हैं। सौतको देखकर तो सौतका रक्त उबलने लगता है। इसलिये हमारा मथुरा चलना तो असंभव है। हम तो उनसे वृन्दावन की निभृत निकुञ्जोंमें ही मिल सकती थीं, सो वे वृन्दावनसे चले ही गये, अब मिलना कैसे हो। पैरोंमें लोकलाजकी जंजीर पड़ी है। अच्छा, हाँ, आनेजानेकी बातें तो पीछे होंगी। तुम आर्य पुत्र की कुशल क्षेम तो सुनाओ। वे अच्छी प्रकार तो हैं ? गुरुकुलसे सब विद्याओंको पढ़कर लौट तो आये हैं। वैसे तो वे पहिले से ही पढ़े लिखे थे। सभी विद्याओंमें निपुण थे, अब तो चौंसठकला प्रवीण हो आये होंगे।"

भौंरेने कहा—"गुन गुन गुन गुन (अर्थात् हाँ, प्यारीजी ! श्यामसुन्दर अवन्तीपुरीसे सब शास्त्रोंमें पारङ्गत होकर मथुरा पुरी लौट आये। वे आजकल मथुरापुरीमें ही विराजमान हैं, उन्हीं का सन्देश देने तो मैं आया हूँ।")

इसपर गोपियोंने कहा—"अच्छा, भ्रमर! यह बात सच-सच बताओ, वे कभी अपने माता पिताकी याद करते हैं, गोष्ठकी, वनकी, गौएँ चरानेकी अथवा वृन्दवनकी कभी याद करते हैं! अपने सखा ग्वाल वालोंका कभी प्रसङ्ग चलाते हैं?"

भ्रमरने कहा—"गुन गुन गुन गुन (अर्थात् क्या बताऊँ। व्रजबालाओं भगवान तो यहाँकी निरन्तर याद करते रहते हैं। व्रजकी चर्चा करते करते वे तृप्त ही नहीं होते। माता पिताके वात्सल्य प्रेमकी वे भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं।")

श्रीजीने कहा—"हाँ, माता पिताकी तो याद करते ही होंगे, कभी हम दासियोंके सम्बन्धमें भी तुमने कुछ कहते हुये उन्हें सुना है क्या? सचसच बताना, मुँह शोभी बात मत कह देना। हमारा उन्हें स्मरण है?"

भ्रमर बोला—"गुन गुन गुन (अर्थात् प्यारीजी! आप सबकी ही तो वे चरचा करते हैं। आपके निःस्वार्थ निश्छल प्रेमको याद कर करके ही तो वे अधीर हो जाते हैं। आपके लिये ही तो उनके प्राण तड़फते रहते हैं।")

इतना सुनते ही गोपियोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। श्रीकृष्ण की पहिले प्रेमकी बातें स्मरण कर करके वे ढाह मारकर रोने लगीं। रोते रोते वे बोलीं—"भ्रमर। तुम्हारा मुख घी शक्कर से भरे। तुम्हारी वड़ी आयु हो। वह कौन सा शुभ दिन होगा, जब श्यामसुन्दर अपने अति अरुण वरद करकमलको, जिसमें से निरन्तर अगुरुकी सुगन्ध निकलती रहती है उसे हम विरह-व्याथासे व्यथित अबलाओं के सिरपर कब रखेंगे? कब वे हमारा गाढ़ालिङ्गन करेंगे? कब हमारे स्वेदकणोंको अपने पीताम्बरसे पोंछेंगे? कब हमारे बालोंको सुलझायेंगे कब हमें अपने कण्ठसे लगायेंगे? हम सब केवल उसी दिनकी प्रतीक्षामें जीवित हैं, नहीं तो अब तक कबके हमारे प्राण पखेरू उड़

जाते। अबतक हम इस तनुको त्यागकर सदाके लिये संसारसे चली जातीं।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! भ्रमरको उपलक्ष्य बनाकर गोपियोंने जो उद्धवके सम्मुख श्रीकृष्णके लिये अपनी बिकलता दिखाई इसका उद्धवजाके हृदयपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे—"मैं जिन्हें अनपढ़ी मूर्खा अबला समझता था, ये तो प्रेमकी साकार सजीव मूर्तियाँ हैं। अनुरागकी प्रतिकृति हैं। इनके सम्मुख मेरा ब्रह्मज्ञान दो कौड़ीका भी नहीं। इनसे अब श्यामका क्या सन्देश कहूँगा। फिर भी जिस काम के लिये यदुनन्दनने मुझे भेजा है उसे तो करना ही चाहिये" यह सोचकर वे श्यामका सन्देश सुनानेको उद्यत हुए।

छप्पय

भूलि गये घनश्याम हमें प्यारे बनवारी।
करत हमारी यादि कबहुँ का कुंजबिहारी॥
उद्धव लखि अस नेह कहैं—तुम अति बड़भागी।
श्यामचरनमहँ सुरति सबनिकी निशि दिन लागी॥
जप, तप, मख, व्रत धर्मको, यह ही अन्तिम फल कह्यो।
सार भक्ति भगवन्तकी, सो फल तुम सहजहिं लह्यो॥

———

उद्धवजीद्वारा गोपियोंके प्रेमकी प्रशंसा

(१०६६)

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० २२ श्लो०

छप्पय

करयो कठिनतम काज त्यागि सब हरि अपनाये ।
कृष्ण प्रेम हित देह, द्रव्य पति स्वजन भुलाये ॥
संसारी सुख तजे प्रीति प्रभुचरन लगायी ।
प्रीति रीति करि प्रकट दीनपै दया दिखायी ॥
विनय करहुँ कर जोरिकैं, हौं प्रभुपद अनुरक्त हूँ ।
अनुचर सेवक सचिव प्रिय, किंकर अति लघु भक्त हूँ ॥

हमें उपदेश देने की वासना तभी तक रहती है, जबतक हम दूसरों को अज्ञानी समझते हैं, उन्हें भूला भटका पथभ्रष्ट मानते हैं। हमारा यह भाव दूर हो जाय और हम किसी भी प्रकार किसी अनन्य प्रेमीके दर्शन पा जायँ, तो हमारा समस्त अभिमान धूलि में मिल जायगा। हमारा सब मोह दूर हो जायगा। समस्त ज्ञान

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उद्धवजी उन श्रीकृष्णदर्शना-भिलाषिणी गोपियोंके ऐसे वचन सुनकर उन्हें प्रियतमके संदेशसे सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहने लगे।"

मद उतर जायगा। ज्ञान प्राप्त कर लेना यह बड़ी बात नहीं, किन्तु प्रेमकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। प्रेमके दर्शनोंसे ही हृदय भर जाता है और हम उसके सम्मुख अपने ज्ञान ध्यानको तुच्छ समझने लगते हैं। प्रेमियोंके दर्शन हो जायँ और उनका कुछ काल सत्संग प्राप्त हो सके, तो जीवमें नम्रता विनय अवश्य ही आ जायगी। प्रेमियोंका सत्संग पाकर भी जिनकी हेकड़ी बनी रही, तो समझना चाहिये या तो ये प्रेम ग्रहण करनेमें उपयुक्त पात्र नहीं या इन्हें जिन प्रेमियोंका सत्संग प्राप्त हुआ है, वे यथार्थ प्रेमी नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्धवजी बड़े अभिमानसे मथुरापुरीसे व्रजमें आये थे। उन्हें अपने ज्ञानी होने का अभिमान था। वे सोचते थे—"गोपिकायें गाँवकी गँवारी ही तो हैं। उन्हें समझाना कौन सा कठिन बात है। दुःख होता है मोह से। मोह अज्ञानका चिह्न है मैं उन्हें अपने ज्ञानद्वारा उनके दुःखको दूर कर दूँगा, किन्तु यहाँ आकर बात उलटी हुई। गोपिकाओंकी विरह दशा देखकर उनका तो भ्रम दूर हो गया। वे अपनेको ही अज्ञानी अनुभव करने लगे। भ्रमरको उपलक्ष्य बनाकर जो उन्होंने प्रेमका चित्र चित्रण किया। उससे उनके नेत्र खुल गये ज्ञान का अभिमान प्रेमके प्रबल प्रवाहमें बह गया। विनयने आकर उन्हें वरण किया। जिस हृदयमें विनय आ जाती है उसीमें प्रेम उत्पन्न होता। जैसे धुएँको देखकर अग्निका अनुमान होता है वैसे ही नम्रता तथा दीनता को देखकर प्रेम भक्ति का अनुमान किया जाता है।

उद्धवजीका हृदय भरा हुआ था, वे दीनताके स्वरमें बोले—"गोपियो! तुम ही धन्य हो। संसारमें तुम्हारा ही जन्म सफल है, तुमने ही मनुष्य जन्म पानेका फल पाया है। तुमने ही संसार को प्रेमका सन्देश सुनाया है। संसारमें तुम ही सबकी पूजनीया

और माननीया हो गई। मैं तो भ्रममें था, कि तुम्हें मोह है, किन्तु तुम्हारी तो भगवान् वासुदेवमें अनन्य भक्ति है। तुम्हारा चित्त श्यामसुन्दरके चरणोंमें ही लगा हुआ है। तुम धन्य हो।"

गोपिकाओंने कहा—"उद्धवजी हमें आप ऐसी बातें कह कह कर क्यों लज्जित कर रहे हैं। हम गाँवकी गँवार अबलायें भला क्या सुकृत कर सकती हैं। न तो हमने दान धर्म ही किया जिससे अन्तःकरण पवित्र होता। न कुछ चान्द्रायण आदि व्रत किये जिनसे पाप कटते। हमने कोई तपस्या भी नहीं की। दिनभर घर गृहस्थीके कामोंमें जुटे रहे, पेट भरके खा लिया। नींद भरके सो लिया। यही सब किया है। कोई यज्ञयाग जप अनुष्ठान भी नहीं किया। पढ़ीलिखी हम कुछ हैं नहीं। शास्त्रोंका स्वध्याय भी नही किया! हम अपनी इन्द्रियोंका दमन भी नहीं कर सकीं। मन हमारे अधीन नहीं हुआ। हमारी आप इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं।"

उद्धवजीने कहा—"देवियो! आपने जो करना था, सब कुछ कर लिया। बड़े बड़े दानों का, कठिन कठिन व्रतोंका, घोरसे घोर तपोंका, महानसे महान यज्ञोंका, स्वध्याय तथा इन्द्रियदमन आदि समस्त कल्याणकारक अन्यान्य, साधनोंका एक मात्र फल श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें भक्ति होना ही है। यदि इन सब कर्मोंके करने पर भी भगवानमें भक्ति नहीं हुई, तो ये सब कर्म व्यर्थ हैं, और इन सबके विना किये ही भगवानमें भक्ति हो गई तो फिर इन सबकी आवश्यकता ही क्या रही। समस्त शुभ कर्मोंका एकमात्र फल श्रीकृष्णचरण अनुरक्त ही है। तुम्हारा भगवान वासुदेवके चरणोंमें अनन्य अनुराग है, इससे बढ़कर और चाहिए ही क्या? इसीलिये तुम संसारमें परमपूजनीया हो।"

गोपिकाओंने कहा—"उद्धवजी! हम भक्ति फक्ति क्या

जाने। केवल हमारे चित्तकी वृत्ति न जाने क्यों बलात् श्रीकृष्ण की ओर खिंचती है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त संसार हमें कुछ अच्छा ही नहीं लगता। हमें यह कुछ रोग सा हो गया है।"

उद्धवजीने कहा—"देवियो! इसी रोगके लिये तो योगी जन बड़े-बड़े साधन करते हैं। एक संसार चित्तसे निकल जाय और चित्तमें भगवान् ही भगवान् रह जाय, समस्त साधन इसीलिये किये जाते हैं। सौभाग्यसे तुम्हें यह स्थिति स्वतः ही प्राप्त हो गई। योगिजन वन्दित पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी परम दुर्लभ सर्वोत्कृष्ट प्रेमलक्षणा भक्ति आपको सुलभ हो गई। उस भक्तिको प्राप्त करके तुम स्वयं ही सुखी नहीं हुई अपितु उसका प्रचार और प्रसार करके संसारको भी सुखी बना दिया। तुम्हारे समान त्याग दूसरा कौन कर सकता है।"

गोपिकाओंने कहा—"उद्धवजी! हमने तो कुछ भी त्याग नहीं किया। श्रीकृष्णकी मनमोहिनी मूरति हमारे मनमें हठ-पूर्वक बस गई है। हम उसे निकालना भी चाहें तो अब वह नहीं निकलती। उसके पीछे हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

उद्धवजीने कहा—"देखो, जिनका चित्त देहके सुख दुखमें फँसा है। जो सोचते हैं हाय मैं इतना दुर्बल हो गया, रुग्ण हो गया, निरन्तर जिनका चित्त पति, पुत्र, स्वजन तथा परिवारके अन्य जनोंमें फँसा है, ऐसे लोगोंका मन कभी स्वप्न में भी भगवानकी ओर नहीं जा सकता। इन सबका मोह त्यागना सामान्य बात नहीं है। तुमने इन सबका मोह त्याग कर श्रीकृष्णको ही वरण किया है। इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है। ममताका त्याग ही सबसे बड़ा त्याग है। बाहरसे भोगों को छोड़ देना वस्त्रोंको त्याग देना यह तो बाहरी त्याग है। तुमने तो मुझ अकिंचन दासपर बड़ी कृपा की। प्रेमकी शिक्षा देकर मेरी तो काया पलट करदी।"

गोपिकाओंने कहा—"उद्धवजी ! हम शिक्षा देना क्या जानें! हमने तो न व्याख्यान दिया, न आपको पाठ पढ़ाया, आप यह कैसी बात कह रहे हैं।"

उद्धवजीने कहा—"देवियो ! व्याख्यान देना ही शिक्षा नहीं है। उपदेश, व्याख्यान तथा प्रवचनोंका तबतक प्रभाव नहीं पड़ता जबतक कहनेवाला स्वतः वैसा आचरण न करता हो। कहनेका उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना करके दिखानेका पड़ता है। श्रीकृष्णका वियोग तुम्हारे लिये अभिशाप न होकर वरदान ही सिद्ध हुआ। उस वियोगके कारण तुम्हें ऐकान्तिक भक्तिकी प्राप्ति हुई है। आज उस अव्यभिचारिणी निष्काम परा भक्तिका प्रत्यक्ष दर्शन करके मैं तो कृतकृत्य हो गया। आज उस अनिर्वचनीय भावको प्रत्यक्ष दिखाकर तुमने मेरा महान् उपकार किया। मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह किया। अब कहनेको तो कुछ बात शेष रहा नहीं। फिर भी स्वामीने जिस कार्यके लिये मुझे भेजा है, उसे मैं आपसे निवेदन करूँ ?"

गोपिकाओंने कहा—"हाँ उद्धवजी ! हम तो यही सुनने को समुत्सुक हैं। हमारे हृदयधन प्राणनाथ श्यामसुन्दरने हमारे लिए क्या सन्देश भेजा है ? हमारे लिये उन्होंने क्या कहा है ?"

उद्धवजी बोले—"मैं श्यामसुन्दरका अन्तरङ्ग सेवक हूँ। उनका गुप्त से गुप्त कार्य मैं ही करता हूँ। उनका मुझसे कोई दुराव नहीं छिपाव नहीं। इसीलिये उन्होने आपको सन्देश देनेका परम गुरुतर कार्य मुझे सौंपा है। मैं आप सबके लिये उनका प्रेम सन्देश लेकर यहाँ आया हूँ। आप अपने प्रियतमके उस परमानन्द दायक सुखद सन्देशको शान्ति तथा सन्तोषके साथ श्रवण करने की कृपा करें। उन्होंने एक पत्र भेजा है। आज्ञा हो तो मैं उसे पढ़ कर व्याख्यासहित सुना दूँ ?"

गोपियोंने कहा—"हाँ, उद्धवजी ! हम कुछ पढ़ी लिखी तो

हैं नहीं। आपही हमें हमारे प्यारेके सन्देशको समझा समझा कर सुना दीजिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपियोंकी आज्ञा पाकर उद्धव जी श्यामसुन्दरके सन्देश को सुनानेके लिये प्रस्तुत हुए। अब उन्होंने जिस प्रकार श्यामका सन्देश सुनाया उस प्रसंगको आगे कहूँगा। आप सब दत्त चित्तसे उसे श्रवण करें।

छप्पय

जा अयोग्यके हाथ श्याम सन्देश पठायो।
ज्ञान मानमहँ भरयो दौरिकैं हौं ब्रज आयो॥
कृष्णभक्ति ही सार दशा तुमरीतैं जानी।
निरखि अलौकिक भक्ति भयो मेरो हिय पानी॥
पढ़ौ प्रेमपाती स्वयं, पठयो जो सन्देश हरि।
गोपी बोलीं—"आपुही. हमहिं सुनावें कृपा करि॥

गोपियोंके लिये भगवानका सन्देश

[१०६७]

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

करिकें शिष्टाचार सखिनिकें आये आगे ।
प्यारेको सन्देश पढ़न पुनि उद्धव लागे ॥
हौं सर्वात्मा रहौं सकल प्रानिनिके घटमहँ ।
सब वस्तुनिमहँ भूत सूत ज्यों व्याप्यो पटमहँ ॥
स्वप्न सरिस जगके विषय, मिटै मोह भ्रम ज्ञान तैं ।
रजत सीप अहि रज्जु महँ, दीखे तम अज्ञान तैं ॥

संसारमें प्राणी जो भी कुछ करते हैं, अपने सन्तोषके निमित्त, सुख शान्तिके निमित्त, फिर भी लोग अशान्त बने रहते

* श्रीभगवान् गोपियोंको सन्देश देते हुए कह रहे हैं—"गोपियो! मेरा और तुम्हारा कभी भी वियोग नहीं हो सकता, क्योंकि मैं सर्वात्मा हूँ। जिस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थोंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, उसी प्रकार मैं भी मन, प्राण, भूत, इन्द्रिय और गुणोंके आश्रय रूपसे सर्वत्र व्याप्त हूँ।"

हैं, दुखी रहते हैं और दूसरोंको दोष देते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो दुख सुख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। रेशमका कीड़ा अपने मुखसे ही सूत निकालता रहता है और स्वयंही बँध जाता है वह रेशमको दोष दे, कि इसने मुझे बाँध लिया, तो यह उसका अज्ञान है भ्रम है। हम स्वयं ही वासनाओंको उत्पन्न करते हैं वासनाओंकी पूर्तिके लिये भौतिक विषयोंके पीछे दौड़ते हैं जब वे क्षणभंगुर नाशवान विषय लुप्त हो जाते हैं अदृश्य हो जाते हैं, तो हम रोते हैं, हमारी इष्ट वस्तु हमें नहीं मिली, दूर चली गई खो गई। तुमने इष्टता अनिष्टताकी कल्पना अपने मनसे ही की है। यह शत्रु है यह मित्र है इसका कल्पित विभाग अपने आपही तुमने कर लिया है। जो एक है अद्वय है, उसमें मिलन विछुरन, शत्रुता मित्रता कहाँ? वह तो अनादि, अनन्त, प्रशान्त, परिपूर्ण, आवागमनसे रहित तथा शाश्वत है। जिनको ऐसा ज्ञान हो गया है, उनका शोक, मोह, भ्रम तथा अज्ञान सभी दूर हो गया है। ऐसा ज्ञान उन्हींको होता है जिनपर ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्दघन आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपा हो जिनके लिये उन्होंने अपने सखाके हाथों सन्देश पठाया हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपियोंकी आज्ञा पाकर उद्धव जी श्यामके सन्देशको सुनाने लगे। वे बोले—"भगवान्ने कहा है, गोपियो! तुम मुझसे अवश्य ही अप्रसन्न होगो, क्योंकि मैं तुमसे अति शीघ्र आनेकी कह आया था और अबतक न आ सका। तुम मेरे वियोगके कारण अवश्य दुखी होगी। लौकिक दृष्टिसे देखा जाय, तो दुखको बात भी है, किन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय, तो हमारा तुम्हारा वियोग कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि वियोग होता है दो में। किन्तु मुझमें द्वैत है ही नहीं मैं अद्वय ही सबका आत्मा हूँ।

तुम कह सकती हो—"हम तो सब पृथक पृथक दीखते हैं। आप पृथक हैं हम पृथक हैं। आप मथुरामें हैं हम नन्दगाँव में।" सो इसका उत्तर सुनो अच्छा तुम्हें जो अंडज, स्वेदज और उद्भिज जावोंसे युक्त नाना पदार्थोंवाला यह चराचर जगत अनेक रूपोंमें दिखाई देता है, उन सबमें है क्या ? ये ही पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं। भूतोंके अतिरिक्त इन पदार्थों में और कुछ नहीं है। इसी प्रकार प्राणियोंमें मन, प्राण, भूत, इन्द्रिय और गुणोंके आश्रम रूपसे मैं ही व्याप्त हूँ। मैं ही नाना रूप रखकर क्रीड़ा कर रहा हूँ।"

इसपर तुम कह सकती हो कि "सत्व, रज और तम ये तीनों गुण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच भूत, दस बाह्यकरण, चार अन्तःकरण ये वस्तुएँ पृथक हैं, इनको रचने वाला पृथक है और रचकर इनको व्यवस्थामें रखने वाला पृथक होगा। फिर आपही कर्ता, करण और कार्य एक कैसे हुए ?" सो, इसे तुम यों समझो, मैं ही अपनी योगमायाके प्रभावसे भूत, बाह्यकरण और अन्तःकरण तथा त्रिगुण रूप हो गया हूँ। ये सब मेरे ही रूप हैं। मैंने ही अपनेमें अपने ही द्वारा अपने आपको रचा है। रचकर इस प्रपंचका पालन भी मैं ही करता हूँ और अन्तमें अपनेमें ही इसे विलीन कर लेता हूँ। जैसे मकड़ी अपने भीतरसे ही जाला निकालती है, निकालकर उससे अपने आप ही तानाबाना बुनती है, बुनकर उसमें अपने आप ही इच्छानुसार क्रीड़ा करती है। जब इच्छा होती है, तब अपने आप ही जैसे मुखसे निकाला था वैसे ही उसे निगल जाती है, अपनेमें ही विलीन कर लेती है। अतः मेरे अतिरिक्त इस जगत्में दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

तुम कह सकती हो "कि जब मायाके आश्रयसे तुम इन मायिक पदार्थोंमें क्रीड़ा करते हो, तो मायामें तुम भी लिप्त हो

जाते होंगे।" सो बात नहीं, मैं जो आत्मरूप हूँ, माया और मायाके कार्योंसे सर्वथा पृथक हूँ। मैं ज्ञानस्वरूप विशुद्ध और गुणातीत हूँ। मायाकी जो ये जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीन वृत्तियाँ हैं उनके अभिमानीके रूपमें आत्मा ही विश्व, तैजस और प्राज्ञ रूपमें प्रतीत होता है। आत्मामें न ये वृत्तियाँ हैं न उसमें भेद है, वह तो इन सबसे परे है। ये सब मनकी कल्पना हैं, बन्धनका कारण मन ही है। अतः मनुष्यको चाहिये कि इन मिथ्या पदार्थोंको इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले विषयोंको उसी प्रकार मिथ्या समझे जैसे जागनेपर स्वप्नमें देखे पदार्थोंको मिथ्या समझता है। विषयोंका जब मन चिंतन करता है, तो तदाकार हो जाता है, फिर इन्द्रियाँ उन विषयोंका मनके द्वारा उपभोग करती हैं, उनमें प्रियता अप्रियताका मिथ्या आरोप करने लगती हैं। अतः इस मनको विषयोंके चिन्तनसे रोके साथ ही इन्द्रियोंको भी रोकता रहे। यह न सोचे इन्द्रियाँ गुणोंमें वर्तती हैं तो क्या हानि। इन्द्रियोंके सहित मनको रोके। फिर जैसे निद्रा त्याग देनेसे मनुष्य मिथ्या पदार्थोंकी आसक्तिसे रहित हो जाता है, वैसे ही वासना ही न होनेपर मनुष्य अज्ञान जन्य मोहको त्यागकर स्वस्थ हो जाता है, उसे मेरा साक्षात्कार होता है।

तुम कह सकती हो, "जब सब मनका ही खेल है, तो फिर ये लोग साधन, भजन, अनुष्ठान तथा सत्कर्म आदि क्यों करते हैं।" सो इसका यही उत्तर है, कि जितने भी साधन अनुष्ठान जितने भी सत्कर्म हैं, उन सबका लक्ष्य भगवत् प्राप्ति है। अन्तःकरणको शुद्ध करनेके ही निमित्त समस्त सत्कर्म हैं। जैसे नदी नाला तालाबका जल कहींसे भी चले, अंतमें वह किसी न किसी प्रकार समुद्रमें ही पहुँच जायगी। बड़ी नदियाँ सीधी जाकर समुद्रमें मिल जाती हैं। छोटी नदियाँ बड़ी नदियोंमें मिलकर

तब समुद्रमें मिलती हैं। तालाबोंका जल छोटी नदियों नालों तथा महानदियोंमें होकर समुद्रमें पहुँचता है। इसी प्रकार मनस्वी पुरुषोंके किये हुये वेदाध्ययन, अष्टाङ्गयोग, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तप, इन्द्रियदमन तथा सत्यादि समस्त साधन मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं। सब धर्मोंका पर्यवसान मुझमें ही होता है।"

तुम कह सकती हो, कि "जब आप सर्वगत हैं सर्वसमर्थ हैं तो फिर आप हमें छोड़कर चले क्यों गये? हमसे दूर क्यों हट गये, हमारी आँखोंसे ओझल क्यों हो गये?" सो इसका भी उत्तर सुनो। छोटी वस्तुका त्याग बड़ी वस्तुके लिये ही किया जाता है, जब मैं तुम्हारी आँखोंके आगे रहता था, तब तुम्हारा मुझमें उतना अनुराग नहीं था। जो वस्तु सुलभतासे प्राप्त हो जाती है, उसका उतना महत्त्व नहीं होता। गंगा किनारे रहने वाले गंगाजलका महत्त्व नहीं जानते। जो गंगाजीसे बहुत दूर मरुप्रदेशमें रहते हैं, वे गंगाजलका महत्त्व जानते हैं। सदा समीप रहनेसे वस्तुओंमें सामान्य बुद्धि हो जाती है। दूर रहनेसे चित्तकी वृत्ति उसीमें लगी रहती है। जैसे पतिव्रताका पति परदेशमें रहता है, तो पतिव्रताको सोते जागते, उठते बैठते निरन्तर उसीकी चिन्ता बनी रहती है। मैं तुम्हारे नयनोंका तारा होकर भी जो तुमसे दूर हट गया हूँ, वह तुम्हारा प्रेम बढ़ानेके लिये, तुम्हारे मनमें अधिक भीतर घुसनेके लिये हटा हूँ। शरीरसे दूर रहनेपर भी तुम्हारा चित्त मुझमें ही लगा रहे, तुम्हारा मन मुझमें ही रमा रहे, निरन्तर तुम मेरा ही ध्यान करती रहो, इसीलिये मैं शरीरसे कुछ दूर हो गया हूँ। आँखोंके आगे रहनेपर उतनी तन्मयता हो ही नहीं सकती। जैसा मेरे विरहमें तुम्हारा मन निश्चल भावसे मुझमें ही लगा रहता है, वैसे सम्मुख कभी संभव भी नहीं था।

इसीलिये तुम न तो मुझे दोष देना, न किसी प्रकारकी चिंता

ो करना। देखो, तुम्हारा जो मन निरन्तर मुझ प्रेष्ठमें ही लग गया है, जिसकी समस्त संकल्प विकल्पादि रूप वृत्तियाँ शान्त हो गई हैं उस अपने चित्तको पूर्णरूपसे मेरा ही ध्यान करती हुई, मुझमें ही लगाकर तुम सब मेरा ही चिन्तन करती हुई अन्तमें मुझमें ही मिल जाओगी, मुझे ही प्राप्त कर लोगी।"

तुम पूछ सकती हो 'इसमें प्रमाण क्या? कैसे हम विश्वास करें, कि हम आपको ही प्राप्त हो जायँगी, सो इसका भी उत्तर सुनो। यह तो तुमने प्रत्यक्ष ही देखा था, कि जिस समय शरदकी उन रमणीया रात्रियोंमें वृन्दावनकी रासस्थलीमें तुम सबके साथ जो मैंने सरस क्रीड़ायें की थीं रासविलास किया था, उस समय बहुतसे गोपोंने अपनी रमणियोंको रोक रखा था, घरके भीतर बन्द करके ताला लगा दिया था, उस समय वे मेरी लीलाओंको स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हुई थीं। इसलिये मैंने जो भी कुछ किया है तुम्हारे कल्याणके निमित्त किया है, तुम्हारी मुझमें निरन्तर प्रीति बढ़े, तुम्हारे मनमें मैं समा जाऊँ, इसलिये बाहरसे तुमसे वियोगसा कर लिया है। मन तो हमारा तुम्हारा एकही है, मिला ही हुआ है। जैसे सबके हृदयमें मैं अन्तर्यामी रूपसे हूँ, वैसे ही तुम्हारे हृदयमें हूँ। अतः दूर न होकर अधिकसे अधिक निकट हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गोपियोंने बड़े धैर्य्यसे प्यारेका सन्देश सुना, उन्हें इस बातसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई, कि प्यारेने हमारा स्मरण किया है और हमारे लिये सन्देश भिजवाया है। सन्देश सुनकर उनके रोंगटे खड़े हो गये। प्यारेका स्मरण हो आनेसे उनके हृदय और नेत्र भर आये, कुछ देर तक तो वे कंठ रुँध जानेसे कुछ भी बोल नहीं सकीं, फिर धैर्य धारण करके [illegible]। गोपिकाओंने जो कुछ कहा

[illegible]

छप्पय

सब साधनको श्रेष्ठ साध्य हौं ही जा जगमहँ।
मैं अरु तुम सब एक भेद नहि तुममें हम महँ॥
प्रेमवृद्धिके हेतु भयो हौं तुम तैं न्यारो।
ज्यों परोक्ष महँ प्रेष्ठ लगे प्राननितैं प्यारो॥
जितनो पाइ वियोग कूँ, सतत चित्त प्रियमहँ रहै।
उतनो नहि संयोग सुख, महँ मन तन्मयता लहै॥

प्रेष्ठसम्बन्धी प्रियप्रश्न

(१०६८)

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि—
र्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्या—
मस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ४३ श्लो०)

छप्पय

प्रियको सुनि सन्देश भईं सब हर्षित नारी ।
प्रेम प्रकट अति करैं श्याम सुधि लई हमारी ॥
पूछति पुनि पुनि कुशल कहो उद्धव हरि सुखतैं ।
उन बिनु ब्रजमहँ कटत हमारे सब दिन दुखतैं ॥
वृन्दावनमहँ शरदकी, निशा बिताई रासमहँ ।
यादि करत हरि पियनि सँग, कबहुँ हास परिहासमहँ ॥

---

*गोपिकायें उद्धवजी से कह रही हैं—"उद्धवजी ! बताओ, क्या श्यामसुन्दर उन रात्रियोंको भी कभी याद करते हैं, जिन रात्रियोंमें रासमण्डल बनाकर जिन्होंने हम अपनी प्रियाओंके साथ, कुमुद और कुन्दकुसुमसे शोभित तथा चन्द्रिका चर्चित वृन्दावनमें, अपने चरण-नूपुरोंकी ध्वनि करते हुये हमारे साथ रमण किया था और हम उन्हींकी मनमोहिनी कथाओंका गान किया करती थीं उन्हें भूले तो न होंगे ?"

प्रेममें उपदेश नहीं दिया जाता, प्रेममें साधन नहीं, अनुष्ठान नहीं कर्तव्य नहीं नियम नहीं केवल एकमात्र आत्मसमर्पण है। अपनेको सर्वात्म भावसे प्यारेको सौंप देना है। निरन्तर चित्त प्यारेका स्मरण करता रहे, कान प्यारेके ही सम्बन्धमें सुनते रहें यही प्रेमकी पराकाष्ठा है। जिस दशामें निरन्तर प्यारेकी ही स्मृति बनी रहे, पलभर भी वह न बिसरे वही प्रेमकी परमोत्कृष्ट दशा है। विरहमें ऐसी ही दशा होती है। भगवान्‌के मथुरा पधारनेपर गोपियोंकी ऐसी ही दशा हो गई थी। प्रेमका इतना उत्कृष्ट उदाहरण संसारमें कहीं भी नहीं मिलेगा, इसीलिये गोपियोंको प्रेमकी ध्वजा बताया गया है, मानव शरीरमें इतना प्रेम कहीं भी प्रकट नहीं हुआ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्‌ने उद्धवजीके हाथ हमारे लिये क्या सन्देश भेजा इसपर किसीने विचार ही नहीं किया। गोपियोंको तो सबसे अधिक प्रसन्नता इस बात से थी, कि भगवान्‌ने हमें स्मरण किया हमारे लिये सन्देश भेजा। इसी बातको स्मरण कर करके उनके रोमाञ्च हो रहे थे। उस सन्देशमें इन्होंने हमें क्या कर्तव्य बताया है, क्या उपदेश दिया है, किस साधनका निर्देश किया है, इस विषयमें उन्होंने कुछ सोचा ही नहीं, क्योंकि प्रेममें उपदेश आदेश तथा साधन आदि कुछ होते ही नहीं। प्रेम की बातोंका कोई अर्थ नहीं होता, वे निरर्थक होती हैं, वे तो प्रेम बढ़ानेके ही लिये की जाती है। गोपियोंसे पूछा जाय, कि शरद्‌की उन सुखद रात्रियोंमे जिनमें प्रकृति वृन्दवनकी भूमिमें आकर अनावृत नृत्य करती थी, जो चन्द्रिकासे चर्चित होनेसे तथा कुन्दकलियोंकी गन्धसे परमसुखद बन गई थीं उनमें रात्रि रात्रि जागकर श्रीकृष्ण क्या क्या बातें करते थे, तो स्यात् वे एक भी बात न बता सकें, किन्तु उन बातोंको स्मरण कर करके हृदयमें निरन्तर हूक उठती रहती है, क्योंकि उन बातोंमें सरसताका सम्पुट था, वे प्रेममें

पगी अर्थहीन बातें थीं। इसी प्रकार भगवान्ने हमारे लिये क्या सन्देश पठाया, हमें सर्वात्मा निर्गुणनिराकारकी उपासना करनी चाहिये, ये भाव उनके मनमें आये ही नहीं। उनकी प्रसन्नताका प्रधान कारण यह था, कि प्यारेने हमें याद किया है, अपने हाथ हमारे लिये संदेश भेजा है, वे हमें सर्वथा भूल नहीं गये उनका हममें अभी अपनापन शेष है। सन्देश सुनाकर उद्धवजी चुप हो गये। अब श्रीकृष्णचर्चा बन्द हो गयी। उसके प्रवाहको अविच्छिन्न बनाये रखनेके निमित्त गोपियोंने कुछ कहना आरम्भ किया। प्यारे के सम्बन्धमें ही सोचते रहना, उनके ही सम्बन्धमें कुछ कहते सुनते रहना यही तो प्रेमियोंके समय काटनेका साधन है। अतः गोपिकाओंने उद्धवजीसे कहना आरम्भ किया। वे श्यामसुन्दरके ही सम्बन्धमें पूछती हुई बोलीं—"उद्धवजी! सन्देश तो आप सुना चुके, आप श्यामसुन्दरके सम्बन्धकी बात सुनाइये। हाँ, तो यहांसे जाकर उन्होंने क्या काम किया ?"

उद्धवजीने कहा—"देवियो! यहाँसे जाते ही भगवान्ने एक बड़ा भारी काम किया। हम यादवोंको दुख देनेवाला जो दुष्ट कंस था, सर्वप्रथम उन्होंने उसीको जाकर मारा। फिर उसका पक्ष लेकर उसके भाई अनुयायी आये उन सबको भी परलोक पठा दिया।"

गोपियोंने कहा—"उद्धवजी! यह तो भगवानने बड़ा सुन्दर काम किया। यहाँ भी बहुतसे असुर दुष्ट आते थे, तो भगवान उन सबको पछाड़ देते थे, मार देते थे, किन्तु हमारे हृद्रोगको समूल नष्ट न कर सके। उसे ज्योंका त्यों छोड़कर चले गये। अरतु यह बताओ अब वे अच्छी तरहसे तो हैं। कुटुम्ब परिवार-के सहित धनधान्यसे रिपूर्ण तो हैं न ?"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, अब तो कोई विरोधी रहा नहीं जो यादव दुखी होकर परदेशोंमें चले गये थे, वे भी सब लौट

आये। उन सबको भगवानने धन भवन आवश्यक सामग्री देकर सन्तुष्ट कर दिया है। उन सबके सहित श्यामसुन्दर सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहे हैं।"

गोपियोंने कहा—"उद्धवजी ! हमारे लिये सबसे अधिक सुखद समाचार यही है, कि श्यामसुन्दर सुखी हैं। किन्तु एक बात बताओ उन्होंने प्रेम करना छोड़ तो नहीं दिया है? वे सर्वथा निर्मोही तो नहीं बन गये हैं ? जिस प्रकार वे हमारी स्नेहमयी लजीली मुस्कान और मनोहर चितवनसे पूजित होकर हमसे प्रेम करते थे; उसी प्रकार मथुराकी सुन्दरी नगरनिवासिनी नारियोंसे प्रेम करते हैं या नहीं ? प्यारे सर्वथा निष्ठुर तो नहीं हो गये ? वे रूखे स्वभावके तो थे नहीं। मथुरामें जाकर रूखे तो नहीं बन गये !"

उद्धवजीने स्नेहभरित हृदयसे कहा—"देवियो ! आप मेरे स्वामीपर इतना सन्देह क्यों कर रही हो। मैं सत्य सत्य शपथ पूर्वक कहता हूँ, उनका तुम्हारे प्रति जैसा स्नेह है, वैसा किसीके प्रति भी नहीं। ऐसा प्रतीत होता है, तुमने उन्हें अपने प्रेमपाश में इतना कसकर बाँध लिया है, कि वे उतना प्रेम किसीसे कर ही नहीं सकते। आप उन्हें कृतघ्न न समझें !"

शीघ्रताके साथ गोपियोंने कहा—"उद्धवजी ! कृतघ्नताकी बात नहीं है। चुम्बक लोहे को खींच ही लेता है। कली खिलते ही मधुप उसपर मँडरानेही लगता है। यह संभव नहीं कि अग्नि और रुई पास पास रहें और परस्परमें सम्बन्धित न हों। श्री कृष्ण रसिक हैं, आकर्षक हैं तथा रतिचतुर हैं। वे मथुराकी माननीया महिलायें सभ्या हैं सुशिक्षिता हैं, सरस हैं, वे सबके पति हैं श्रेष्ठ तथा प्रेमास्पद हैं, सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उन्हें प्यार करती हैं, जो जिसे सहृदयसे प्रेम करता है, उसका भी चित्त उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है फिर उन नवीली नागरियोंके

वाग्विलास और केलिकलापोंसे सम्मानित होकर वे रसिक चूड़ामणि उनमें आसक्त क्यों न होंगे ? इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है ?"

उद्धवजीने कहा—"नहीं, देवियो ! यों तो भगवान् सभीके स्वामी हैं, सभीके प्रिय है, प्राणिमात्र उनसे प्रेम करते हैं। वे ही एक मात्र सबके प्रेष्ठ हैं। यह सब होनेपर भी तुम्हारे प्रति उनका भाव विलक्षण है, वे तुम्हारे गुणोंको याद करके एकान्तमें आँसू बहाते रहते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! प्रेमी अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता। उसे तो प्रति क्षण यही चिन्ता लगी रहती है, हमारे प्रियतम हमें कभी याद करते हैं या नहीं ! जिस प्रकार हम उनके दर्शनोंके लिये अधीर बने रहते हैं वैसे उन्हें भी हमारी कभी याद आती है क्या ? इस बात को लाख बार सुनकर भी बारबार सुननेकी इच्छा बनी रहती है। प्यारे कभी हमारा नाम लेते हैं, हमारी चर्चा करते हैं, किसीसे कभी हमारे सम्बन्धमें कुछ कहते हैं यही प्रेमियोंकी बातोंका मुख्य विषय रहता है। जैसे शरीरमें कहीं भी खुजली हो, हाथ तुरन्त वहीं पहुँच जाता है, उसी प्रकार प्यारेके सम्बन्धमें कैसी भी बातें हो रही हों, फिरफिरकर बात वहीं आ जाती है, कि प्यारे हमें भूले तो नहीं, कभी हमारी चर्चा होती है। उद्धवजी जब गोपियोंके गुणोंकी प्रशंसा करने लगे, तो बातको टालती हुई वे अपने मुख्य विषयपर आ गईं और बोलीं—"अच्छा वे किनसे प्रेम करते हैं। किनसे नहीं करते, इन व्यर्थकी बातोंमें पड़नेसे हमें क्या प्रयोजन ? वे सर्वसमर्थ हैं जो करते होंगे उचित ही करते होंगे, अब आप हे साधो ! यह बताइये कि वे कभी हमारी भी याद करते हैं। अपनी परम प्रवीणा कुब्जा आदि प्रेयसियोंके मंडलमें बैठकर कभी हम गाँवकी गवाँरिनि ग्वालिनियोंका भी स्मरण करते हैं। जब बातोंके ऊपर

बातें होती रहती होंगी तब अपने स्वच्छन्द वार्तालापमें वहाँ वृन्दावनकी भी कोई बात छिड़ती है ?"

उद्धवजीने कहा—"देवियो ! अब मैं बारबार कैसे कहूँ, आप तो उसी एक प्रश्नको पुनः पुनः पूछती हैं, मैंने कह तो दिया वे दिन भर आपकी ही बातें करते रहते हैं आपके साथ की हुई क्रीड़ाका ही कथन करते रहते हैं ?"

गोपिकाओंने कहा—"अच्छा क्या क्या कहते हैं ? कुछ सुनाइये तो ?"

उद्धवजी कुछ सोचकर बोले—"अब मुझे सब बातें तो याद नहीं हैं, वे माखनचोरीकी, होरीकी, दानकी और पनघटकी बहुत सी बातें करते रहते हैं।"

इसपर गोपिकायें बोलीं—"अच्छा उद्धव यह बताइये, कभी वे रासलीलाकी भी चर्चा करते हैं ? अहा ! वृन्दावनकी वह शोभा जब शारदीय शशि अपनी समस्त कलाओंके सहित उदित होकर समस्त वनमें चन्द्रिकाको बिखेर देते थे। जब कुंजोंकी लताओंपर खिली हुई कुन्दकी कलियाँ अपनी सुवाससे उस प्रान्तको सुवासित बना देती थीं, जब कुमुदिनियाँ अपनी शोभासे रासस्थलीकी पुष्करिणियोंको भर देती थीं उस समय वे बाँसुरी बजाते थे, हम सब वंशीकी ध्वनि सुनकर दौड़ी हुई उनके समीप आती थीं तब वे रासमण्डल बनाकर हम अपनी किंकरियोंके साथ नृत्य करते थे। अपने चरणोंके नूपुरकी ध्वनिमें हमारे नूपुरोंकी ध्वनिको मिलाकर रमण किया करते थे, भाँति भाँतिकी लीलायें करते थे, क्या कभी इन बातोंका भी वे स्मरण करते हैं ?"

उद्धवजीने कहा—"इन बातोंका स्मरण करते करते तो वे अधीर हो जाते हैं।"

गोपिकायें अनुरागभरित वाणीसे पूछने लगीं—"उद्धवजी !

सत्य सत्य बतावें जब वे रासलीलामें हमारे कंठोंमें अपनी विशाल बाहुओंको डालकर थिरकते थे और हम उल्लासमें भरकर उन्हींकी मनमोहिनी कथाओंका गान किया करती थीं क्या उन रसभरी मीठी मीठी रात्रियोंको वे याद करते हैं ?"

उद्धवजीने कहा—"देवियो ! तुम धन्य हो, हाय ! तुमने भगवान्के साथ ऐसी ऐसी क्रीड़ायें कीं ? बड़े बड़े योगियोंको भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं, उनका आपने गाढ़ालिंगन किया है। आपके भाग्यकी सराहना कौन कर सकता है ?"

गोपियोंने रोते रोते कहा—"उद्धवजी हमें यह सुख न मिलता, यही अच्छा था। हाय ! हम इस सुखसे अपरिचित ही रहतीं, तो इतना क्लेश तो सहन न करना पड़ता। सुखसे पेट भरके खातीं, नींद भरकर सोतीं। वे तो हमें एक बार सुख देकर हमारे मनको बिगाड़ गये, हमारे स्वादको कलुषित कर गये। जिन्हें एक बार भी श्रेष्ठ पुरुषका प्रेमालिंगन प्राप्त हो चुका है, क्या जीवनभर वे उस सुखको भूल सकते हैं। उनके संगसे हमें जितना ही अधिक सुख मिला था, आज उतना ही अधिक दुख हो रहा है। वे सुखके दिन हृदयमें पके फोड़े की भाँति टीस उत्पन्न कर रहे हैं। उद्धव ! क्यों हमारी व्यर्थ बड़ाई करते हो, हम अपने हृदयकी पीरको किससे कहें। संसारमें सहृदय पुरुषोंका अभाव है। जिसके सम्मुख भी हम कहेंगी, वही सुनकर हँसेगा। खिल्ली उड़ायेगा। तुम सहृदय हो, प्यारेके सखा हो, सचिव हो, साथी हो, स्नेही हो, सन्देशवाहक हो और हो उनके अभिन्न मित्र। अतः तुमसे हम अपने दुखको कहती हैं। हम सब तो उन्हीं श्यामसुन्दर घनश्यामके विरहानलमें संतप्त हो रही हैं ? सखे ! सच सच बताओ इन्द्रदेव जैसे जल बरसाकर सूखे वनको हराभरा कर देते हैं, वैसे ही नेहका नीर बरसाकर घनश्याम अपने अरुण मृदुल सुखद वरद करकमलको हमारे हृदयोंपर रखकर कब जीवनदान देंगे ?

कब हमारे सूखे हृदयको हरा करेंगे ? कब वृन्दावन आकर हमारे विरहानलको बुझावेंगे ? वे कभी यहाँ आवेंगे क्या ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इतना कहते कहते सभी ढाह मारकर रोने लगीं। भगवान् भुवन भास्कर उनके रुदनकी ध्वनि सुनकर छिप गये। रात्रि होते देखकर कल फिर इसी समय आनेका निश्चय करके गोपियाँ अपने अपने घरोंको चली गईं उद्धवजी नन्दजीके घरमें आ गये। अब कलकी कथा कल होगी।"

छप्पय

कहो कबहुँ घनश्याम आइ ब्रजपै बरसैंगे।
नेहनीरतैं कबहुँ हमारे हिय हरसैंगे॥
कब कोमल अति मृदुल कमल कर तैं परखैंगे।
आये ब्रज ब्रजनाथ सुनत कब सब हरषैंगे॥
नंदनँदन अतिशय कठिन, निर्मोही निष्ठुर निपट।
किन्तु करें का फँस्यो मन, प्रेमफन्द अति ही विकट॥

दर्शनोंकी आशा दुस्त्यज है

[१०६६]

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्यशा दुरत्यया ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ४७ श्लो०)

छप्पय

आशामहँ अति दुःख निराशा सुखकी जननी।
जानि बूझिकें बिगरि गई मोरी मति अपनी ॥
जिनि प्रभु पायो परस सरस कैसे नहिँ भजिहैं।
कृष्णकथा जिनि श्रवन सुनी ते कैसे तजि हैं ॥
कमला अति ही चचला, किन्तु परस पिय पाइकें।
होहि न पलभरकूँ पृथक, श्याम सिन्धुमहँ आइकें ॥

जिसको जिस वस्तुका व्यसन पड़ जाता है, उसके लिये उसे छोड़ना असंभव हो जाता है। मादक वस्तुओंके व्यसनी इच्छा होने पर भी उन व्यसनोंको नहीं छोड़ सकते, किन्तु उनमें कुछ ऐसे साहसी होते हैं, जो चिरकालके व्यसनको क्षण भरमें

---

*गोपिकायें कह रही हैं—"उद्धवजी! पिङ्गला नामकी वेश्याने कहा कि किसीकी आशा न करना यही परम सुख है" इस बातको जानते हुए भी हमारे लिये श्रीकृष्ण चन्द्रकी आशाका त्यागना तो अत्यन्त ही कठिन है।

छोड़ देते हैं। घर द्वार, कुटुम्ब परिवार तथा पद प्रतिष्ठाका त्यागना भी अत्यंत कठिन है, किन्तु वैराग्यवान् पुरुष इन सबको तृण के समान त्यागकर परिव्राजक बन जाते हैं और फिर इनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते, किन्तु कृष्णानुराग ऐसा दुस्त्यज है, कि जिस हियेमें यह घुस जाता है उसमें घर कर लेता है, जितना ही इसे निकालनेका प्रयत्न करो उतनाही यह और अधिकाधिक बढ़ता जाता है। संसारके अन्य समस्त बन्धन तो तोड़े भी जा सकते हैं, किन्तु प्रेमरज्जुका यह दृढ़बन्धन किसी प्रकार भी नहीं तोड़ा जा सकता। प्रेमका सरोवर ऐसा आकर्षक है, कि एक बार जो इसके ढिंग आ जाता है, फिर वह लौटकर नहीं जा सकता। रोते रहो, तड़पते रहो यही प्रेमका उपहार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! सायंकाल होते ही गोपिकायें घर लौट तो आईं किन्तु उनका चित्त श्यामसुन्दरमें ही लगा था। उद्धवजीके सत्संगसे उन्हें शान्ति मिली। प्यारेकी चर्चा करते करते जो समय व्यतीत हुआ वह प्रतीत ही न हुआ कब कट गया। अब तो उन्हें उद्धवजीसे मिलनेकी चटपटी लगी रहती। हमारे हृद्गत भाव उद्धवके द्वारा श्याम तक पहुँच जायँगे इस बातको स्मरण करके उनके रोमरोम खिल जाते। उनकी ऐसी इच्छा बनी रहती निरन्तर उद्धवजीके ही निकट बैठकर प्यारेकी चर्चा करते रहें। उद्धवजीसे कुछ सुनती रहें कुछ उन्हें सुनाती रहें।

दूसरा दिन हुआ। घर गृहस्थीके कामोंसे निवृत्त होकर वे पूर्व निश्चयानुसार नियत स्थानपर पहुँच गयीं। उद्धवजीके जीवनमें भी यह प्रथम ही प्रसंग था। इतना सरस समाज उन्होंने आज तक कभी देखा ही नहीं था। जिन हृदयोंमें निरन्तर श्री कृष्णपीयूषका प्रवाह बहता ही रहे ऐसे भावुक भक्तोंका सत्संग उन्हें प्रथम प्राप्त नहीं हुआ था, अतः वे भी उनकी अनुरागमें

पगी, प्रेममें सनी नेहमें प्यारी प्यारी बातोंको सुननेको समुत्सुक हो रहे थे, अतः वे भी नियत समय पर उसी स्थानपर पहुँच गये। परस्परमें शिष्टाचार होनेके अनन्तर फिर बात छिड़ गई। गोपिकाओंने कहा—"हाँ तो उद्धवजी! श्याम सुन्दर कभी हमारी याद करते हैं?"

उद्धवजी को अब इस प्रश्नका उत्तर देनेका अभ्यास हो गया था, अतः वे बिना झुँझलाये बोले देवियो! श्रीकृष्णके लिये याद करने के लिये और विषय है ही क्या? निरन्तर आपकी ही तो याद वे किया करते हैं।"

इस पर एक उत्सुकता पूर्वक बोली—"अच्छा, याद करते हैं, तो वे यहाँ आते क्यों नहीं? क्यों हमें इतना तड़फाते हैं? क्यों नहीं आकर हमें सुखी बनाते हैं, क्यों नहीं हम अपनी आश्रिता अबलाओंके तनोंकी तपनोंको आकर बुझाते हैं?

इसपर दूसरी बोली—"सखियो! अब प्यारके आनेकी आशा छोड़ो। अब उन्हें हम गाँवकी गँवारिनी गोपिकाओंसे क्या काम अब वे गोपालकृष्ण तो रहे नहीं। अब तो शत्रु को मारकर राजा बन गये हैं। लकुटी फेंककर शस्त्र रखने लगे हैं, ब्रजरजको छोड़कर सिंहासनपर बैठने लगे हैं। अब तो वे सुकुमारी राजकुमारियों से विवाह करके उनसे प्यार करेंगे। उन्हें अपने हृदयको अर्पित करेंगे। उनके अधीन होकर उनके कथनानुसार चलेंगे। अब वे ब्रज क्यों आने लगे, क्यों हम अबला कुरूपाओं को याद करने लगे।

इसपर एक अन्य बोली—"अरी, बावरी! उन्हें कौन अपने वशमें कर सकता है। वे ही सबको कठपुतरियोंकी भाँति नचा रहे हैं। वे तो पूर्ण काम हैं, कृतकृत्य हैं उन्हे किसीकी स्पृहा नहीं। जिस लक्ष्मीको चंचला चपला कहते हैं जो कहीं स्थिर नहीं रहती, वह उनके चरणोंमें जाकर अपने स्वभावको त्याग देती है।

निरन्तर प्यारेके पैरोंको पलोटती रहती हैं। उन्हें राजकुमारियोंसे अथवा हम वन वासिनियोंसे क्या प्रयोजन ? उन्हें कोई अपने गुणोंसे थोड़े ही रिझा सकती हैं, जिनपर वे रीझ जायँ, जिनपर उनकी कृपा दृष्टिकी वृष्टि हो जाय।

उद्धवजीने कहा—"देवियो! तुमपर तो भगवान्‌की निरन्तर कृपाकी वृष्टि होता रहती है।"

निराशाके स्वरमें एक गोपी बोली—"कहाँ कृपा होती है, उद्धवजी! कृपा न होनेपर भी हम इसी आशासे जीवित हैं कि प्यारे संभव है आ जायँ। दर्शनोंकी आशामें ही प्राण अटके हैं।"

उद्धवजीने कहा—"देवियो! आशापर ही संसार अवलम्बित है। जीवनमें जिसे कोई आशा ही नहीं वह जियेगा ही क्यों?

इसपर एक गोपी बोली—"उद्धवजी! आशामें दुःखके अतिरिक्त सुख नहीं। इस विषय में हमने एक कहानी सुनी है, कहें तो उसे सुना दें।"

उद्धवजीने कहा—"हाँ सुनाइये। आपकी कही हुई कहानी तो शिक्षाप्रद ही होगी।"

गोपी बोली—"शिक्षाप्रद क्या होगी, उद्धव! हमने तो बड़ों-के मुखसे यह कथा सुनी है, कि प्राचीन कालमें विदेह राजाकी राजधानी मिथिलामें पिङ्गला नामकी वेश्या रहती थी। एक दिन वह शृंगार करके अपने कोठेपर इस आशासे बैठी थी, कि कोई धनी मेरे पास आये और मुझे विपुल धन दे। जिसे भी अपनी ओर आते देखती, उससे आशा लगाती, संभव है यह आ जाय, जब वह निकल जाता तो दूसरेकी आशा करती। आशामें ही बैठे बैठे उसकी सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गई, किन्तु कोई धन देनेवाला नहीं आया। अन्तमें उसे वैराग्य हुआ। उसने निष्कर्ष निकाला कि "संसारमें किसीसे आशा न करना ही परमसुख है, आशामें ही दुःख होता है" इसीलिये उद्धवजी! आशा कोई

अच्छी वस्तु थोड़े ही है। इस वातको हम सव जानती हैं तो भी हमसे श्रीकृष्णके दर्शनोंकी आशा नहीं छोड़ी जाती। और आशाओंको हम भले ही छोड़ दें, किन्तु प्यारेके दर्शनोंकी लालसाको त्यागना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है। और सब चर्चायें त्यागी जा सकती हैं किन्तु पुण्यकीर्ति श्रीहरिकी एकान्तचर्चा त्यागने का साहस कौन कर सकता है ?"

उद्धवजी ने कहा—"जैसे आप सबके लिये श्यामसुन्दरकी चर्चा त्यागना कठिन है, वैसे ही उन परात्पर प्रभुको आप सब की चर्चा त्यागना असंभव है, वे निरन्तर आप सबकी ही चर्चा करते रहते हैं और नयनोंसे नीर बहाते रहते हैं। दोनों ही ओरसे ऐसी बात है।"

गोपियोंने कहा—"उद्धवजी! उन सर्वसमर्थ स्वामीके लिये कुछ भी कठिन नहीं, कुछ भी असंभव नहीं। उनके लिये सब संभव है। वे तो निस्पृह हैं, आप्तकाम हैं, उनमें ऐसा आकर्षण है, कि एक वार जिनका चित्त उनकी ओर खिंच जाता है, वह उन्हें छोड़ नहीं सकता। देखो लक्ष्मीकी भगवान् इच्छा नहीं करते, फिर भी वह अपनी चंचलता त्यागकर उनसे लिपटी ही रहती हैं। उनके अङ्ग सङ्गको कभी छोड़ ही नहीं सकती।

उद्धवजीने कहा—"देवियो! अब भगवान्की उन सगुण लीलाओंको भूल जाओ। अब उनका निर्गुण निराकार रूपसे अपने अन्तःकरणमें ही ध्यान करो।"

अश्रुविमोचन करते हुए गोपिकाओंने कहा—"उद्धवजी हाय! हम उन श्यामसुन्दरकी की हुई अति मधुर परम सरस लीलाओंको भूल सकतीं, तबतो अत्यन्त ही उत्तम था, किन्तु हमारे लिये उन्हें भूलना अत्यन्त ही कठिन है, जिधर भी हमारी दृष्टि जाती है, उधर ही थिरकती हुई नृत्य करती हुई नंदनन्दनकी सजीव स्मृति दिखायी देती है। भानुतनया कालिन्दीकी

ओर निहारती हैं, तो हृदय फटने लगता है, ये उन्हींके शरीरके रंगवाले नीरको निरन्तर बहाती रहती हैं। इनके कलित कूलोंपर उन्होंने कितनी-कितनी कमनीय क्रीड़ायें की थीं। जब हम जल भरने यमुनातीर पर आती थीं तो हमारे साथ वे कैसी मीठी-मीठी बातें किया करते थे। इसके निर्मल नीरसे कितनी बार हमारे अंगोंको उन्होंने भिगोया था। कितनी बार उन्होंने हमें अपने करकमलोंसे पकड़ पकड़कर न्हिलाया था, कितनी बार हँसते हँसते हमें डुबाया था। कालिन्दीके कणमें उनकी स्मृति सजीव होकर वासकर रही है। कालिन्दीको हम कैसे भुला सकते हैं। इसे ब्रजसे कैसे भगा सकती हैं। इसके नीले जलको रक्त कैसे बना सकते हैं उद्धव ! तुम ही बताओ ?

उद्धवजी ने कहा—"कुछ दिन यमुनाजीकी ओर जाना छोड़ दो।"

गोपियाँ बोलीं—"अच्छा, मान लो ऊधोजी ! यमुनातट जाना छोड़ दें तो यह दूरसे दिखाई देने वाला गोवर्धन पर्वत तो हमारे हृदयमें टीस उत्पन्न करता है। इसी पर्वत पर वे प्रति-दिन गौओं को चराते थे, सात दिनों तब इसे ही वे अपनी छोटी अँगुलीपर धारण किये रहे, हम सबको इसे ही धारण करके आँधी पानी से बचाया था। तभी से हम उन्हे गिरधारी गोवर्धन-धारी आदि नामोंसे पुकारने लगीं थीं। इस पर्वतको देखते ही उनकी सभी लीलायें चल-चित्रोंकी भाँति हमारे हृदय पटलपर अंकित हो जाती हैं। इस पर्वत को ब्रजसे कैसे उखाड़कर फेंक दें या अपनी इन फूटी हुई आँखोंमे सूजा चुभो लें।"

उद्धवजीने कहा—"ऐसा क्यों करोगी, कुछ दिन पर्वतकी ओरसे दृष्टि हटा लो।"

गोपिकाओंने कहा—"हाय ! उद्धव ! तुम कैसे कृत्रिम उपाय बता रहे हो ? देखो, जिस वस्तुको भुलानेका प्रयत्न किया जाता

है वह और भी अधिक याद आती है। तुम कहते हो, घरमें बन्द रहो। घर हमारे हैं कहाँ ? आज इस वनमें हैं कल दूसरे में। वनवासिनी तो हम हैं ही ! वनोंमें बिना जाये हमारा काम चलने का नहीं। प्रत्येक वनके कण कणमे कृष्णकी स्मृतियाँ संनिहित हैं। कोई वनकी तिलभर भी भूमि शेष नहीं जहाँ उन्होंने कुछ कौतुक न किया हो। फिर इन भोरे ग्वालवालोंको कौन बरजे। ये गौओंको ले जाते हुए लाते हुए बाँसुरी बजाते ही हैं। जहाँ हमारे कानोंमे वंशीकी मधुर मधुर ध्वनि सुनाई दी, कि हमारा मन हमारे वशमें नहीं रहता। मुरलीधरकी अनन्त स्मृतियाँ एक साथ ही जागृत हो उठती हैं। हम भूली-सी भटकी-सी ठगी-सी मथुराकी ओर जोहने लगती हैं, कहीं श्यामसुन्दर ही तो बाँसुरी बजाते हुए नहीं आ रहे हैं ?" फिर अभी अमूल्य धन समझकर धरनीने उन श्रीनिकेतन श्रीनिवासके चरणचिह्नोंको सुरक्षित छिपा रखा है। जब उन वज्र, अंकुश, ध्वज तथा कमलादि चिह्नों से चिह्नित धारण चिह्नोंको हम निहारती हैं, तो वे परममृदुल चरण जिनसे हमारे हृदयकी पीड़ाको वे शान्त करते थे, स्मृति-पथपर आआकर भूचाल सी मचा देते हैं। हमें आत्मविस्मृत बना देते हैं।

उद्धवजीने कहा—"आप उन्हे अन्तर्यामी रूपसे अपने हृदयमें ही स्थित अनुभव करें।"

खीजकर गोपियोंने कहा—"कैसे करें उद्धव! तुम हमारी विवशताको अनुभव नहीं कर सकते। देखो, जब वे मटक-मटक-कर चलते थे उनको मदभरी चाल क्या कभी भुलाई जा सकती है ? ललित त्रिभंग गतिसे जब वे खड़े होते थे, उस समय उनके जिन्होंने दर्शन किये हैं वह झाँकी लाख प्रयत्न करनेपर भी चित्त-से नहीं हट सकती। जब वे कुन्दकलियोंके सदृश, दाड़िमके दानोंके सदृश, निर्मल कीर्तिके सदृश अपने शुभ्र स्वच्छ दर्शनों-

को निकालकर हा हा करके हँसते थे, तो, उनका वह उदारहास्य अन्तःकरणमें घरकर लेता था। उसकी प्रतिच्छाया अब भी हमारे चित्तमें बसी हुई है। उनकी एक एक लीलामें जादू था, यही नहीं कि लीला हुई समाप्त हो गई, उसे भूल गये। उनकी समस्त लीलायें चिन्मय अप्राकृत तथा नित्य होती थीं। वे किसी प्रकार भुलाई नहीं जा सकतीं। उनकी मदभरी नेहरी चारु-चितवन जिस चित्तमें चढ़ गई, फिर वह प्रयत्न करनेपर भी उतर नहीं सकती। उद्धव! उनकी चितवनमें टौना था, उसमें वशीकरणकी सम्पूर्ण शक्ति निहित थी। हम तो उसी रोगकी रोगिणी हैं भुक्त भोगी हैं। अहा! उनकी वाणी कैसी प्यारी-प्यारी मधुर और संगीतमय थी! वह अभी तक हमारे कर्णकुहरोंमें गूँज रही है। उसकी प्रतिध्वनिसे अभी तक हमारे रोमाञ्च हो रहे हैं। उसे अपने अन्तःकरणसे वाह्यकर्णोंसे कैसे निकाल सकते हैं। उद्धव! तुम ही बताओ, हम क्या करें, कहाँ जायँ, क्या करनेसे शान्ति मिल सकती है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहते कहते गोपिकाओं-को श्रीकृष्णकी प्रबल स्मृति हो उठी। वे उन्हें सम्बोधन करके करुण स्वरमें चोख मारकर रोती हुई पुकारने लगीं—"हे नाथ! हा रमानाथ! ओ! व्रजके एकमात्र रक्षक और आर्तिभंजन! हे गोविन्द! आओ आओ हमें पार लगाओ! बचाओ। तुम्हारा यह प्यारा गोकुल दुःखसागरमें डूबा जाता है। जैसे पहिले आपने गोवर्धनधारण करके इसकी रक्षा की थी, इसी प्रकार अब आकर इसकी रक्षा करो। इसे डूबनेसे बचाओ! हमें जीवनदान दो। हमारा इस विपत्तिसे एकबार और भी उद्धार करो।" इस प्रकार से सब मिलकर ढाह बाँधकर रोने लगी। उनके रुदनकी करुण ध्वनि दशों दिशाओंमें भर गई। वे मूर्छित होकर भूमिमें गिर गईं।

छप्पय

कालिन्दीको सलिल श्याम सुधि सतत दिवावै।
गिरि गोवर्धन लखत हियो हमरो भरि आवै॥
श्याम ललित गति हँसी सुखद लीला शुभचितवन।
यादि दिवावँ धेनु बेनु-रव गिरि वन उपवन॥
करि करि सुमिरन श्यामको, करन लगीं गोपी रुदन।
हाय! नाथ अशरन शरन, हा दुख भञ्जन नँदनँदन॥

उद्धवजीका व्रजवासियोंको सुखद सत्संग

[१०७०]

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदञ्छुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ५४ श्लो०)

छप्पय

उमड़यो सागर विरह बह्यो ब्रज सबरो जावै ।
तुम बिनु राधारमन कौन अब आइ बचावै ॥
हे मनमोहन ! रमन ! वेनु पुनि मधुर बजाओ ।
अधरामृत भरि पेट आइ घनश्याम पिआओ ॥
व्रजवनितनिके विरहकूँ, लखि ऊधो व्याकुल भये ।
कृष्णकथाके लालची, कछु दिन व्रजमहँ बसि गये ॥

हमारे साथ कोई दुखमें सहानुभूति प्रकट करनेवाला हो, हमारी मनकी बातोंको उदारतापूर्वक कोई सुननेवाला हो तो हमें आन्तरिक शान्ति होती है। उसे मनोव्यथा कहनेसे हृदय हलका हो जाता है। समय सुखपूर्वक कट जाता है। उनके

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार उद्धवजी गोपियोंकी विरहव्यथाको शान्त करते हुए कई मास व्रजमें रहे। वे व्रजवासियोंके सम्मुख श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्की लीलाकथाओंको कह कहकर उनका मनोरञ्जन करते रहे।

सम्मुख बातें करते-करते ऐसा प्रतीत होता है मानो हमारे इष्ट हमारे सम्मुख उपस्थित होकर हमारी सब बातोंको सुन रहे हैं। एक प्रकारके संयोग सुखका अनुभव होने लगता है। ऐसे सहृदय पुरुषोंका सत्सङ्ग कुछ दिन मिल जाय तो विरहदुख कुछ-कुछ शान्त हो जाता है। चित्त स्वस्थ होकर आनन्दका अनुभव करने लगता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब गोपिकायें श्रीकृष्ण विरहमें मुक्तकण्ठसे रुदन करने लगीं, तब उद्धवजीका भी हृदय भर आया, वे उन्हें भाँति-भाँतिसे सान्त्वना देने लगे। वे बोले—'व्रजबालाओं! अधीर होनेकी कोई बात नहीं। श्यामसुन्दर आवेंगे अवश्य आवेंगे, वे आपको दर्शन देकर शान्त करेंगे।"

गोपियोंने रोते-रोते कहा—"उद्धव! तुम जुग-जुग जियो। एकबार किसी प्रकार हमारे हृदयधनको हमारे पास ले आओ। हम उन्हें मनभरके देख तो लें। तुम छलसे बलसे कलासे कौशलसे कैसे भी उन्हें ले आओ।

उद्धवजी बोले—"देवियों! वे तो घट-घटके वासी हैं, उनसे छलबल नहीं चलेगा। वे तो प्रेमसे ही वशमें हो सकते हैं।"

गोपिकाओंने कहा—"हमारे साथ तो वे नित्य ही छल करते थे। वेष बदल-बदलकर बरसाने जाते थे और भाँति-भाँतिके ढोंग बनाते थे। हमने भी उन्हें छलसे छकाया था। वे भोरे बनकर हमारी हाहा खाते, पैर पकड़ते हमें मनाते। यदि वे न आ सकें तो तुम हमें ही यहाँ ले चलो हम उन्हें मनाना जानती हैं।

उद्धवजीने कहा—"चलो, मैं तुम सबको मथुराले चलूँगा।"

इतनेमें ही एक बोली—"ना, बाबा! हम मथुरा न जायँगी। वहां तो वह सौत कुबरी दासी है। मर जायँगी, किन्तु उसकी चिरौरी हम न करेंगी। किसी प्रकार यहीं तुम श्यामको लाओ। यहाँ भी वे पहिले रूठ जाते थे, तब हम उन्हें अनेक युक्तियोंसे

प्रणाम करते। एक दिन इन्होंने गोपियोंके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रकट करते हुए अपने हृदयके जो जो उद्गार व्यक्त किये जो इन्होंने आशा प्रकट की उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

नित कालिन्दीकूल कदँबकी छाँह सिधारैं।
हरिलीला थल कुंज कन्दरा नदी निहारैं॥
लखि गोपिनि की दशा कहँ ऊधो ह्वै प्रमुदित।
अहो! धन्य व्रजवधू इन्द्र अज हर पद बन्दित॥
इनहींको जीवन सफल, डूबे हम अभिमानमहँ।
बीतत इनको सब समय, हरिसुमिरन गुनगानमहँ॥

उद्धवजीकी अभिलाषा और गोपियोंकी प्रशंसा

(१०७१)

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्याम्
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ६१ श्लो०)

छप्पय

कहँ अलख अखिलेश कहाँ ये ब्रजकी नारी ।
करि हरिपद अनुराग भईं सब जग तैं न्यारी ॥
जुग जुग जोगी करें जोग नहिं हरिपद पावें ।
तिनहिं गँवारिनि गोपवधू नित हिय चिपटावें ॥
जो प्रसाद पायो नहीं, कमला, अज सुर सुन्दरी ।
ताकूँ नित सेवति रहति, ब्रजकी भोरी नागरी ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! गोपियोंके अलौकिक प्रेमको देखकर उद्धवजी कहने लगे—"अहो ! यदि मैं वृन्दावनकी किसी ऐसी लता, ओषधि या झाड़ियोंमें से कोई एक होता, जिनके ऊपर ब्रजबालाओंकी चरण रज पड़ा करती तो क्या ही अच्छा होता । अहा ! ये गोपिकायें ही धन्य हैं, जिन्होंने अपने दुस्त्यज बन्धुबान्धवोंको, आर्यपथ को त्यागकर, श्रुतियों द्वारा खोजी जाने योग्य मुकुन्दपदवी पथका अनुसरण किया है ।

समस्त साधन संस्कारोंका एक मात्र फल है श्रीकृष्ण के चरणारविन्दोंमें अनुरक्ति। जिन साधनोंसे भगवान्के चरणोंमें अनुराग न हो, वे सब साधन व्यर्थ हैं और जिन साधनोंसे मन मदनमोहनको माधुरीमें अनुरक्त हो जाय, वही साधन सार्थक हैं। श्रीकृष्ण कृपा किसी वर्ग विशेषकी बपौती नहीं है। उसपर सबका समान अधिकार है। जिसपर कृष्णकृपा हो गई, वह चाहे पदमें, प्रतिष्ठामें, जातिमें, वर्ण तथा आश्रमादिकमें छोटा ही क्यों न हो सबसे मोटा है, सबसे श्रेष्ठ है। वे जगद्वन्धु हैं और सबके पूजनीय हैं। सहस्रों जन्मोंके अनन्त साधनोंसे ही श्रीकृष्ण भक्ति प्राप्त होती है और जिसे प्राप्त हो जाती है, वह कृतार्थ हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवद्भक्त जन दूसरे भक्की प्रेमदशा देखते हैं, तो अधीर हो जाते हैं, उसके प्रेमकी सराहना करते हैं और अपनेको बार बार धिक्कारते हैं। उन्हें अपनी दशापर ग्लानि होती है उन भक्तोंके चरणोंमें श्रद्धा होती है। यही आत्मग्लानि और भागवतश्रद्धा उन्हें उन्नतिके शिखर ले जाती है। कितना भी भगवद्भक्त क्यों न हो, यदि वह भागवतोंमें अनुराग नहीं रखता भक्तोंकी भक्ति नहीं करता, तो भगवान् उनकी भक्तिसे प्रसन्न नहीं होते। इसके विपरीत चाहे भगवान्की भक्ति न भी करे, भगवद्भक्तोंके प्रति श्रद्धा रखे उनकी हृदयसे सेवा करे, तो भगवान् उसपर प्रसन्न होते हैं।

उद्धवजी जबसे व्रजमें आये थे, निरन्तर गोपियोंकी प्रेम दशा देख रहे थे। उनके ऐसे अनुपम अनुरागको देखकर वे मन ही मन गोपियोंके प्रति श्रद्धा करने लगे। पहिले जो उनका गाँवकी गवारिनि और स्त्री होनेसे उनके प्रति हेय भाव था वह सर्वथा नष्ट हो गया। अब शनैः शनैः मनमें उनके प्रति भक्ति उत्पन्न

होने लगी। पहिले कोई भाव मनमें आता है, फिर वह वाणी द्वारा व्यक्त होता है और तदनन्तर वह इन्द्रियों द्वारा कर्ममें परिणित होता है। भावोद्रेकमें वाणी और कर्मो द्वारा मनोगत भाव व्यक्त हो ही जाते हैं। गोपियोंके प्रति श्रद्धा भक्ति होनेपर उद्धवजी प्रथम तो उन्हें मन ही मन प्रणाम करते। अब वे अपनेको रोक नहीं सके। एक दिन सब गोपिकायें बैठी थीं वे श्रीकृष्णकी चर्चा करते करते विह्वल हो रही थीं। उनके नेत्रोंसे जो निरन्तर नेहका नीर निकल रहा था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो इनका हृदय द्रवित होकर नयनों द्वारा बह रहा हो। वाणी गद्‌गद हो रही थी! सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। प्रेमकी ऐसी सर्वोत्कृष्ट दशा देखकर उद्धवजी अब अपनेको रोक न सके। अब तक वे मनसा और वाचा से ही अपनी श्रद्धाको व्यक्त करते थे आज उसे वे कर्मणा से भी प्रकट करने लगे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा भक्तिसे गोपिकाओंके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनके चरणकी धूलको मस्तकपर चढ़ाकर अधीर होकर रुदन करने लगे। सहसा वीणा बजाते हरिगुण गाते देवर्षि नारदजी भी वहाँ उपस्थित हुए। भगवानके सचिव और सखा यदु श्रेष्ठ उद्धवजीको गाँवकी गँवारिनि ग्वालिनियों के चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए देखकर उन्होंने हँसकर कहा—"उद्धवजी! यह क्या? आप यह कैसी वर्णाश्रम धर्मके विरुद्ध बात कर रहे हैं। कहाँ आप यादवोंके भी परम माननीय श्रेष्ठ क्षत्रिय और कहाँ ये गाँव की गँवारिनि। आप इन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम क्यों कर रहे हैं?

नयनोंसे नीर बहाते हुए देवर्षि नारदजीको पुनः पुनः प्रणाम करते हुए गद्‌गद कंठसे उद्धवजी बोले—"नारदजी! मैं तो इन महाभागा गोपिकाओंकी चरणधूलिको भी स्पर्श करनेका अपनेको अधिकारी नहीं समझता। आप मुझे श्रेष्ठ बता रहे हैं,

किन्तु मैं तो कहता हूँ, भूलोकसे सत्यलोक तक संसारमें जितने प्राणी हैं, उन सबसे ये व्रजकी गोपाङ्गनायें ही श्रेष्ठ हैं।"

नारदजीने कहा—"आप इन अनपढ़ अहीरिनियोंको सर्वश्रेष्ठ क्यों बता रहे हैं?"

उद्धवजी बोले—"श्रेष्टता कोई शरीरसे या बाहरी वेष भूषासे वर्णसे नहीं होती। प्राणियोंमें सबसे बड़े ब्रह्माजी हैं, वे निरन्तर तप करते रहते हैं। आप सब सनक सनन्दनादि ब्रह्म पुत्र भी निरन्तर तपमें निरत रहते हैं। जितने संसारभयसे भयभीत मुनिजन हैं तथा भगवद्भक्तिमें तल्लीन भक्तजन हैं, इन सभीका एक मात्र उद्देश्य उन सर्वात्मा श्रीहरिमें चित्तकी वृत्तियोंका योग कर देना ही है। सभीके साधनोंका अन्तिम लक्ष्य शरीरा-शक्तिको छोड़कर प्रभुचरणारविन्दोंमें अनुरक्ति होना ही है। इन गोपिकाओंको अत्यंतासक्ति स्वतः ही प्राप्त है। इनका चित्त सर्वात्मा श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें स्वतः ही लगा हुआ है। फिर बताइये इनसे बढ़कर श्रेष्ठ और कौन हो सकता है?"

नारदजीने कहा—"उद्धवजी! आपका कथन तो सत्य है, किन्तु इन स्त्रियोंके द्विजातिसंस्कार तो हुए ही नहीं। श्रेष्ठता तो संस्कारोंसे ही होती है। मातृगर्भसे उत्पन्न होनेपर सर्वप्रथम शौक्रसंस्कार होता है। पिताके द्वारा द्विजोचित जातकर्मादि संस्कार कराये जाते हैं फिर कुछ बड़े होनेपर सावित्र संस्कार होता है, यज्ञोपवीत कराकर गायत्री मंत्रकी दीक्षा दी जाती है। जब वेदाध्ययन समाप्त करके व्रतस्नान किया जाता है तब दार परिग्रह पूर्वक यज्ञकी दीक्षा ली जाती है, अग्निहोत्रका व्रतधारण करना पड़ता है, ये तीनों संस्कार मानों द्विजातियोंके तीन जन्म हैं। इन तीनों द्वारा उसकी श्रेष्ठता होती है, तभी वह वैदिक कर्मोंका अधिकारी माना जाता है। इन गोपिकाओंका तो इनमेंसे

एक भी संस्कार नहीं हुआ फिर आप इन्हें सर्वश्रेष्ठ मानकर साष्टाङ्ग प्रणाम क्योंकर रहे हैं ?"

उद्धवजीने कहा—ब्रह्मन् ! इन सब कर्मोंका एकमात्र-उद्देश्य भगवानमें भक्ति होना ही तो है। इन सब कर्मोंके करने पर भी भगवान्में भक्ति नहीं हुई तो इनका क्या फल ? और यदि इन कर्मोंके न करनेपर भी भगवान्में आसक्ति हो गयी श्रीकृष्ण चरणारविन्दोंमें अनुरक्ति हो गयी तो, फिर इनका प्रयोजन ही क्या ? श्रीकृष्ण प्रेमके कारण गोपिकायें संपूर्ण संसारकी पूजनीया और वन्दनीया बन गयी हैं।"

नारदजीने कहा—"उद्धवजी ! अज्ञानपूर्वककी हुई भक्तिका फल क्या ? मिश्री मिश्री कहनेसे मुँह मीठा तो नहीं होगा। इन्होंने तो भगवान्से जो प्रेम किया है, वह रूपाशक्तिके कारण किया है। ये प्रकृतिसे परे सच्चिदानंदघन परात्पर प्रभु हैं, ऐसा ज्ञान तो इन सब गोपियोंको था नहीं। ये तो भगवान्के रूपपर उनकी भुवनमोहिनी वंशीकी धुनिपर मुग्ध हो गयीं। इनका मन तो उनकी माधुरीपर अज्ञान पूर्वक खिंच गया। फिर इन्हें आप बड़े-बड़े ज्ञानियोंसे श्रेष्ठ क्यों बता रहे हैं ?"

उद्धवजीने कहा—"नारदजी ! ज्ञानसे पियो अज्ञानसे पियो अमृत तो अपना फल देता ही है। रोगीको यह ज्ञान नहीं होता यह चन्द्रोदय है, यह मकरध्वज है यह सुवर्णपर्पटी है। सम्बन्धियोंके कहनेसे खालेता है, अचेतावस्थामें वैद्य उनके मुखमें डाल देते हैं, फिर भी वे अपना प्रभाव तो दिखाती ही हैं। ये जड़ वस्तुएँ चाहे अपना प्रभाव न भी दिखावें, किन्तु चैतन्यघन घनश्यामसे तो कोई जानमें प्रेम करो; अनजानमें प्रेम करो, वे उसे अवश्य ही अपना लेते हैं। कामनासे प्रेम करो, विना कामनाके प्रेम करो, वे प्रेम करने वालेकी जाति पाँति कुलशीलका विचार नहीं करते। नहीं तो आपही सोचिये अपने पति पुत्रादिकोंको त्याग कर कुल

मर्यादाको जलाञ्जलि देकर एकमात्र जार बुद्धिसे श्रीकृष्णसे प्रेम करनेवाली ये जंगलमें रहनेवाली वनचरी ये गोपिकायें कहाँ? और कहाँ ये अखिलकोटि ब्रह्माण्डनायक अखिलात्मा परात्पर प्रभु, किन्तु उनमें इनका रूढ़भाव हो गया। उनके चरणारविन्दोंमें इनका सुदृढ़ अनुराग हो गया, इसीलिये ये सबसे श्रेष्ठ हो गयीं। श्रीकृष्णने इन्हें अपना लिया। अपनी प्रेयसी कहकर स्वीकार कर लिया। इनके सामने संसारके भारी से भारी क्लेश आजायँ, ये उनकी ओर देखतीं भी नहीं। संसार की ओरसे इन्होंने मुख मोड़ लिया है। इनका कोई भी समय व्यर्थ नहीं जाता, सब समय सब दशाओंमें निरन्तर उन सर्वात्मा हरिका ही स्मरण करती रहती हैं। वाणीसे उन्हींके गुणोंका गान करती हैं, मनसे उन्हींके मनोहर रूपका चिन्तन करती रहती हैं, मस्तकसे निरन्तर उनको ही नमन करती रहती हैं। नेत्रोंसे निरन्तर उनके ही लिये नीर बहाती रहती हैं अधिक क्या कहें इनकी समस्त चेष्टायें भगवान्‌के ही निमित्त होती हैं। इनकी संसारी विषयोंमें स्वाभाविक विरक्ति है, ये जो शृङ्गारादि करती हैं अपने लिये नहीं करतीं, केवल श्रीकृष्णकी प्रीतिके हेतु करती हैं। इन्हें मान नहीं, किसी प्रकारका अभिमान नहीं, श्रीकृष्ण प्राप्तिके लिये ये भिखारिनि बनकर घर-घर बड़ी प्रसन्नतासे भीख माँग सकती हैं, भस्म रमा सकती हैं, सब कुछ कर सकती हैं। इन्हें जीवनसे भी मोह नहीं, किन्तु एक दृढ़ आशाबन्धन इनके प्राणोंको बाँधे हुये हैं, कि श्यामसुन्दर आवेंगे हमें हृदयसे आकर सटावेंगे, प्रेम प्रदान करेंगे, इसीलिये ये अत्यन्त उत्कंठा के साथ मथुराकी ओर निहारती रहती हैं, सम्भव है अब प्राणनाथ आजायँ अब हृदय धन आजायँ, इसी उत्कण्ठामें ये नयनों से नीर बहाती रहती हैं।

इनको एक ही व्यसन है, ये निरन्तर हा नाथ! हा रमण!

हा प्रेष्ठ ! हे ब्रजनाथ ! हे गोविन्द ! हे ब्रजकी आर्ति हरनेवाले इन नामोंका ही गान करती रहती हैं, अपने प्यारेको प्रेमपूर्वक पुकारती रहती हैं।

नाम गानकी ही भाँति उनके गुणों में भी इनकी अत्यन्त ही आसक्ति है। जबसे मैं ब्रज आया हूँ तबसे निरन्तर ये भगवान्के गुणोंको ही गाती हैं, ये कभी थकतीं नहीं श्रमित नहीं होतीं, जितना ही गुणगान करती हैं; उतना ही इन्हें अधिक रस आता है।

जिन स्थलोंमें श्यामसुन्दरने क्रीड़ायें की हैं उन स्थलोंमें इनकी इतनी अधिक आशक्ति हो गयी है, कि उन स्थलोंको छोड़कर ये कहीं जाना भी नहीं चाहतीं। निरन्तर यही सोचती रहती हैं, यहाँ श्यामने अमुक लीलाकी थी, यहाँ अमुक लीलाकी थी। ये भाव इनके दृढ़ हो गये हैं, इनकी दृष्टिमें श्यामसुन्दरके अतिरिक्त संसारमें कुछ भी नहीं है। जिन गोपियोंका ऐसा दृढ़ भाव है, उनको हम संसार में सर्वश्रेष्ठ मानकर प्रणाम करते हैं तो कौन सा पाप करते हैं ?

नारदजीने कहा—"हाँ, उद्धवजी ! आपका कथन सर्वथा सत्य है। अखिलात्मा श्रीहरिमें ऐसा दृढ़ भाव होना बड़े भाग्यकी बात है। भगवान्की ऐसी कृपा पृथिवीपर भाग्यशाली पुरुषोंको ही प्राप्त होती है।"

उद्धवजीने कहा—"नारदजी ! पृथिवीपर ही नहीं मैं तो कहता हूँ, जैसी कृपा इन गोपियोंने श्रीहरिकी प्राप्त की वैसी उन सुरसुन्दरियोंने भी प्राप्त नहीं की; जिनकी कान्तिकमलके सदृश है और जिनके शरीरसे सदा कमलकी-सी दिव्य गन्ध निकलती रहती है, उनकी बात छोड़ दीजिये जो लक्ष्मीजी भगवानकी अर्धाङ्गिनी हैं जो निरन्तर उनके वक्षःस्थलपर स्वच्छन्द विहार करती रहती हैं, जो पलभरको भी प्रभुसे पृथक् नहीं

उन्होंने भी यह प्रसाद प्राप्त नहीं किया। आप ही सोचें जो आत्माराम और पूर्ण काम हैं, ऐसे अखिलात्मा प्रभु रासोत्सवमें जिनके कंठोंमें भुजाओंको डालकर नृत्य करें, यह कोई साधारण कृपाका चिह्न है ? कोई भी इतनी कृपाका लाभ अपने पुरुषार्थसे कर सकता है ? कोई कोटि जन्म तक जप, तप साधन करे, तो भी इतनी कृपाका अधिकारी नहीं बन सकता। यह उन्हींकी कृपाके ऊपर निर्भर है।

नारदजीने कहा—"उद्धवजी ! भगवान्‌की कृपासे एक बार हम भी गोपी बने थे, तुम भी गोपी बन जाओ। तुम्हें भी यह सौभाग्य प्राप्त हो जायगा।"

उद्धवजीने अश्रु विमोचन करते हुए गद्गद कंठसे कहा—"ब्रह्मन् ! गोपी कोई अपने आप तो बन नहीं सकता। ऊपरसे गोपियोंका-सा वेष बना लेनेसे ही कोई गोपी नहीं हो सकता। जो भी मुकुट पहिन ले, छत्र चँवर धारणकर ले, वही राजा हो जाय, सो बात तो नहीं है। नाटक अभिनयमें कितने नट राजाका वेष बनाते हैं, अपनेको राजा दर्शाते हैं, किन्तु वे राजा तो नहीं हो जाते। इसी प्रकार केवल लहँगा फरिया ओढ़नेसे ही कोई गोपी नहीं बन सकता। जिसे वे वरण करलें, अपनी सखी कहकर स्वीकार करलें, वही गोपी भावको प्राप्त हो सकता है। गोपी होना तो बड़ी दूरकी बात है, वह तो अत्यन्त सौभाग्यका चिह्न है। मेरी तो इच्छा है, यदि मैं यहाँ वृन्दावनकी कुंजोंमें कोई कँटीली झाड़ी ही हो जाऊँ, करील, पीलू अथवा और कोई छोटा सा वृक्ष हो जाऊँ, घास ही हो जाऊँ तो अपनेको कृतकृत्य अनुभव करने लगूँ ? तब मैं धन्य हो जाऊँ कृतार्थ हो जाऊँ ?

नारदजीने कहा—"उद्धवजी ! मान लो आप व्रजमें लता, ओषधि या झाड़ी ही हो गये, तो उससे आपको भगवान् रासके आलिङ्गन तो प्राप्त होगा नहीं, फिर आप वृक्ष बनने-

की अभिलाषा क्यों करते हैं ? यदि वृक्ष बननेकी अभिलाषा ही है तो वट, पीपर, पाकर, आम तथा गूलर आदि बड़े बड़े वृक्ष बननेकी अभिलाषा क्यों नहीं करते, जिससे प्रियतम कभी उन्हींकी छाँहमें आकर बैठें औरोंको भी सुख हो ?"

आह भरकर उद्धवजीने कहा—"हम उन तरुवरके आलि. इनके अधिकारी ही कहाँ हैं, हमारे द्वारा दूसरोंका उपकार ही क्या हो सकता है। बड़े वृक्ष बनकर गोपियों तथा गोविन्दको अपनी छायामें बिठा सकें इतने पुण्य हमारे कहाँ। हम तो छोटी-छोटी कँटीली झाड़ी, छोटे छोटे वृक्ष तथा घास आदि ही बन जाते, जिन पर आते जाते, इन महाभागा गोपियोंके चरणोंकी धूरि उड़ उड़कर पड़ जाती, तो इसीमें हम कृतार्थ हो जाते। बड़े वृक्षोंपर चरण धूलि कठिनतासे पहुँचेगी। हमें तो इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणरज मिल जाय, तो इतनेसे ही कृतार्थ हो जायँ। नारदजी ! आप ही सोचें इन व्रजाङ्गनाओंने कैसा महान् त्याग किया है। पति, सुत, बन्धु, बान्धव तथा अन्य सम्बन्धियोंको त्याग देना अत्यन्त ही कठिन है। इससे भी कठिन लोकलाज तथा कुलधर्म-को छोड़ देना है। इन सबको त्यागकर इन्होंने श्यामसुन्दरके चरणकमलोंका अनुसरण किया, सब ओरसे अपनी चित्तकी वृत्तिको हटाकर एकमात्र नंदनंदनमें ही अपना मन लगाया ऐसी व्रजाङ्गनाओंकी जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। जिनकी कृपादृष्टिके लिये बड़े बड़े लोकपाल तरसते हैं, वे ही श्रीकृष्ण अनुरागभरी दृष्टिसे उत्सुकतापूर्वक जिनकी ओर निरन्तर निहारते रहते हैं उन गोपिकाओंका हम क्या करके सत्कार कर सकते हैं। भगवान्के अरुण-चरण कितने मृदुल तथा सुखद हैं। योगिगण समाधिमें जिन चरणोंका [illegible] करते रहते हैं, ब्रह्मादि देव जिन चरणोंमें अपने [illegible] से युक्त मस्तकको रगड़ते रहते हैं, जिन चरणोंकी

वनी कमला श्रद्धा भक्ति सहित करती रहती हैं, उन्हीं चरणोंको ये गोपिकायें निश्शंक होकर अपनी गोदीमें लिये रहती थीं, उन्हें अपने वक्षःस्थलपर धारण करके विरह व्यथाको शान्त करती थीं। रासविलासके अनंतर उन्हीं मृदुल चरणोंको अपने कोमल करकमलोंसे दबाती थीं, ऐसी इन गोपिकाओंसे बढ़कर भाग्यशाली और कौन हो सकता है। इनकी यदि मैं चरणवन्दना करता हूँ, तो इनका सत्कार नहीं करता अपने मस्तकको सार्थक बनाता हूँ। देवर्षे ! जो मिथ्याभिमानवश भगवदाश्रित अनन्य भागवतोंका आदर नहीं करते, उनके प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित नहीं करते उन लोगोंका जीवन वृथा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इतना सुनकर नारदजीका हृदय भर आया वे भी उद्धवजीके स्वरमें स्वर मिलाकर कहने लगे—"मैं इन नन्दगाँवकी गोपाङ्गनाओंकी चरणरजको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ जिनका हरिकथामय ललित गान त्रिभुवनको पावन करता है जिनकी अमल विमल कीर्ति चतुर्दिक व्याप्त है जो भू-लोकमें प्रेमका पाठ पढ़ानेके लिये ही प्रकट हुई हैं।" इस प्रकार उद्धवजीके सहित नारदजीने गोपाङ्गनाओंकी चरणवन्दना की फिर वे उद्धजी और व्रजाङ्गनाओंसे अनुमति लेकर इच्छानुसार अन्य लोकोंमें चले गये। इधर रात्रि देखकर गोपाङ्गनायें अपने-अपने घरोंको चली गयीं। इस प्रकार उद्धवजी अब गोपिकाओंमें गुरुभाव मानने लगे। उन्हें नन्दगाँवमें रहते रहते बहुत दिन हो गये थे, उनकी इच्छा तो नहीं थी कि व्रज छोड़कर जायँ, किन्तु मथुरामें जाकर भगवान्‌को भी गोपियोंका सम्वाद देना था, अतः मथुरा जानेकी सोचने लगे।

छप्पय

मोइ मिलै ब्रजवास बनूँ चाहें तृन पाथर।
ब्रजबनितनि पदधूरि परै उड़ि उड़ि मम ऊपर॥
जिनि चरननि अज शंभु योगिजन नितप्रति ध्यावें।
तिनिकूँ ये हिय धारि नारि तनु ताप मिटावें॥
जिनिको जगमहँ भरयो यश, तिनिकी का इस्तुति करूँ।
केवल उनकी चरन रज, महँ पुनि-पुनि निज सिर धरूँ॥

उद्धवजीकी विदाई

[१०७२]

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ६४ श्लो०)

छप्पय

यौं उद्धव कछु दिवस रहे ब्रज अति सुख पायौ।
'कहूँ सन्देशो जाइ श्यामतैं सबनि सुनायौ॥
सुनि उद्धवको गमन नयन सबके भरि आये।
ऊधो हू चलि दये लौटि वे ई दिन आये॥
कहि न सकैं कछु मलिनमुख, फटत हियो हाहा करहिँ।
सिर धुनि धुनि रोवत फिरहिं, भेंट लाइ रथमहँ धरहिँ॥

जिनके साथ एकान्तमें रहस्यमयी बातें हुई हैं, जिन्होंने प्रियका सन्देश सुनाया है, हमें धैर्य बँधाया है हमारा दुख सुख सुना है, अपना दुख सुख सुनाया है, जो हममें घुलमिल गये हैं, जिनके सत्संगसे नित्य प्रति प्रियस्मृति होती है, वे यदि हमसे पृथक् हो जायँ, तो ऐसा लगता है, मानों कोई प्राणोंको देहसे पृथक्

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! उद्धवजी गोपियोंसे, नन्दजी यशोदा तथा अन्यान्य गोपोंसे आज्ञा लेकर मथुरा जानेके लिए रथपर आकर बैठ गये।

कर रहा हो। यह जीव एकके अभावमें एकको पाकर कुछ कुछ धैर्य धारण करता है, जब उस दूसरेका भी वियोग होता है तो और भी अधिक अधीर होता है। संसारमें संयोग, वियोगके ही लिये होता है। जो मिला है वह अवश्य एक दिन बिछुड़ेगा। मिलना और बिछुड़ना यही प्रकृतिका नियम है। यही विधिका विधान है। इसे कौन टाल सकता है?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्धवजी को व्रजमें रहते रहते बहुत दिन हो गये। वे व्रजवासियोंमें ऐसे घुलमिल गये थे, कि सभी उन्हें आत्मीय अनुभव करते थे। व्रजकी दशा देखकर उद्धवजीका हृदय द्रवित हो गया, गोपियोंके अलौकिक प्रेमके आगे उन्होंने सिर झुका दिया। वे उनके भक्त प्रशंसक तथा अनुगत बन गये। गोपियोंके लिये उनके हृदयमें अत्यधिक आदर भाव बढ़ गया। व्रजमें निवास करनेकी उनकी इच्छा प्रबल हो गई।

व्रजमें रहते रहते उनकी तृप्ति ही नहीं होती थी, किन्तु वे अपने स्वामी श्यामसुन्दरकी इस आज्ञाको नहीं भूले थे, कि "तुम गोपियोंको सन्देश देकर उन्हें धैर्य बँधाकर तुरन्त मथुरा लौट आना।" अतः अब उन्होंने मथुरा जाने का विचार किया।

एक दिन जब सायंकालीन गोष्ठी समाप्त हुई तब उद्धवजीने अत्यंत विनीत भावसे कहा—"देवियो! मुझे यहाँ रहते हुए बहुत दिन हो गये, भगवान् मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, तुम्हारी ही भाँति वहाँके सन्देश सुननेको वे भी सब समय समुत्सुक बने रहते होंगे। अतः मुझे आप सब मथुरा जाने की अनुमति दें। वैसे मेरी इच्छा तो व्रज त्यागकर कहीं जानेकी होती नहीं, किन्तु कर्तव्यपालनके निमित्त इच्छाके विरुद्ध भी कार्य करना पड़ता है।"

गोपियोंने आह भरकर कहा—"ये पुरुष सभी निर्मोही होते

हैं क्या, पहिले तो प्रेम प्रदर्शित करके चित्तको अपनी ओर खींच लेते हैं, फिर उदासीन हो जाते हैं। बड़े लोगोंने सत्य ही कहा है, कि परदेशीसे प्रेम करना और फूँससे तापना इसमें सुखकी अपेक्षा दुःख अधिक होता है। फूँसको जलाकर जाड़ोंमें तापो तो प्रथम तो बड़ा सुख होगा, जाड़ा भाग जायगा। किन्तु फूँसकी अग्नि स्थाई तो होती नहीं, उसके कोयले होते नहीं। एक बार जलकर बुझ जाता है, फिर क्लेश ही क्लेश हाथमें रह जाता है। इसी प्रकार परदेशीकी प्रीति प्रथम तो बड़ी अच्छी लगती है, किन्तु जब वह बटाऊकी भाँति नेहके नातेको तोड़कर चला जाता है, तो जीवनभर रोना ही रोना शेष रह जाता है। देखो, श्यामसुन्दरसे प्रीति करके हम कितना क्लेश सह रही हैं। आपके आनेसे कुछ कुछ संतोष हुआ था। आशा थी इसी प्रकार साथ बैठ बैठकर युग युगान्तरों तक ऐसे ही परस्परमें प्रियकी कथा कहते हुए काल यापन करेंगी। सो तुम भी जानेको कह रहे हो। हाय! उद्धव, श्यामसुन्दरने तुम्हें निर्मोहीपनेका ही पाठ पढ़ाया है क्या? तुम्हारे साथ ये दिन कितने सुखपूर्वक कटे। अब अपना सुख दुख किन्हें हम सुनावेंगी। किसके सामने अपने मनोगत भावोंको व्यक्त करेंगी। कौन हमें धैर्य बँधावेगा? कौन हमें प्यारकी बातें बतावेगा। उद्धव! तुम्हारे हृदयमें हमारे प्रति कुछ भी अपनापन हो तो तुम मत जाओ। जाना ही हो, तो हम सबको यमुनाजी में डुबाकर तब जाओ।

उद्धवजीने अश्रुविमोचन करते हुए कहा—"देवियो! आप सब ऐसा आशीर्वाद दो, कि मुझे किसी प्रकार व्रजवास प्राप्त हो। मैं स्वेच्छासे इस 'पुण्यभूमिको त्यागकर अन्यत्र कहीं भी जाना नहीं चाहता, किन्तु मैं स्ववश नहीं परवश हूँ। मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं। मैंने अपनी इच्छा मदनमोहनकी इच्छामें मिला दी है। मैं तो उन यन्त्री रूप यदुनन्दनका यन्त्र हूँ,

वे मुझे जैसे घुमावेंगे, वैसे विवश होकर घूमना पड़ेगा। मैं अपने मनसे नहीं जा रहा हूँ।[मुझे श्यामसुन्दरकी ऐसी ही आज्ञा थी।"

आह भरकर गोपियों ने कहा—"जाओ भैया! हमारे भी राम हैं। तुम्हारा भी इसमें क्या दोष, सब अपने भाग्यका ही दोष है। जिसे अपना समझा था, जिसके ऊपर सर्वस्व निछावर कर दिया था, जब वही अपना नहीं हुआ। वही छोड़कर चला गया, तो तुमसे किस मुखसे कहें। हम जानती हैं तुम रोकनेसे भी न रुकोगे। मथुरा अवश्य जाओगे। अच्छा, जाओ किन्तु देखना; हमें भूल मत जाना। कभी कभी हमें स्मरण कर लिया करना, कि व्रजमें कुछ गँवारिनि ग्वालिनियाँ भी रहती हैं। सज्जनोंकी मैत्री सप्तपदी कही गयी है। जिसके साथ सज्जन लोग सात पग चलते हैं उसे मित्र मानते हैं, सो आप तो महीनों हमारे साथ रहे हो।"

उद्धवजी रोते रोते बोले—"श्यामसुन्दरसे जाकर क्या कह दूँ?"

छटपटाते हुए गद्गद वाणीसे अधीर होकर गोपिकाओंने कहा—"क्या कहोगे उद्धव! उनसे यही कह देना कि वे सुखसे रहें, राज्य करें। हमें भूल जायँ। प्रयत्न तो हम भी वैसा ही कर रही हैं, किन्तु हमारे लिये यह असम्भव है।"

उद्धवजीने कहा—"कोई चिट्ठी पत्री देनी हो; तो वह भी दे दो।"

गोपिकाओंने कहा—"हम पढ़ीं नहीं, लिखीं नहीं, हमपर कागद नहीं, स्याही नहीं, लेखनी नहीं आवरण नहीं, पत्र लिखनेके कुछ भी साधन नहीं। पत्र क्या लिखें। हम तुम्हें एक वस्तु देती हैं, जिनमें अनन्त स्मृतियाँ अंकित हैं श्यामसुन्दर उन्हें युगों तक पढ़ते रहें तो भी पूरा न पढ़ सकेंगे।" यह

कहकर उन गोपिकाओंने श्रीजीकी वह छपी हुई रंग विरंगी चूनरी उद्धवजीको दी जिसमें अश्रु पोंछनेसे स्थान स्थानपर काजल लगा था, जो वक्षःस्थलकी केशरकी सुवाससे सुवासित थी। जिसमें अनेक बार प्यारेके पीताम्बर से गोपियोंने गाँठ बाँधी थीं, जो रास के अनन्तर प्यारेके बैठनेके लिये बिछाई गई थी। जिसके छोरकी वायुसे वनमाली व्याकुल हो जाते थे, जिसे सूँघकर वे अपनेको कृतकृत्य समझते। उस सुन्दर सुगन्धित चूनरीको एक अन्यवस्त्रमें लपेटकर उद्धवजीको दिया।" उद्धवजीने बड़े गौरवसे उसे सिर-पर चढ़ाया और अपनी गोदीमें रख लिया। फिर उद्धवजी बोले—"तो मुझे आज्ञा है न ?"

गोपियोंने कहा—"कैसे कहें उद्धव ! अब हमींसे कहलाना चाहते हो ? क्या यह गोष्ठी अन्तिम है ?"

उद्धवजीने कहा—"अंतिम कैसे है ? आप सब आशीर्वाद देंगी तो मुझे व्रजवास प्राप्त हो सकेगा, फिर तो निरन्तर आपका सत्संग प्राप्त हो ही सकेगा।"

गोपियोंने कहा—"भगवान् करें आपको निरन्तर व्रजवास प्राप्त हो।"

यह सुनकर उद्धवजीने भूमिमें लोटकर सब गोपाङ्गनाओंको प्रणाम किया, उनकी चरणधूलि सिरपर चढ़ाकर कुछ अपने दुपट्टेके छोरमें बाँधकर प्यारीजीकी प्रसादी चूनरीकी पुटलीको सिरपर रखकर व्रजमें आगये। गोपिकायें भी अपने घरोंमें चली गयीं। आज वे रात्रिभर उद्धवजीके ही सम्बन्धकी बातें करती रहीं—"उद्धव इस प्रकार जाकर श्यामसुन्दरसे हमारा सन्देश कहेंगे, श्यामसुन्दर हमारे सम्बन्धमें उनसे यह पूछेंगे। हमारी चर्चा करेंगे।" इसी सम्बन्धकी बातें करते करते प्रातःकाल हुआ व्रजभरमें हल्ला मच गया। उद्धवजी कल चले जायँगे अतः सभी

दुखी हो गये। आज प्रातःकालसे ही व्रजवासी आ आकर नन्द पौरिपर एकत्रित हो गये।

उद्धवजीका सुवर्ण मंडित रथ निकालकर मार्गपर खड़ा किया गया। सेवकोंने उसमें घोड़े जोते। उद्धवजी अन्यमनस्क भावसे जाकर रथपर बैठ गये। नन्दजी तथा यशोदा मैयाके नेत्रोंसे नीर बह रहा था और भी सब ग्वालबाल रो रहे थे, गोपिकाओंकी दशा बुरी थी, उनका धैर्य छूट गया था. उद्धवजी इस अत्यन्त करुणापूर्ण दृश्यको अधिक न देख सके, उन्होंने भर्राई हुई वाणी-से कहा—"मुझे अब जानेकी अनुमति मिलनी चाहिये। अब मैं इस दृश्यको देखनेमें असमर्थ हूँ।" यह कहकर उन्होंने रथको हाँक दिया। घोड़ा रथको लेकर दौड़ने लगे। जिस दिन श्रीकृष्ण मथुरा गये थे. वैसा ही दृश्य उस समय उपस्थित हो गया।

उद्धवजीका रथ कुछ दूर ही चला होगा, अभी वे गाँवसे बाहर भी नहीं हुए थे, कि उसी समय पीछेसे हाथ उठाकर नन्द-जी तथा अन्यान्य गोपोंने कहा—"उद्धवजी! उद्धवजी! तनिक रथको खड़ा करो। हमसब तो ऐसे भूल गये, कि रामश्यामके लिये कुछ उपहार भी न दे सकें कुछ सन्देश भी न कह सकें। हमारे इन तुच्छ उपहारों को लेते जाओ और साथ ही कुछ सन्देश भी।"

उपहार और सन्देशकी बात सुनकर उद्धवजीने रथको खड़ा-कर दिया। दौड़कर गोप और गोपियोंने पुनः रथको चारों ओरसे घेर लिया। नन्दजीने बड़े-बड़े मटकोंमें मक्खन, दही, घृत तथा अन्यान्य पदार्थ लाकर रथमें रखवाये, बहुमूल्य वस्त्राभूषण रखकर उन्होंने बताया यह हमारी ओरसे महाराज उग्रसेनको देना, यह वसुदेवजीको देना, यह उनके भाइयोंको देना। यह राम श्यामको देना।"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, उपहार तो आ गये, मैं सबको दूँगा

किन्तु आप जो सन्देश देना चाहते थे, वह संदेश तो दीजिये।"
आज समस्त गोप विकल हो रहे थे, अधीरतामें वात्सल्य रस वह गया, उनके मनमें दास्य रसका प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि व्रजमें सख्य, वात्सल्य और मधुर इन तीन रसोंकी ही प्रधानता है, किन्तु आज न जाने दास्य यहाँ कहाँसे आगया। दास्य सभी रसोंमें इसी प्रकार व्याप्त रहता है, जिस प्रकार सभी वस्तुओंमें आकाश व्याप्त रहता है, जैसे आकाशके विना कोई वस्तु नहीं वैसे ही दास्यके बिना कोई रस नहीं। वात्सल्यमें भी दास्य रहता है। मधुर तो दास्यके विना टिकता ही नहीं। अन्य सब रसोंमें दास्य छिपकर रहता है, शोकमें अत्यन्त हर्ष और संभ्रममें दास्य प्रस्फुटित हो जाता है। आज नन्दादिक गोप अपनेको न सम्हाल सके उनका दास्य भाव वात्सल्यको दबाकर उमड़ ही तो पड़ा। वे रोते रोते बोले—"उद्धव! अब क्या सन्देश कहें, यही कह देना कि हे बालकृष्ण! हमारे मनकी समस्त वृत्तियाँ निरन्तर आपके ही चरणारविन्दोंमें लगी रहें। हमारी वाणी सदा आपके ही नामोंका संकीर्तन करती रहे, और हमारा शरीर आपको ही प्रणामादिक करनेमें लगा रहे। प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार संसार चक्रमें घूमते हुए हमारा आपकी इच्छासे जहाँ जहाँ भी जन्म हो हमारे दान पुण्यादि कुछ भी सुकृत हों, तो उनके परिणाम-स्वरूप हमें उन-उन योनियोंमें आपकी अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो।" यही संदेह हमारा तुम उनसे कह देना।"

सूतजी कहते हैं—"सन्देश सुनकर उद्धवजीके नयन बहने लगे, वे वहाँ और अधिक खड़े न रह सके। उन्होंने घोड़ोंको हाँक दिया घोड़े वायुसे बातें करने लगे और व्रजवासी वहाँ खड़े खड़े रोते रहे। जब तक उन्हें उद्धवजीका रथ दिखाई देता रहा तबतक वे खड़े-खड़े देखते रहे, फिर कुछ कालमें रथ न दीखकर उड़ती हुई धूल ही दीखती रही, कुछ कालमें धूल भी दुरित

होकर बैठ गयी। उसमें भी जब उड़नेकी शक्ति न रही, तो ब्रज-वासी भी निराश होकर लौट आये। उधर उद्धवजी गोपों के प्रेम और सम्मान की बातें याद करते हुए भगवान् वासुदेवपालित श्री-मथुरापुरीके निकट आ गये। अब वे जैसे भगवानसे मिलकर ब्रजवासिओंका संदेश सुनायेंगे उपहारादि देंगे। उसकी कथा मैं आगे कहकर इस उद्धव प्रसङ्गको समाप्त करूँगा।

छप्पय

रामश्यामकूँ सबनि मँदेशो निज निज दीन्हों।
ऊधो रथपै चढ़े सबनिको आदर कीन्हों॥
ब्रजवासी मिलि कहें—हमें अब जिह ही भावै।
कृष्णचरन मन रमें नाम रसना नित गावै॥
तन हरि सेवामहँ निरत, सत्संगतिमहँ होइ मति।
जहँ जहँ जनमें करमवश, होहि तहाँ हरि चरन रति॥

उद्धवजी द्वारा व्रजवासियोंका श्यामको संदेश

(१०७३)

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥
कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ।
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४७ अ० ६८ ६९ श्लो०)

छप्पय

सबको सुनि संदेश चलायो ऊधो रथ तब ।
व्याकुल ह्वैके गिरे नारिनर भये विकल सब ॥
उद्धव रथकूँ लिये फेरि मथुरामहँ आये ।
व्रजवासिनिके वृत्त श्यामकूँ सकल सुनाये ॥
कुंकुम कज्जलतैं सनी, प्यारीकी चूनरि दई ।
लखि रोये राधारमन, हिय लगाइ सिर धरि लई ॥

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार गोपोंके द्वारा कृष्ण भक्तिसे सम्मानित होकर उद्धवजी श्रीकृष्णपालिता मथुरापुरीमें लौट आये । वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके व्रजवासियों की भक्तिके बाहुल्यका वर्णन किया और नन्दजीने जो जो उपहारकी सामग्रियाँ दी थीं वे वसुदेवजीको बलरामजीको तथा उग्रसेनजीको

अतीतकी स्मृतियोंमें ही अनंत भाव भरे रहते हैं। उन्हींको याद कर करके प्राणी सुखी होता है, दुखी होता है प्रेमकी स्मृतियों का दुख भी सुखसे बढ़कर है। कहना चाहिये कि 'प्रियमिलनकी घटनाओंका स्मरण करके दुखी होना' यही सबसे बड़ा संसारमें सुख है। देहका मिलन तो अति निकृष्ट मिलन है। यथार्थ मिलन तो मनसे। शरीरके वियोगमें मनसे मिले रहनेपर एक अनिर्वचनीय सुख होता है, वह मिलन ऐसा है. उसमें विछोह नहीं, अपना प्रिय रोम रोममें रमा रहता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्धवजी मथुरा में लौट आये। आकर उन्होंने महाराज उग्रसेनको, वसुदेवजीको अपने पिता तथा चाचाओंको और बलदेवजीको व्रजके कुशल-समाचार सुनाये। व्रजराजके भेजे उपहार उन्हें दिये। सभीने नंदजीकी तथा समस्त व्रजवासियोंकी कुशल पूछी। उद्धवजीने सब बातें बताईं।

उद्धवजीको आया देखकर भगवानकी उत्सुकता अत्यन्त बढ़ गई, वे उद्धवजीको एकान्तमें ले गये और उनका आदर करके पूछने लगे—"उद्धवजी कहो व्रज हो आये? वहाँके समाचार सुनाइये। सब व्रजवासी भली प्रकारसे तो हैं।"

उद्धवजीने कहा—"क्या कुशल बतावें महाराज! आपने तो उन सबके साथ बड़ा अन्याय किया है।"

आश्चर्यकी मुद्रा प्रकट करते हुये भगवान् बोले—"क्यों क्या हुआ उद्धवजी! आपका तो स्वर ही बदल गया। आपतो गोपियों को शिक्षा देने गये थे, उलटे मुझे ही दोष लगाने लगे?"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, महाराज! गया तो था मैं शिक्षा देने, किन्तु उलटे उन्होंने मुझे शिक्षा दे दी। मेरा पाठ पढ़नेके स्थानमें उन्होने ही मुझे पाठ पढ़ा दिया। मेरी चेली न बनकर उन्होंने ही मुझे चेला मूड़ लिया?"

भगवानने कहा—"तुमने वहाँ ज्ञानकी चर्चा नहीं की?"

उद्धवजी बोले—"जहाँ कोई ग्राहक हो वहाँ वस्तु दिखाई भी जाती है। प्रेमके आगे वहाँ तो ज्ञानको कोई टकासेर भी न पूछता। वे सब तो समझी समझाई हैं, मेरा ही अज्ञान था, सो वहाँ जाकर दूर हो गया। वास्तवमें वे भूली नहीं हैं, भूला तो मैं ही था। आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की जो मुझे ब्रज भेजकर प्रेम का अनिर्वचनीय दृश्य दिखाया।"

भगवान् बोले—"कुछ तो बताओ! तुम गये तो प्रथम कौन मिला? कोई हमारा स्मरण करता था या सब हमें भूल गये?"

उद्धवजी बोले—"महाराज! ब्रजवासी और सब कुछ भूल गये हैं, निरन्तर आपहीका तो स्मरण करते रहते हैं। मैं कुछ रात्रि बीतते बीतते चुपके चुपके चोरकी भाँति ब्रजमें पहुँचा था। मैंने देखा घर घर आपकी ही चर्चा हो रही है, आपके ही गीत गाये जा रहे हैं, आपके ही नाम गुणोंका कीर्तन हो रहा है। मैं रथसे उतरा ही था कि बाबा मिल गये। वे बड़े आदरसे मुझे घरमें ले गये। मैया यशोदा और बाबा रातभर मेरे पास बैठे रहे। पल-भरको उनके पलकसे पलक नहीं जुटे। पूरी रात उन्होंने रोते-रोते आपकी चर्चा करते करते ही बिताई। प्रातःकाल समस्त ब्रजमें मेरे आनेका हल्ला मच गया। मैंने देखा, सबकी रोते-रोते आँखें बैठ गई हैं, शरीर पीले पड़ गये हैं सब दुबले पतले हो गये हैं। गोपिकाओंकी दशा बड़ी ही दयनीय है। उनकी दशा कहनेसे हृदय विदीर्ण होता है। वे सब मुझे एकान्तमें ले गईं। निरन्तर मेरे सम्मुख बैठी हुई नयनोंसे नीर बहाती रहीं। उन सबमें एक अत्यन्त सुन्दरी थीं, सभी उनका बड़ा मान करतीं थीं, उनकी दशा तो अवर्णनीय थी। वे निरन्तर ऊर्ध्व स्वाँस सी ले रही थीं। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था चूड़ियाँ कंधे तक ,, जातीं। वस्त्रोंका भी भार वे नहीं सह सकती थीं। वे कुछ

कहने खड़ी हुई किन्तु उनपर खड़ा नहीं हुआ गया, लड़खड़ाकर गिर गई।"

भगवान्ने कहा—'तुमने मेरी पाती उन्हें सुनाई थी ? उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।"

उद्धवजीने कहा—"हाँ, महाराज ! आपकी पाती मैंने उन्हें सुनाई। उन सबने उसे धैर्यपूर्वक सुना। इस बातसे तो उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता हुई, कि प्रियतमने हमको प्रेमपाती पठाई है, किन्तु उसमें लिखा क्या है, उसकी ओर किसीने भी ध्यान नहीं दिया। वे अपना ही दुखड़ा रोती रहीं। अपने ही विरहके गीत गाती रहीं।"

भगवान्ने पूछा—"तो तुम उन्हें समझाते ? उपदेश देते ?"

उद्धवजीने कहा—"उनके भावावेषको देखकर तो भगवन् ! मेरी बोलती बन्द होगई, मैंने तो उनमें गुरुबुद्धि कर ली। उनकी सी दशा तो मैंने आजतक किसी की देखी ही नहीं, उनका समस्त शरीरका रक्त पानी बन बनकर नेत्रों द्वारा निकल रहा है। जहाँ वे बैठती—वहाँकी भूमि गीली हो जाती है, उनके वस्त्र भीग जाते हैं। ऐसा लगता है, मानो व्रजमें वर्षाने आकर वास कर लिया है। वे निरन्तर मथुराकी ओर देखती रहती हैं। कौएको देखते ही उसे उड़ाती है। नित्यकी सगुनौटी डालती हैं, जो भी पथिक मथुराकी ओरसे आता जाता है, उससे आपकी कुशलता पूछती हैं, यदि मथुरा जा रहा हो तो उसके हाथ संदेश पठाती है। उन्होंने समस्त शरीरके सुख त्याग दिये हैं। केश जूरा बन गये हैं। तैल फुलेल लगाना, सबने छोड़ दिया है। सबके वस्त्र मलीन हो गये हैं। भोजन पान उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता है। गौओंकी दशा सबसे बुरी है, वे तृण नहीं चरतीं यमुनाके नीले जलको देखते ही मूर्छित हो जाती हैं, मोरको नाचते देखकर वे पूँछें उठा उठाकर बाँ बाँ चिल्लाती हुई दौड़तीं हैं। कोई भी

गोप वंशी बजा दे तो सबके कान खड़े हो जाते हैं। क्या कहूँ महाराज ! कुछ कहते बनता ही नहीं।"

भगवान्ने कहा—"उद्धवजी जब उन सबकी ऐसी बुरी दशा है, तो आप इतने दिनोंतक रहकर वहाँ करते क्या रहे ? कुछ उनका उपचार करते, चिकित्सा कराते ?"

उद्धवजी आह भरकर बोले—"महाराज ! उनका रोग असाध्य है। बाहरी चिकित्सासे वह शान्त होने वाला नहीं। उसकी एकमात्र औषधि है, आपके दर्शन। आप दश दिन के लिए व्रज चले चलें तो सब ठीक ठाक हो जाय।"

भगवान् सूखी हँसी हँसकर बोले—"अब उद्धवजी ! आप भी उन्हीं सबका पक्ष लेने लगे। मैंने भेजा इसलिये था कि आप उन्हें ज्ञानका उपदेश देकर अपना सा बना लोगे। किन्तु आप तो स्वयं ही उनकेसे बन गये।"

उद्धवजी बोले—"महाराज ! बहुमत अल्पमतको अपनेमें मिला लेता है। मैं ठहरा अकेला, वे ठहरीं सहस्रों। उन सबने अपनी शक्तिसे मुझे अपनी ओर खींच लिया। अब मेरी प्रार्थना यही है, कि निष्ठुरता छोड़ो और व्रज चलकर उनके तनमनकी तपन बुझाओ। उन्हें सनाथ बनाओ।"

यह सुनकर श्यामसुन्दर रो पड़े। वे अपने हृद्गत भावोंको और अधिक न छिपा सके। उन्होंने कहा—"ऊधोजी ! सच्ची बात यह है, मुझे व्रजके वे सुवर्ण दिवस भूलते नहीं। जितना लाड़ प्यार मैंने व्रजमें पाया है, उतना अन्यत्र कहीं कहाँ मिल सकता है ? माताका वह प्यार। बाबाका वह अपनापन। गोपोंकी वह मैत्री, गोपिकाओंका वह अनन्य अनुराग, ये सभी अनुपम वस्तुएँ थीं, संसार में उनकी समानता कहीं भी हो नहीं सकती। किस प्रकार उठते ही मैया हमें माखन मिश्री खिलाती थी। कैसे हम कलेऊ बाँधकर गौओंको लेकर ग्वालबालोंके साथ

बन जाते थे, कैसे कैसे खेल हम सब खेलते थे। गोपियोंके साथ कुंजकुटीरोंमें कैसी कैसी रहस्यमय क्रीड़ायें होती थीं उन सबको स्मरणकर करके मेरे रोमाञ्च होते हैं। गोपिकाओंने मेरे पीछे सर्वस्व त्याग दिया था, उनकी एकमात्र गति मैं ही था। मेरे बिना वे किसी अन्यको जानती ही नहीं थीं। भाग्यकी विडम्बना है, कि उन सबको मुझे छोड़ना पड़ा।"

उद्धवजीने कहा—"महाराज! आप तो सर्वसमर्थ है, उनसे पृथक क्यों रहते हैं, चलकर उन्हें दर्शन दें, या उन्हे यहीं बुला लें। आप यहाँ अधीर हो रहे हैं, वे सब वहाँ तड़प रही हैं यह सब अच्छी बात थोड़े ही है। इतने दिन हो गये आप गये ही नहीं यह निष्ठुरता नहीं तो और क्या है?"

भगवान ने कहा—"उद्धव! तुम तो इतने दिनोंकी बात कह रहे हो, मैं तो उनसे पलभर भी पृथक् नहीं रह सकता। देखो, मेरे रोमरोममें गोपिकायें रमी हुई हैं।" यह कहकर भगवान्ने उद्धवजीको अपना व्रजका दिव्य सरस रूप दिखाया। नंद, यशोदा, ग्वाल-बाल तथा असंख्यों गोपियाँ उनके श्रीअङ्गमें निवास कर रही हैं और वे ही सब लीलायें निरन्तर हो रही हैं। भगवानके ऐसे दिव्य रूपको देखकर उद्धवजी उनके पैरोंमे पड़ गये और बार बार अधीर होकर वे व्रजवासकी याचना करने लगे। भगवान्ने 'तथास्तु' कहकर अपना वह सरस स्वरूप छिपा लिया। उद्धवजीको उठाकर हृदयसे लगाया। अब उद्धवजीकी शंका दूर हो गई। वे समझ गये व्रजवासी और व्रजवल्लभ दो नहीं, बिम्ब प्रतिबिम्बकी भाँति एक ही होकर सरस क्रीड़ायें कर रहे हैं।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी! उद्धवजीने बार-बार व्रजके वासकी याचना की, वे व्रजमें लता बनकर रहनेके बड़े उत्सुक थे। गोपियोंने भी उन्हें वर दिया और भगवान्ने भी

'तथास्तु' कहकर उनकी अभिलाषाका समर्थन किया। फिर उन्हें व्रजवास प्राप्त हुआ या नहीं ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! होता क्यों नहीं। भगवानके भक्त जो भी कामना करते हैं वही उन्हें प्राप्त होती है, फिर उद्धवजी तो अनन्य ठहरे उनकी इच्छा पूर्ण क्यों न होगी। गोवर्धन और राधाकुंडके बीचमें एक कुसुमसरोवर स्थान है उसे सखीस्थल या रसवृन्दावन भी कहते हैं। वहीं पर उद्धवजी गोपियोंकी चरणरजकी अभिलाषासे लता रूपमें अबतक विराजते हैं और किसी भाग्यशालीको उनके अब भी दर्शन होते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप पीछे तो कह आये हैं, कि उद्धवजी भगवान्की आज्ञासे उनकी चरणपादुका लेकर तप करने बदरी वन चले गये और अद्यावधि वहाँ तप कर रहे हैं। अब आप कहते हैं, कि वे लता बने गोवर्धनके समीप कुसुम सरोवरपर निवास करते हैं। इन दो विपरीत बातोंकी संगति कैसे बैठेगी ?"

सूतजीने कहा—"देखिये, महाराज! बदरिकाश्रम साधन-भूमि है। और यह वृन्दावन फलभूमि है। लोकसंग्रहकी दृष्टिसे साधन करनेके निमित्त एक रूपसे तो उद्धवजी बदरिकाश्रममें रहते हैं। उद्धवका अर्थ है भगवान्का 'आत्मोत्सवस्वरूप' मंदिरोंमें—दिव्य देशोंमें भगवान्के दो विग्रह होते हैं। एक तो अचल विग्रह, एक उत्सव विग्रह। उत्सवोंमें अचल मूर्ति मंदिरमें ही विराजती है, उनकी उत्सव मूर्ति रथ आदि पर चढ़ाकर बाहर निकाली जाती है। उन्हीं उत्सव मूर्तिका नाम उत्सवमूर्ति उद्धव भगवान्के उत्सव स्वरूप ही हैं। भगवान् बदरीनाथने अपनी माता मूर्ति देवीको वर दिया था, कि वर्षमें एक दिन हम आपके दर्शनोंको आया करेंगे। इसीलिये अब भी भाद्रपदमें वामन-

द्वादशीके दिन भगवान्‌की सवारी मातामूर्ति तक जाती है, उसमें श्रीबदरीनाथजीका विग्रह न जाकर उद्धवजी ही जाते हैं। इस प्रकार भगवान्‌के उत्सवस्वरूप होकर एक रूपसे तो वे बदरी-वनमें विराजते हैं। दूसरे रूपसे वे गोपियोंकी चरणरजकी कामनासे लता बनकर कुसुमसरोवर पर रहते हैं। जो कोई वहाँ भागवत सप्ताह करे, बड़ा भारी सात्विक महोत्सव करे तो उस लतासे उद्धवजी प्रकट भी हो जाते हैं। महाराज परीक्षित् ने और महाराज वज्रने पहिले उत्सव करके उद्धवजीको प्रकट भी किया था और उद्धवजीने वज्रजीको कथा भी सुनाई थी।"

शौनकजीने कहा—"हाँ, सूतजी ! हमारा संदेह दूर हो गया। आपने यह उद्धवजीकी कथा तो बड़ी सरस सुनाई, इसे सुनते सुनते तो मन भरता ही नहीं। आपने तो इसे ऐसे सरस स्थानपर समाप्त किया कि अब नीरस प्रश्न करनेको चित्त ही नहीं चाहता। अच्छा उस कथाको तो आप छोड़ ही गये, भगवान्‌ने कुब्जाको काम वर दिया था, उसे उसके घरपर आनेका वरदान दिया था। फिर भगवान् उसके घर गये या नहीं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! एक समयमें एक ही कथा कही जा सकती है। अब व्रजकी कथा तो समाप्त ही हो गई। अब मथुराकी ही लीलाओंको श्रवण करें ! हाँ तो. अब मैं उसी परम सरस कथाको कहूँगा जिसमें भगवानने कुब्जाके ऊपर कृपा की थी। आप सब तपस्वी हैं इसलिये आपके सामने उसका विस्तार न करूँगा। संक्षेपमें ही सुनाऊँगा। आप सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

विलखि कहैं यदुनाथ न ऊधो ! ब्रज बिसरतु है ।
गैयाँ गोपी ग्वाल यादि करि हिय दहलतु है ॥
कहँ वे कुंजकुटीर कहाँ ये पाथरके घर ।
कहँ क्रीड़ा कमनीय कहाँ ये चिन्ता दुस्तर ॥
कहाँ रास रस अति सुखद, माखन मिसिरी खाइबो ।
कहाँ चरावन धेनु वन, ग्वालबाल सँग जाइबो ॥

कुब्जाको इच्छित वर

[१०७४]

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥*

(श्री भा० १० स्क० ४८ अ० १, श्लो०)

छप्पय

करि करि व्रजकी यादि श्यामने दुख अति पायो ।
उद्धवने बहु भाँति युक्ति करि धीर बँधायो ॥
कुब्जाकूँ जो दयो प्रथम वर सो सुधि आई ।
ताकूँ पूरन करने गये तिहि भवन कन्हाई ॥
दासीके घर जगत्पति, गये प्रकट प्रन निज करयो ।
जोहति छिन छिन बाट जो, हृदयताप ताको हरयो ॥

जब वेदगर्भ ब्रह्माजीने सृष्टि चक्र की वृद्धि नहीं देखी, तो भगवत् प्रेरणासे उन्होंने पंचपर्वा अविद्याका निर्माण किया। प्राणी उसी मायाके चक्करमें पड़कर सृष्टि कार्यमें अग्रसर हुये। सृष्टि होती है कामसे, इच्छासे, वासनासे, रागसे। अकाम पुरुषका जब सृष्टिकी कामना हुई तो ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। इसीलिये

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! कामतप्ता कुब्जाका प्रिय करनेकी इच्छासे सर्वात्मा समदर्शी भगवान् श्यामसुन्दर उसके घर गये ।

ब्रह्माजीका सृष्टि कार्यमें इतना अभिनिवेश हैं, उन्हें रात्रि दिन सृष्टिवृद्धिकी ही कामना बनी रहती है। सनकादि कुमारोंकी उत्पत्ति मायाके पूर्व ही हुई है, इसीलिये वे कभी बड़े नहीं होते, सदा पाँच वर्षके ही बने रहते हैं। जो जितना ही बड़ा होगा, उसकी कामना भी उतनी ही बड़ी होगी। काम क्रोधकी भावना सभीके हृदयमें होती है। उनपर विजय पानेके प्रयत्नका ही नाम साधन है। जो कोई कुछ भी कर्म कर रहा है उसके मनमें कुछ भी कामना अवश्य है। कामनाके बिना कर्म नहीं। भक्तिमार्गमें कामनायें नष्ट नहीं की जातीं, उन्हें भगवान्‌की ओर लगाया जाता है। मायिक पदार्थोंकी कामना करना बन्धनका हेतु है, उन्हीं कामनाओंको जानमें अनजानमें भगवानमें लगा देना यही मुक्तिका, भगवत्प्राप्तिका प्रधान हेतु बन जाता है। भगवान्‌से हमारे कोई भाव छिपे हुए नहीं हैं, वे घटघटकी जानते हैं। शरीरमें ऐसा एक भी अंग नहीं जिसके भीतर बाहर भगवान् न रम रहे हों। हमारे रक्तके बिन्दु बिन्दुको रोमरोमको वे स्पर्शकर रहे हैं। हमारी प्रत्येक इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ रूपसे वे उनका उपभोग कर रहे हैं। उनसे हम कुछ छिपाना भी चाहें तो नहीं छिपा सकते। अतः सर्वश्रेष्ठ साधन यही है, कि अपनी भली बुरी जैसी भी इच्छायें हैं सब उन्हें ही समर्पित कर दें। वे चाहे उन्हें पूर्ण करके मिटावें या वैसे ही जड़ मूलसे मिटा दें। हमें तो उन्हें अपने आपको समर्पित कर देना है। यद्यपि भगवान्‌को उत्तम वस्तु ही अर्पण करना श्रेयस्कर है, किन्तु जो दुर्भग है जिसके पास उत्तम है ही नहीं वह जो है उसीको अर्पण कर दे। जैसे गंगाजीमें जाकर नालेका जल भी विशुद्ध बन जाता है, वैसे ही भगवान्‌के संसर्ग से हमारी दुर्वासनायें भी सुवासना बन जाती हैं। भगवान् जिसे अपना लें फिर उसके मनमें दुर्वासनायें चिरकाल तक टिक ही कैसे सकती हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान्‌ने मथुरापुरीमें प्रवेश किया था, तो कंसकी एक दासी चन्दन लेकर जा रही थी, भगवान्‌ने उससे चन्दन माँगा। भगवान्‌को देखते ही उसके मनमें उनके प्रति अत्यधिक अनुराग उत्पन्न हो गया। उसने भगवान्‌को पति रूपमें मन ही मन वरण कर लिया। भगवान्‌ने कृपा करके उसकी सेवा स्वीकार की, उसके अङ्गरागको अपने श्री अंगोंमें लगाया। उसके प्रदत्त चन्दनसे अपने श्रीविग्रहको चर्चित किया। वह जन्मकी कुब्जा थी समाजसे तिरस्कृता थी, त्रिवक्रा थी, उसने अभी तक किसी का प्रेम प्राप्त नहीं किया था, जिसकी अभिलाषा मानवहृदयमें स्वाभाविक होती है। अनंत रूपराशि श्यामसुन्दरके दिव्यरूप पर वह विमुग्ध हो गई। क्यों विमुग्ध हो गई, क्योंकि वे विश्वविमोहक हैं। आत्माराम गुणकर्षी हैं, आकर्षण करनेसे ही वे कृष्ण कहाते हैं। वह त्रिवक्रा थी, भगवान्‌ने तत्काल अपने दर्शनोंका फल दिखाया, उसे वक्रासे सरला बना दिया वह सुर सुन्दरियोंकी भाँति रूप यौवनसे युक्त बन गयी। उस रमणीने अपने सम्मुख परमश्रेष्ठ आत्माराम रमणविहारी-को निहारा, मन्दमन्द मुसकराते हुए व्रीड़ा और अनुरागके सहित उनके पीताम्बरका छोड़ पकड़ लिया और प्रेमभरित वाणी से बोली—"मेरे घर पधारो। मुझे सनाथ करो, मेरे ऊपर कृपा करो मेरे हत्ताप को शांत करो।"

सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् देशकालके मर्म को जानने वाले यदु-नन्दन बोले—"अभी नहीं, अभी नहीं। सहसा सुखवस्तु प्राप्त हो जाय तो उसमें सुख नहीं, दिव्यानुभूति नहीं। अभी प्रतीक्षा करो साधना करो, निरन्तर अनन्य भावसे मेरा चिन्तन करो। तुम्हें मेरा संगम सुख अवश्यमेव प्राप्त होगा, मेरे शरणागतोंकी समस्त इच्छायें पूर्ण होती हैं, कल्पवृक्षके नीचेसे कोई विफल भले ही लौट सके, मेरे आश्रित पुरुष कभी विफल नहीं लौटते। वे जो

कामनायें करते हैं उन्हें वे अवश्य प्राप्त होती हैं।"

प्रेष्ठके वचनोंपर अच्युतके आश्वासनपर उस दासीने विश्वास किया। अब उसने अन्यकी दासताका परित्याग कर दिया। अब वह अहर्निशि कोटि कन्दर्पोंकी द्युतिको तिरस्कृत करनेवाले आनन्दघन मदनमोहनकी कृपादृष्टि वृष्टिकी व्यग्रता के साथ प्रतीक्षा करने लगी।

श्यामसुन्दरने कोई कालकी निश्चित अवधि तो बाँधी ही नहीं थी। सम्भव है श्यामसुन्दर आज ही आ जायँ, अतः वह ब्राह्म मुहूर्त में अत्यन्त उत्सुकता से उठती अपने भवनको झाड़ती बुहारती, चौंक पूरती, वेल बूटे बनाती, दासियों से उसे आकर्षक ढंगसे सजवाती, बहुमूल्य सुन्दर शोभयुक्त सुखद सामग्रियों से उसे सुभोभित बनाती, मोतियों की झालरें दिव्य वितानों द्वारा उसे अलंकृत करती। ध्वजा, पताका, वन्दनवार और कदली-स्तम्भ लगाती। सुन्दर सुगन्धित दिव्य धूप स्थान स्थानपर जलाती, उससे समस्त भवनको सुवासित बनाती। मणियोंके प्रकाश में स्वच्छ शुभ्र मृदुल उपबर्हणोंसे युक्त उसकी सुखद शैया जगमगाने लगती। श्यामसुन्दर इस शैयापर आकर शयन करेंगे, इस आशासे ही उसके रोमाञ्च हो जाते और भावजगत्में ऐसा अनुभव करने लगती मानों हृदयधन आ गये। अम्लान पुष्पोंकी माला वह शैयाके समीप ही टाँग देती और सोचती 'प्राणनाथ को इन दिव्य हारोंको पहिनाऊँगी, उनके प्रसादी प्राप्त-हारसे अपने कंठको अलंकृत करूँगी।" शनैः शनैः वह सुन्दर सुगंधित चन्दन घिसकर सुवर्णके पात्रमें रखती और सोचती— "इस चन्दनके द्वारा ही मुझे प्रेष्ठकी प्राप्ति हुई है; इसीके कारण मुझे इतना रूप यौवन, सौंदर्य और वैभव प्राप्त हुआ है। इसमें इच्छानुरूप चितचोरके चरणोंमें तथा सर्वाङ्गमें लेपन करूँगी।

चन्दनचर्चित चरणारविन्दकी घ्राणसे अपने हृत्तापको शान्त करूँगी।

अब तो इस शरीरको श्यामसुन्दरने अपना लिया। उन्होंने नखसे शिखतक स्पर्श करके इसे सरल और सीधा बना दिया। जिस शरीरको घनश्यामने अपना लिया उसे फिर जीवनमें अन्य कोई स्पर्श कैसे कर सकता है। अब तो यह हृदयधनकी वस्तु है, वे अभी आगये और उन्होंने इस अपनी वस्तुको मलिन या अशोभनावस्थामें पाया, तो उन्हें प्रसन्नता न होगी, यही सब सोचकर वह दिव्य सुगंधित उबटन लगाती, स्वच्छ सलिलसे स्नान करती, बहुमूल्य रंगरागका लेपन करती, धुले हुए बहुमूल्य परम रमणीय वस्त्रोंको धारण करती, प्रत्येक अंगमें आभूषणोंको पहिनती, दिव्य गंध वाले इत्र तैलोंसे केशपाशोंको सम्हालती; मनोहर चन्दन लगाती, मालाओंको धारण करती और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें बैठी रहती। मनसे श्यामसुन्दर के रूप का अनन्य भावसे चिंतन करते रहना, मुखसे श्यामसुदंर, मदनमोहन, आर्तिहर, दुःख भंजन, प्राणनाथ, रमण, प्रेष्ठ प्राणवल्लभ, हृदयधन, चितचोर तथा अन्यान्य श्रीहरिके सुखद सरस अमल विमल नामोंका सतत उच्चारण करते रहना और इन्द्रियोंसे उन्हींकी प्रसन्नताके निमित्त कृत्य करते रहना यही उस सैरन्ध्रीका नित्यका व्यापार बन गया था। पल पल पर प्राणनाथकी प्रतीक्षा करते रहना, क्षण क्षणमें उनके आगमनका अनुभव करते रहना तथा उनमें ही अपनी चित्तकी वृत्तिको लगाये रहना यही उसकी बँधी दिनचर्या थी। अरुणोदयसे अर्धरात्रि पर्यन्त इन्हीं भावोंमें भावित रहना यह उसका स्वभाव हो गया था। अर्धरात्रि बीतनेपर सोचती—"अब वे आज न आवेंगे। कोई बात नहीं, सर्वसमर्थ हैं, यद्यपि हमारे लिये वे एक हैं, किन्तु उनके लिये हमसी अनेक हैं, कल कृपा करेंगे, कल अवश्य आवेंगे कल मुझ

दुखियाको अवश्य ही सनाथ बनावेंगे। ऐसा सोचते सोचते उसकी आँखें झप जातीं। स्वप्नमें भी वह यही देखती श्यामसुन्दर आ गये हैं, मैं उनकी सेवामें संलग्न हूँ, वे मुझे प्रेम प्रदान कर रहे हैं। आँख खुलते ही अपने समीप श्यामसुन्दरको न पाकर नयनोंसे नीर बहाती और सोचती—"मेरे प्यारे कहाँ चले गये, मुझ अनुरक्ताको अतृप्त ही छोड़कर वे अन्तर्धान हो गये।" फिर सोचती—"अरे, यह तो स्वप्न है, जब वे स्वप्नमें पधारे हैं तो आज जागृतमें भी कृपा करेंगे। यही सोचते सोचते वह पुनः अपने नित्यके कर्मोंमें व्यस्त हो जाती, फिर भवनको झाड़ने बुहारने और शैयादिको सजानेमें लग जाती। यही सेवा है, यही पूजा है, यही चर्चा है, यही साधना है। सब कुछ प्रियतमके ही निमित्त करना और उनकी कृपाप्रतीक्षामें बैठकर कालयापन करना, अनुकम्पाकी बाट जोहते रहना, यही इस शरीर पानेका उपयोग है।

इस प्रकार प्रतीक्षा करते करते कुब्जाको बहुत दिन व्यतीत हो गये। उसने अपनी आशालताको नेहके नीरसे सींचकर पल्लवित तो कर लिया, किन्तु अभी उसमें पुष्प आने अवशेष थे। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरी लताकी कलिका अब खिली अब खिली। यह अभिलाषा ही उसे प्रतीक्षाके लिये प्रोत्साहित करती रहती थी। सहसा उसने सुना, अपने सचिव उद्धवजीके सहित श्यामसुन्दर पधार रहे हैं। इन शब्दोंने उसके कर्णकुहरोंमें मानो पर्याप्त अमृत उड़ेल दिया हो। उस अमृतके आधिक्यके कारण वह अपना कर्तव्य निर्णय न कर सकी, वह परम संभ्रमके सहित अपने आसन से उठ पड़ी। सखियोंके सहित श्यामसुन्दर और उनके सचिवका संकोचके साथ स्वागत किया। वह प्रियतमकी पूजा करने को प्रस्तुत हुई। किन्तु प्रेमाधिक्यके कारण पूजाका क्रम विस्मृत हो गया। जैसे तैसे चन्दन, धूप, दीप, माला तथा पुष्पोंसे अपने प्राणनाथ हृदयधनकी पूजा की।

उद्धवजीकी भी पूजा की। वे आसनका स्पर्श करके प्रभुको प्रणाम करके बैठ गये।

भगवान् उसकी सुखद शैयापर विराजमान हुए। आज चिरकालकी प्रतीक्षाके अनन्तर अपने प्रेष्ठको पाकर सैरन्ध्रीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। भगवान्ने उस नवसंगमोत्सुका, विशङ्किता, व्रीड़िता सुरतोत्सुका रमणीके कंकणभूषित कर कमलको, ग्रहण करके अपने चरणोंकी सन्निधिमें आश्रय प्रदान किया।

भगवान्की कृतज्ञता और भक्तवत्सलता तो देखिये। इस सैरन्ध्रीने केवल अन्यका चन्दन ही अर्पण किया था, इस लेश-मात्र पुण्यके प्रतिफल स्वरूप प्रभुने उसे अपना लिया, अपने आप को ही अर्पित कर दिया। कमलाकान्तने उस कामिनीको कृतार्थ कर दिया। उसकी चिरकालकी अभिलाषाको पूर्ण किया। आज वह अपने हृदयधन, जीवन-सर्वस्वके अरुण मृदुल चरणकमलों को प्राप्त करके आत्मविस्मृत बनी हुई थी। उन चन्दन-चर्चित चरणारविन्दोंको अपने कुंकुमानुलिप्त वक्षःस्थलपर धारण करके बारम्बार उन्हें सूँघने लगी। उनकी दिव्य सुगन्धिसे उसके रोमाञ्च हो रहे थे। उन अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक आनन्दघन सिन्धु प्रेममूर्ति प्रियतमको पाकर और उनका गाढ़ालिङ्गन प्राप्त करके उसने अपनी चिरकाल की विरहव्यथा शान्त की।

सर्वात्मा भगवान ने उस लोकत्यक्ता, परसेवावानिरता कुरूपा कुब्जा को सुरसुन्दरियों के सदृश सुरूपा और लोकवन्दिता बना दिया। उसने प्रभुसे प्रार्थना की—"प्रियतम! आप कुछ काल-किंकरीको अपनी कृपाद्वारा कृतार्थ करें। हे अरविन्दाक्ष! मुझसे आपका वियोगदुख सहन नहीं हो सकता। आप अपने समागम-सुखसे सेविका को सनाथ बनावें।" भगवान्ने कहा—"प्रिये! तुम मेरी नित्यलीलाकी अधिकारिणी बनगई। मुझे जो किसी भी

भाव से आत्म समर्पण कर देता है, उसका संसार-बन्धन सदा के लिये छूट जाता है।" यद्यपि उस मन्दभाग्या दुर्भगा ने अत्यन्त दुष्प्राप्य मोक्षके अधीश्वर अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक परात्पर प्रभुको प्रसन्नकरके तुच्छ काम वर की याचनाकी, किन्तु उसका सांसारिक बन्धन छिन्न भिन्न हो गया। वह दिव्य विमान पर चढ़कर भगवान्‌के नित्यधाम वृन्दावनवासकी अधिकारिणी बनी। वह अद्यावधि वीणाबजाकर सुन्दर सुललितवाणीमें गीत गागा कर गोविन्दका मनोरञ्जन करती रहती है। नित्यसखिपरिकरमें वह भी सम्मिलित हो गई है।

इसपर शौनकजीने पूछा—"सूतजी ! आप महाभागा कुब्जा-को बारबार दुर्भगा दुर्भगा क्यों कहते हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! आप ही विचार करें जो भगवान् दुराध्य हैं, जो ब्रह्मादिक ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, इन्द्रादि लोक-पालों के भी नियामक हैं और जो शंकर आदि योगीश्वरों के भी ईश्वर हैं, उनकी आराधना करके, उन्हें प्रसन्न करके-उसके बदलेमें जो मिथ्या विषय सुखोंकी याचना करते हैं, उनसे बढ़कर कुमति और कौन होगा। तनिकसे चन्दन अर्पण करनेके फल स्वरूप उसने सर्वेश्वरसे संगमकी याचनाकी ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! भगवान का संग तो दुस्त्यज है। व्रजाङ्गनायें भी तो निरन्तर यही अभिलाषा करती रहती थीं। कुब्जाने ही कौनसा अपराध किया ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! गोपाङ्गनाओंमें और कुब्जामें कुछ अन्तर है। गोपाङ्गनाओंकी तो समस्त चेष्टायें श्यामसुदर को सुख देनेकी होती थीं। वे श्यामसुन्दर की आराधना इसलिये करती थीं कि हमारे द्वारा वे सुखी रहें। हम उनकी सेवामें सदा संलग्न रहें। इसने अपने सुखकी याचनाकी। इसीलिये व्रजमें तो गोपिकायें स्वयं अनेक युक्तियोंसे श्यामसुन्दरके समीप जाती थीं।

यहाँ श्यामसुन्दर उसे वर देने स्वयं उसके समीप गये। किन्तु कोई बात नहीं। भगवान्से अकाम सकाम कैसे भी सम्बन्ध रखा जाय, वह सुखप्रद ही होता है। भगवान्के संसर्गसे कुब्जा भी कृतार्थ होगई।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! उन श्यामसुन्दरको तो सहस्रों सुन्दरियों ने देखा था, फिर इस कुब्जाके ही मनमें इतना अनुराग सहसा उत्पन्न कैसे होगया।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! सहसा कोई भी वस्तु उत्पन्न नहीं होती। हम देखते हैं, एक खेत सूखा हुआ शून्य पड़ा है। कुछ दिन पश्चात् देखते हैं वर्षा होनेपर उसमें सर्वत्र हरी-हरी घास उत्पन्न होगई है। वह घास कहीं अन्य स्थान से आ थोड़े ही गई। पहिलेसे ही उस खेतमें घासकी जड़ छिपी हुई थी। अनुकूल काल और जल पाकर वह अंकुरित और प्रस्फुटित हो उठी। इसी प्रकार कुब्जाके मनमें ये संस्कार जन्मान्तरीय थे। समय आनेपर भगवान्को देखते ही पूर्व जन्मोंके संस्कार उदित हो गये। यह पूर्व जन्ममें सूर्पणखा थी, पंचवटीमें यह काम भावसे भगवान्को भजना चाहती थी, तब तो मर्यादा पुरुषोत्तम होनेके कारण प्रभु इसकी इच्छा पूर्ति कर नहीं सके। अब लीलापुरुषोत्तम होकर उन्होंने उसकी जन्मान्तरीय इच्छा को पूर्ण किया। उसे सदाके लिये अपने परिकरमें मिला लिया। इस प्रकार कुब्जाको कृतार्थ करके करुणासागर कृष्णचन्द्र अपने सचिव उद्धवजीके सहित पुनः अपने भवनको लौट आये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जैसे भगवान्ने कुब्जाके घर आनेका वचन दिया था, वैसेही अक्रूरजीसे भी तो कहा था कि मैं यदुवंश द्रोही कंसको मारकर बलरामजीके सहित आपके घर पर

अवश्य ही आऊँगा। सो, भगवान् अक्रूरजीके घर गये या नहीं ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! भगवान् तो सत्यसंकल्प और सत्यप्रतिज्ञ हैं, वे जो संकल्प कर लेते हैं, वह तुरन्त हो जाता है, जिस बातकी वे प्रतिज्ञा करते हैं, उसको पूरा करते हैं। वे अक्रूरजीके भवनको भी कृतार्थ करने गये। अब मैं उसी प्रसङ्ग को कहूँगा। आप सब समाहित चित्तसे श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

निरखि प्रानप्रिय भवन तुरत दासी उठि धाई।
कंकन युत कर कमल पकरि हरि निकट बिठाई॥
पाइ मृदुल प्रभु चरन कमल मन माँहि सिहाई।
गूँथि हिये बिच धारि नारि तन तपन बुझाई॥
हाय! पाइ प्रभु विषय सुख, माँग्यो दासी तुच्छ अति।
करि कृतार्थ उद्धव सहित, आये घर पुनि जगतपति॥

रामश्यामका अक्रूर गृहगमन

(१०७५)

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः।
किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४८ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

इक दिन प्रभु अक्रूर भवन बल सहित पधारे।
श्वफलक-सुत अति मुदित नयन जल चरन पखारे॥
चरनोदक सिर धारि करी पूजा सुख पायौ।
अंक धारि पद कमल पुलक तनु भाग सराह्यौ॥
सिर नवाय अति बिनययुत, बार बार इस्तुति करी।
करुणाकर कीन्हीं कृपा, यदुकुलकी विपदा हरी॥

पुरातन पुण्योंके प्रभावसे ही सेवकके भवनमें स्वामीका आगमन होता है। गृहकी सार्थकता इसीमें है कि वह भगवान् और भागवतोंके चरणके धोवनसे सींचा जाय, जिसमें स्वामीके धोये जलकी कीच हो। जो हमारे रक्षक हैं, प्रतिपालक हैं सर्वस्व हैं वे सहसा हमारे आवास पर पधारें तो उस समय कितनी

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एक दिन अक्रूरजीका प्रिय करनेके निमित्त तथा कुछ आवश्यक कार्य करानेके निमित्त उद्धवजी और बलरामजीके सहित उनके घर पर गये।"

प्रसन्नता होती है, यह वर्णनातीत विषय है। चित्त चाहता है इन्हें अपने हृदय-कमलके आसनपर बिठावें, पलकोंके पाँवड़े बिछाकर इन्हें लावें। वे धन्य हैं जिनके घर उनके स्वामी पधारे हैं और उनका उन्होंने भली-भाँति स्वागत सत्कार किया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुब्जाको कामवर देनेके अनंतर एक दिन भगवान् ने सोचा—"अब तो सब काम हो गये। चाचा अक्रूरको विश्वास दिलाया था कि हम आपके घर आवेंगे, किन्तु अभी तक गये नहीं। आज चलें, यही सोचकर उन्होंने बलदाऊजीको बुलाया, अपने सचिव उद्धवजीको बुलाया, दोनोंको साथ लेकर वे अक्रूरजीके घर गये।

अक्रूरजीको पता तो था ही नहीं कि भगवान् आज हमारे घर पधारेंगे। वे तो सुखपूर्वक आसनपर बैठे श्यामसुन्दरकी मनमोहिनी मूरतिका ही ध्यान कर रहे थे, सहसा उन्हें कुछ लोग इधरसे उधर दौड़ते हुए दिखाई दिये। उनकी आँखें खुल गईं। सामने क्या देखते हैं, कि बलदेवजी और उद्धवजीके साथ पीताम्बरको धारण किये मन्द-मन्द मुसकराते हुये माधव आ रहे हैं। उन्हें देखते ही सहसा संभ्रमके सहित अक्रूरजी खड़े हो गये। उद्धव सहित दोनों भाइयोंका अभिनंदन किया। रामश्याम ज्योंही उन्हें प्रणाम करनेको उद्यत हुये, त्योंही दोनोंको पकड़कर छाती से चिपटा लिया और बड़ी देर तक चिपटाये ही रहे। तब दोनों भाइयोंने चाचाके नाते उनका अभिवादन किया, उनके दिये हुये दिव्य आसनोंपर विराजमान हुये। समीप ही एक छोटेसे आसन पर उद्धवजी भी विराजे। अक्रूरजीके पैर पृथिवीपर नहीं पड़ते। उनका मन चाहता था न जाने क्या कर डालें। पूजाकी सामग्री मँगाकर दोनों भाइयोंकी विधिवत् पूजा की। उनके त्रिभुवनपावन पादोदकको श्रद्धा-प्रेमसहित सिरपर धारण किया। चन्दन, अक्षत, मधु, दुग्ध, घृत, कुशा तथा पुष्पोंसे युक्त अर्घ्य

उन्हें प्रदान किया। सुवासित जलसे आचमन कराया। सिरपर जल छिड़ककर यज्ञोपवीत, बहुमूल्य वस्त्र, दिव्य चन्दनानुलेपन अक्षत, सुगन्धित पुष्प, मनोहर मालायें, रत्न जटित आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पुंगी, फल, इत्र, सुगन्धित तैल तथा दक्षिणा आदि समर्पित करके अपनी भक्ति प्रदर्शितकी। फिर उनके परम मृदुल अरुणवरणके सुखद चरणारविन्दोंको अपनी गोदी में धारण करके वे उनकी विनय करने लगे।

अक्रूरजीने कहा—"भगवान्! आप दीनवत्सल हैं, प्रणत प्रतिपालक हैं। आपने जो वचन दिया था, उसे पूर्ण किया। मुझ अनाथको सनाथ बनाया, इस अकिंचनके गृहको पावन बना दिया। आपने आज्ञा की थी, यदुवंशके शत्रु कंसको मारकर मैं तुम्हारे भवनमें आऊँगा, सो यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वह दुष्ट पापी कंस आपके द्वारा मारा गया। उसके सब संगी साथी सहायक भी मारे गये। इन सब कुल कलंकों और जाति द्रोहियोंको मारकर आप दोनोंने यदुकुलको बहुत बड़े संकटसे निकालकर इसे उन्नति पथकी ओर अग्रसर किया। आपकी छत्र-छाया में प्रतिपालित यह कुल अब समुन्नत और समृद्धिशाली बन गया, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। आप दोनों प्रधान पुरुष हैं, जगत्के हेतु हैं, जगन्मय हैं। कार्य कारण रूप किसी भी वस्तुकी आपसे पृथक् सत्ता नहीं।"

भगवान बोले—"चाचाजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं। अजी, हम तो आपके बालबच्चे हैं, आप तो हमारे बड़े हैं, चचा हैं, हमें आपकी प्रशंसा करना चाहिये कि आपको हमारी। आप तो उलटी गंगा बहा रहे हैं।"

हँसकर अक्रूरजी बोले—"प्रभो! मुझे अब अधिक भ्रममें न डालें। मुझे अब भरमामें नहीं। आपका कौन चाचा, कौन ताऊ सबके चाचा और बाबा तो आप ही हैं। आप अपनी ही शक्तिसे

रचे हुए इस विश्व ब्रह्माण्डमें अपनी कालमायादि शक्तियोंसे युक्त होकर इस प्रपञ्चको चला रहे हैं। कालकर्म स्वभावके संहारसे निमित इस विश्व चक्रको घुमा रहे हैं, जितने ये प्रत्यक्ष देखे जानेवाले, सुने जाने वाले तथा अनुमान लगाये जानेवाले पदार्थ हैं वे सब आपसे अभिन्न हैं। आप इन सबमें आकाश, वायुकी भाँति विद्यमान हैं। जैसे मालाकी प्रत्येक मणिमणिमें सूत्र व्याप्त है, वैसे ही आप सबमें अनुस्यूत हैं। जैसे इन समस्त स्थावर जंगमोंमें कारण तत्व रूपसे पृथिवी जल, तेज, वायु और आकाशमें व्याप्त हैं वैसे ही समस्त भूतोंमें आपभी आत्मरूपसे आकृति भेदके कारण अनेकसे प्रतीत होते हैं।"

भगवान् बोले—"चाचाजी आप कह क्या रहे हैं। आप हमें लज्जित क्योंकर रहे हैं? हम तो आपके पाल्य हैं, हमारा पालन-पोषण करो। अपना पुत्र समझकर रक्षा करो। हमतो आपकी कृपाके इच्छुक हैं।"

सरलताके साथ अक्रूरजी बोले—"अजी महाराज! आपपर कौन कृपाकर सकता है। यह चराचर विश्व ही आपकी कृपापर निर्भर है। आप ही तीनों गुणोंकी शक्तियोंसे ब्रह्मरूपसे इस जगत्की सृष्टि करते हैं। सृष्टि करके विष्णुरूपसे इसका पालन करते हैं और अंतमें रुद्ररूपसे इसका संहार भी कर लेते हैं। इतना सब करते हुए भी आप निर्लेपके निर्लेप ही बने रहते हैं। उन गुणोंसे तथा उन गुणोंके उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कर्मोंसे बन्धनमें नहीं पड़ते। क्योंकि आपतो सत्यस्वरूप हैं, चैतन्यघन हैं, आनन्दके निलय हैं। आप परम विशुद्ध हैं, बन्धन तो अशुद्धको होता है। आपके बन्धनका कारण तो कोई प्रतीत होता नहीं।"

भगवान् बोले—"ब्रह्ममें भेद न हो तो भी जीवरूपसे तो जन्म, जरा तथा क्लेशादि प्रत्यक्ष दिखाई देते ही हैं। शरीर धारियोंको बन्धन होता ही है।"

अक्रूरजीने कहा—"ये देहादि उपाधियाँ सत्य नहीं, मिथ्या हैं। जब देह मिथ्या है तो जीवात्मामें भी जन्म अथवा जन्मसे होने वाले भेदभाव साक्षात् सिद्ध नहीं होते। मिथ्या प्रतीत होते हैं। आप तो विशुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं। अतः आप बन्धनमें हैं ही नहीं। जिसे बन्धन नहीं उसके लिये मोक्षकी कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि बन्धन और मोक्ष तो अन्योन्याश्रित हैं। प्राणी अविवेक के कारण आपमें बन्धन मोक्ष की कल्पना करते हैं।"

भगवान्ने कहा—"चाचाजी! आज आपको हो क्या गया है। हम बालकोंके प्रति ऐसी बातें कहकहकर हमें ज्ञानका उपदेश दे रहे हैं क्या? हमने तो आपके सामने ही जन्म लिया है। व्रजमें बड़े हैं, आप सबने ही हमारा प्रतिपालन किया है, फिर आप हमें अजन्मा बता रहे हैं।"

हँसकर अक्रूरजी बोले—"महाराज आपको कौन उदरमें धारणकर सकता है, विश्व ब्रह्माण्ड आपके उदरमें हैं। आपका कौन पालनकर सकता है, सबके पालक तो आप ही हैं। आपने संसारके कल्याणके हेतु यह भुवन मोहन रूप धारण किया है। आप धर्म की रक्षाके निमित्त समय-समय पर अवनि पर अवतरित होते हैं और सनातन वैदिक आर्य धर्म की रक्षा करते हैं। यह सनातन वेद मार्ग आपने ही प्राणियोंके सुखके निमित्त प्रकट कया है। जब जब धर्मकी ग्लानि होती है, इस विशुद्ध वैदिक धर्मको मिथ्या पाखण्डपूर्ण पन्थोंसे क्षति पहुँचती है। उस समय आप विशुद्ध सत्वमय सुन्दर शरीर धारण करके साधुरक्षण और दुष्ट-दमन करते हैं। यह आपका प्रण है। आप जन्म मरण आदि देह धर्मोसे सर्वथा रहित हैं। आपका कोई पिता नहीं, माता नहीं कुल नहीं गोत्र नहीं। सखा नहीं मित्र नहीं। आप ही सबके सर्वस्व हैं।"

भगवान् बोले—"चाचाजी! अब आप भी ऐसी

बात कहेगे। हमतो यदुवंशी हैं। आपके भाई वासुदेवजीके घरमें माता देवकीके उदरसे उत्पन्न हुए हैं। इन बातोंको भूल गये क्या आप ?"

अधीर होकर अक्रूरजीने कहा—"मैं भूला नहीं प्रभो ! सब जानता हूँ। असंख्यों असुर राजाओंके रूपमें इस अवनिपर उत्पन्न हो गये है। देखनेमें तो वे मनुष्य प्रतीत होते हैं, किन्तु पूर्व जन्मके हैं सब असुरही। बाना तो उन्होंने रक्षकोंको बना रखा है, किन्तु कर रहे हैं प्रजाका भक्षण। उनके पास सैकड़ों अक्षौहिणी सेनायें हैं। आप उन सब असुरोंके अंशसे उत्पन्न हुए क्षत्रियोंका, उनकी भारी सेनाका संहार करनेके निमित्त तथा भूमिके बढ़े हुए भारको उतारनेके निमित्तही इस शापित यदु-कुलका यश बढ़ानेके लिये भैया वसुदेवजीके घर प्रकट हुए हैं। ये बलरामजी आपके अंश हैं आप दोनोंका अवतार भूभार उतारनेके ही निमित्त है। आप कर्म बन्धनोंके कारण उत्पन्न नहीं हुए हैं। कर्म तो आपको स्पर्श भी नहीं कर सकते।"

भगवान्ने कहा—"चाचाजी ! आप ऐसीही वे सिर पैरकी बातें करते रहेंगे, कि कुछ कामकी भी बातें होंगी। यही सब सुननेके लिये हम आपके घरमें आये हैं क्या ?"

अक्रूरजीने कहा—"हे दीनबन्धो ! घरतो आपका ही है, सबके अधिष्ठातृदेव तो आपही हैं। ये जितने पञ्च यज्ञके देवता हैं, पितृगण हैं, तथा सम्पूर्ण भूत हैं ये सब आपकी ही तो मूर्ति हैं। राजाओंमें जो पालनकी शक्ति है, वह आपकी ही तो दी हुई है। भगवती सुरसरि आपके ही चरणोंकी तो धोवन हैं, जो तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं चराचरके गुरु हैं। इतना होनेपर भी आप यदुनन्दन कहलाते हैं। वृष्णिवंशावतंस कहकर ऋषिमुनि आपकी स्तुति करते हैं। आप स्तुति सुनने नहीं पधारे हैं। हम जैसे

अल्पज्ञ जीव आपकी स्तुति कर ही क्या सकते हैं। आप तो अपने चरणारविन्दोंसे इन घरोंको पावन बनानेके निमित्त पधारे हैं। हम सब यादव आपकी शरणमें हैं आपके अतिरिक्त हमारा और कौन अवलम्ब है।"

भगवान्‌ने कहा—"चाचाजी ! भगवानका भजन करो। देवताओंकी शरणमें जाओ। पितरोंकी आराधना करो। देवता पिता, ऋषि तथा अन्यान्य वृद्धोंकी सेवा करना यही गृहस्थियोंका मुख्य धर्म है।"

अक्रूरजीने कहा—"इन सभी रूपोंमें हे श्रधोक्षजी आपही तो विद्यमान् हैं। सब आपके ही तो रूप हैं। मूलमें जल देनेसे शाखा, फल, पुष्प, पल्लव सभी हरे हो जाते हैं। सभीकी तृप्ति हो जाती है। एकमात्र आप ही तो समस्त प्राणियोंके सुहृद्‌हितकारी भक्तोंके प्रिय, उनके वचनोंका आदर करनेवाले, सत्यप्रतिज्ञ और परम कृतज्ञ हैं। आपकी शरण लेनेसे प्राणियोंके समस्त दुख दूर हो जाते हैं। आप अपने शरणागत भक्तोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करते हैं। वे जो जो माँगते हैं वही वही आप उन्हें देते हैं। यहाँ तक कि अपने आपको भी दे डालते है। क्षति और वृद्धिसे रहित अपने आत्माको देनेमें भी आप संकोच नहीं करते।"

भगवान् बोले—"अच्छा, चाचाजी बहुत हुआ अब कल्याणकारी अन्य आवश्यक बातें होनी चाहिये।"

अक्रूरजीने कहा—"भगवान् ! आपके गुणानुवादोंके अतिरिक्त अन्य कोई कल्याणकारी बात है ही नहीं। हे जनार्दन ! आपकी जिन मनोमयी मूर्तिकी क्षण भरकी झाँकीके लिये बड़े-बड़े योगेश्वर तथा लोकपालगण चिरकाल तक घोर तप करते रहते हैं, फिर भी आपकी गतिको वे प्राप्त नहीं होते, उनके लिये आपके दर्शन दुर्लभ है। ऐसे सर्वेश्वर आपका हम प्रत्यक्ष

साक्षात् दर्शन कर रहे हैं, इससे बढ़कर हमारा और क्या सौभाग्य होगा ? प्रभो ! हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी धनमें, भवनमें, स्वजनों और परिजनोंमें पुत्र और कलत्रोंमें आसक्ति न हो। जिस मायाने हमारे विवेकको नष्ट करके इन असद् पदार्थोंमें सद्बुद्धि कर रखी है, उस मोह पाश रूप अपनी बहुरूपिणी गुणमयी दुरत्यया मायाको आप तुरन्त नष्ट कर दें। हमें अपने चरणोंकी शरणमें ले लें।"

भगवान्ने कहा—"देखिये चाचाजी ! आप ऐसी बातें कह कह कर हमें अप्रत्यक्ष रूपसे उपदेश कर रहे हैं। वास्तविक बात तो यह है, जो उन्नतिका इच्छुक हो, अपना आत्यन्तिक कल्याण करना चाहता हो, उसे आप जैसे परमपूजनीय महानुभावोंकी श्रद्धा भक्ति सहित सेवा करनी चाहिये। आप जैसे साधु प्रकृतिके पुरुष तो परमदेवता और तीर्थस्वरूप हैं। देवता तो स्वार्थी होते हैं। उनका पूजन करो तो फल देंगे। कोई विधि विपरीत कार्य हो गया तो उसके लिये दंड देंगे। कोप भी करेंगे। किन्तु आप जैसे संत जन कभी किसी पर कोप नहीं करते हैं। सदा सबके उपकार में ही संलग्न रहते हैं। जलमय ही तीर्थ नहीं, धातु मृत्तिका तथा पाषाणमयी मूर्तियाँ ही देवता नहीं। आप जैसे परोपकारी संत भी देव स्वरूप हैं। तीर्थोंमें जाकर चिरकाल निवास करो, अर्चा विग्रह की बहुत काल तक सेवा करो, तब ये सब फल देते हैं। किन्तु आप जैसे साधुजनोंके तो दर्शनमात्रसे ही सब फल प्राप्त होजाते हैं। इसलिये हम तो अपनेको कृतार्थ करने ही आपके दर्शनोंके लिये यहाँ आये हैं। मुझे आपसे एक आवश्यक कार्य भी था।"

उत्सुकतापूर्वक अक्रूरजीने कहा—"आज्ञा कीजिये प्रभो ! मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?"

भगवान्ने कहा—"चाचाजी ! कल मैं पिताजीसे बातें कर

रहा था। बातों ही बातोंमें कल उन्होंने बताया—"हमारी एक कुन्ती नामकी बुआ है। उसका विवाह महाराज पांडुके साथ हुआ था। उनका वनमें स्वर्गवास हो गया! उनके पाँच पुत्र थे, उन्हें लेकर हमारी बुआ हस्तिनापुर आ गई। पांडुके बड़े भाई अंधे धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधनके वशमें हैं। इसी लिये वे अपने भाईके लड़कोंके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। जब तक हम असमर्थ थे तब तो विवशता थी, अब तो हम समर्थ हैं, सम्पन्न हैं। सगे सम्बधियोंसे सब यही आशा रखते हैं कि वे हमारे दुःख सुखमें सम्मिलित हों। समर्थ होने पर भी जो अपने सगे सम्बन्धियों की सहायता नहीं करता वह नरकका अधिकारी होता है। अतः हमें अपनी बुआ और उसके पुत्रोंकी सहायता करनी चाहिये।"

अक्रूरजीने कहा—"प्रभो! आप सर्वसमर्थ हैं। आप क्या करना चाहते हैं, इसे कोई नहीं जान सकता। प्रतीत होता है आप अपनी बूआके पुत्रोंको निमित्त बनाकर इस भू का भार उतारना चाहते हैं। अस्तु यह बताइये मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

भगवानने कहा—"आप हमारे कुलमें सर्वश्रेष्ठ हैं, परम बुद्धिमान और नीति निपुण हैं। अतः आप पाण्डवोंके हितकी इच्छासे हस्तिनापुरको जाइये। हमारी बुआसे, उसके पुत्रोंसे तथा धृतराष्ट्र आदिसे हमारी कुशल कहे। आप वहाँ जाकर कुछ दिन रहें और उनका सब भीतरी समाचार जानें। धृतराष्ट्र को भी समझावें। उसके मनोगत भावोंका भी अध्ययन करें, वहाँके कर्मचारियोंसे भी मिले। जब आप वहाँके सब समाचार लेकर लौट आवेंगे तो आपके द्वारा उनके सब समाचार पाकर मैं इस बातपर विचार करूँगा कि हमें कौनसा काम ऐसा करना चाहिये जिससे हमारे उन सुहृद सम्बन्धियों का कल्याण हो, उन्हें सुख हो।"

अक्रूरजीने कहा—"प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं। सबकी घट घट की बात आप जानते हैं। यह सब आप नर नाट्य कर रहे हैं। राजनीति का आदर्श उपस्थित कर रहे हैं, व्यवहारकी शिक्षा दे रहे हैं। मेरे लिये जैसी आज्ञा होगी, उसका मैं अवश्य पालन करूँगा। कल प्रातःकाल मैं हस्तिनापुर जाऊँगा और वहाँके सब समाचार जानकर आपके चरणोंमें निवेदन करूँगा।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी अक्रूरजी को आज्ञा देकर बलरामजी तथा उद्धवजीके साथ अपने भवनको चले गये। वहाँ जाकर अन्य राजकाजोंको देखने लगे। इधर अक्रूरजी हस्तिनापुर जानेकी तैयारियाँ करने लगे।"

छप्पय

बिनय बचन सुनि श्याम कहें—चाचा! तुम गुरुवर।
कुन्ती बूआ दुखी तुरत जावें हथिनापुर॥
नेत्रहीन धृतराष्ट्र खलनि मिलि बशमहँ कीन्हें।
पितृहीन असहाय पांडुपुत्रनि दुख दीन्हें॥
कछु दिन बसि सब मरम लै, आवें तब कछु करिंगे।
समुझि बलाबल बुआको सुतनि सहित दुख हरिंगे॥

अक्रूर और कुन्ती

(१०७६)

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन् ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४९ अ० ११ श्लो०)

छप्पय

हथिनापुर अक्रूर चले हरि आयसु सिर धरि ।
पहुँचत कुन्ती मिलीं गद्गद नयननिमहँ जलभरि ॥
करि विपतनिकी यादि बन्धु ढिँग भईं दुखारी ।
पुनि पुनि पूछति तात श्याम सुधि लई हमारी ॥
हे यदुनन्दन अखिलपति, शरणागत वत्सल-विभो ।
सहति सुतनि सँग दुख दुसह, आइ उबारो हे प्रभो ॥

दुखमें जब कोई आकर हमारे प्रति सहानुभूति दिखाता है, तो हृदय भर आता है और करुणाका स्रोत उमड़ने लगता है। जैसे पके फोड़ेसे पीव निकल जानेपर कुछ कुछ शान्ति हो जाती है, वैसेही रोकर अश्रुविमोचन करके अपने दुखोंको स्वजनोंके सम्मुख कहनेसे चित्तमें शान्तिसी आ जाती है। इसीलिए दुःखमें

* कुन्तीजी अपने भाई अक्रूरजीके सम्मुख दुखित होकर भगवान् की स्तुति करती हुई कह रही हैं—"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे विश्वरूप! हे विश्वपालक! हे गोविन्द! मैं अपने सुतोंके अत्यन्त कष्ट पा रही हूँ। मुझ प्रपन्ना की आप रक्षा करें।"

स्वजन घर पर जाते हैं और सान्त्वना देते हैं। यदि सान्त्वना देनेवाले साक्षात् सर्वेश्वर हों, तब तो पूछनाही क्या, उनकी स्तुति करनेसे ही कल्याण होता है। हमें यह विश्वास बना रहे कि भगवान् हमें देख रहे हैं, उन्हें हमारे दुखोंकी चिन्ता है तो दुःख दुःख नहीं। कोटि सुखोंसे भी बढ़कर है। और भगवान्को भुलाकर उन्हें कारावास में बन्द करके—हम सुखोपभोग करना चाहें तो वे सुख चिन्ता, ग्लानि व्याकुलता, भय और क्रोधादिके कारण असंख्यों दुःखोंसे भी बढ़कर हैं। इसीलिये भगवान् दुख पड़नेपर साधुस्वभावके गुरुजनोंको भेजकर इस बातका स्मरण दिलाते हैं कि तुम साहसको मत त्यागना, हमें तुम्हारा स्मरण है, तुम्हारे साथ हम हैं। भगवत् भक्त इसी आशाके सहारे बड़े से बड़े कष्टोंको हँसते हँसते झेल लेते हैं। दुःख उन्हें दुःखप्रतीतही नहीं होता। निरन्तर भगवत् कृपाका अनुभव होते रहनेके कारण वे ऐसी विपत्तियोंकी निरन्तर याचना करते रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्की आज्ञा पाकर अक्रूरजी रथमें बैठकर मथुराजीसे हस्तिनापुरको चले। यमुनाजीको पार करके,पाञ्चालादि देशोंमें होते हुए वे गंगातट पर स्थित पुरुवंशी राजाओंकी राजधानी हस्तिनापुरमें पहुँचे। उन्होंने राजा धृतराष्ट्रके समीप अपने आनेका सम्वाद भेजा। धृतराष्ट्र अक्रूरजीका आगमन सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उनसे प्रेमपूर्वक मिले। तदनन्तर वे कौरवोंमें सर्वश्रेष्ठ वृद्ध भीष्मपितामहसे मिले। धृतराष्ट्र और पांडुके छोटे भाई दासी-पुत्र विदुरजीसे भी भेंट की। तदनंतर भीष्मपितामहके चाचा बाह्लीक, उनके पुत्र सोमदत्तजीसे भी मिले तथा उनके भूरि, भूरिश्रवा, शल नामक तीनों पुत्रोंसे भी उन्होंने भेंट की। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण दुर्योधन, अश्वत्थामा तथा कुन्ती सहित पांडवोंसे भी उन्होंने भेंट की। अक्रूरजीको देखकर सभीको प्रसन्नता हुई। सभीने समस्त यदु

बंशियोंकी कुशल पूछी। अक्रूरजीने सबकी कुशल बताई और यहाँके सबलोगोंकी भी कुशल पूछी। अक्रूरजीने अपने आनेका कारण किसीको बताया नहीं। वे वहाँ कुछ काल तक रह गये। वे गुप्त रीतिसे सबसे मिलकर शनैः शनैः सबके मनका भेद लेने लगे। कौन क्या चाहता है, किसके मनमें क्या है, पांडवोंके कौन शत्रु हैं, कौन मित्र हैं। अक्रूरजी तो बड़े बुद्धिमान् थे। वे कुछ ही कालमें सब रहस्यको समझ गये कि विदुरजीको छोड़कर पांडवोंका यहाँ कोई हितैषी नहीं है। यद्यपि धृतराष्ट्र हृदयका बुरा नहीं है, किन्तु वह अल्पवीर्य है, अंधा है। उसके दुष्ट पुत्र दुर्योधनने उसे अपने अधीनकर रखा है। दुर्योधन पांडवोंको फूटी आँखसे भी देखना नहीं चाहता, वह उनपर नित्य नूतन अन्याय करता है और पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर अंधाराजा उसके कृत्योंमें हस्तक्षेप नहीं करता। दुर्योधनको कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि आदि ऐसे मन्त्री मिले हुए हैं जो सदा उसकी हाँ में हाँ मिलाते रहते हैं और उसके पाप कर्मोंमें भी सम्मिलित रहते हैं। यद्यपि अक्रूरजी धृतराष्ट्रके ही पास ठहरे थे, किन्तु वे अपनी बहिन कुन्ती के ही यहाँ विशेष रहते थे। उन्हींसे तो सब पूछने आये ही थे। विदुरजीने और महारानी कुन्तीने अक्रूरजीको सब भीतरी बातें बता दीं। दुर्योधन किस प्रकार पांडवोंकेतेज, ओज, पराक्रम, कलाकौशल, बल, वीर्य, विनय तथा विद्यादि सद्‌गुणोंको देखकर जलता है, डाह करता है और किस प्रकार मन ही मन द्वेष रखता है। किस प्रकार दुर्योधनने भीमको विष खिला दिया था, किस प्रकार वह नागलोकमें जाकर बच गया। ये सभी बातें कुन्तीजीने अक्रूरजीको बता दीं। अक्रूरजीने अनुभव किया कि पांडवों पर प्रजाके लोगोंका तो अत्यधिक अनुराग है। वे पांडवोंसे प्रेम करते हैं, उन्हे राजा बनाने के पक्ष में हैं किन्तु दुर्योधन उन्हें सभी उपायों से नष्ट करना चाहता है।

अक्रूरजीको पाकर कुन्ती को बड़ा सहारा हो गया था, वह अपना दुखड़ा रोकर मनकी व्यथाको अक्रूरजीको सुनाकर कुछ स्वस्थ हो जाती ! एक दिन अक्रूरजीने कहा—"बहिन ! अब मुझे यहाँ रहते रहते बहुत दिन व्यतीत हो गये हैं। भगवान् वासुदेव मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। मुझे उन्हें यहाँके सब समाचार सुनाने हैं। उन्हें तुम्हारी तथा तुम्हारे पुत्रोंकी बहुत चिन्ता है। वे तुम्हारा बहुत स्मरण करते हैं।"

यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरकर महारानी कुन्ती बोली—"भैया ! जबतक तुम थे, तबतक मुझे बड़ा सहारा था। अपने दुख-सुखकी बातोंको तुमसे कहकर अपने हृदयको हलकाकर लेती थी। यह बात सत्य ही है, दुःखमें कोई किसी का होता नहीं। देखो, भैया तुम भी हमें भूल गये। यह बताओ हमारे माता पिता हमारी कभी याद भी करते हैं ? वसुदेवादिक हमारे सभी भाई कभी हमारी चर्चा चलाते हैं। हमारी और सभी बहिनें तो राजरानी हैं सभी सुखी हैं, एक मैं ही अभागिनी हूँ, कभी हमारी बहिनें आती हैं, तो कुलकी अन्यान्य स्त्रियोंके साथ। अपनी सखी सहेलियोंके साथ हमारा भी कभी स्मरण करती हैं। और करें न करें मेरे भाईके पुत्र लोकनाथ सर्वेश्वर शरणागत वत्सल भक्त-भयहारी भगवान वासुदेव तो कभी मेरा स्मरण करते हैं ? मेरे इन पितृ-हीन अनाथ बच्चोंका उन्हें ध्यान है न ? कमलनयन बल-रामजी भी हमारी याद करते हैं क्या ? भैया ! हमें तो उन्हीं श्यामसुन्दर घनश्याम का भरोसा है। जैसे बत्तीस दाँतोंके बीचमें जीभ रहती है, उसी प्रकार मैं यहाँ रहकर अपने दिन काट रही हूँ। जैसे भेड़ियोंके बीचमें भयभीता मृगी पड़ी रहती है वैसेही रहकर मैं अपने शत्रुओंके बीच में रह रही हूँ। दुर्योधन मेरे बच्चोंसे सदा द्वेष रखता है, वह जिस किसी प्रकार मेरे बच्चों-का अनिष्ट करना चाहता है।"

अक्रूरजी ने कहा—"बहिन ! इन्हीं सब बातों को जानने के लिये तो भगवान ने मुझे भेजा है। उन्हें आपकी तथा आपके पुत्रोंकी बड़ी चिन्ता है।"

कुन्तीजीने कहा—"उन्हें तो सम्पूर्ण विश्वकी चिन्ता है। वे तो विश्वम्भर हैं, उन्हींकी कृपाकी आशा पर तो मैं जीवित हूँ। नहीं मेरा संसारमें कौन है। यह बताओ भैय्या! क्या कभी श्यामसुन्दर अपनी इस अभागिनी दुःखिनी बुआको दर्शन देंगे। कभी फुफेरे भाइयोंके नाते इन बच्चोंपर कृपा करेंगे? कभी हस्तिनापुर आकर वे हमें धैर्य बँधावेंगे ?"

अक्रूरजी ने कहा—"बहिन ! भगवान् से कोई भी बात छिपी नहीं है, वे सबके अन्तःकरण की बातों को जानते हैं। वे अवश्य ही तुम्हें दर्शन देंगे। विपत्ति सागर में डूबे हुए अपने भाई इन पाँचों पाँडवोंका वे उद्धार करेंगे। तुम्हारे पुत्र देवताओं द्वारा उत्पन्न हुए हैं, ये सबके सब बड़े धर्मात्मा हैं, इनकी संसार में विपुल कीर्ति फैलेगी, ये जगत् में बड़े यशस्वी होंगे।"

दीनताके स्वरमें कुन्तीजी बोलीं—"भैया ! मैंनेतो एक मात्र उन्हींके चरणोंकी शरण ले रखी है। वे ही हमारे रक्षक हैं।" यह कहकर महारानी कुन्ती फूट-फूट कर रोने लगीं। रोते रोते वह रुद्ध कण्ठसे भगवान्के नामोंको लेकर स्तुति करने लगीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानों भावगम्य भगवान् उसके सम्मुख ही खड़े थे। वह उनके दर्शन करते करते ही मानों अधीर होकर स्तुति कर रही है—"हे महायोगिन ! यदुनन्दन तुम्हारे पाद-पद्मोंमें पुनः पुनः प्रणाम है। हे कृष्ण ! आप मेरे क्लेशों का कर्षण करो। हे विश्वरूप ! हमें अपने देवदुर्लभ दर्शन देकर कृतार्थ करो। हे विश्वपालक ! ये अनाथ बच्चे शत्रुओंके पंजे में पड़े हुए हैं। इनका आकर पालन करो। अपना

वरद कर कमल इनके सिरों पर रखो । हे परब्रह्म परमात्मन्! मुझ दुखिया के प्रणाम को स्वीकार कीजिये। हे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप ! स्वयं प्रकाश प्रभो ! मैं आपकी शरणागत हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कुन्ती की ऐसी करुण पुकार सुनकर अक्रूरजी का हृदय भर आया उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने भाँति भाँतिसे कुन्तीको समझाया। भगवान्की भक्तवत्सलता बताई, पांडवों के महान् गुणों का वर्णन किया। विदुरजी ने भी अक्रूरजी की बातों का समर्थन किया। इस प्रकार सब प्रकारसे अपनी बहिनको धैर्य बँधाकर वे मथुरा को लौटने लगे। चलते समय उन्होंने सोचा—"लाओ, धृतराष्ट्र को भी सचेत करते चलें। यदि वह स्थिर हो जाय, वह अपने दुष्ट पुत्रोंकी बातोंका समर्थन करना छोड़ दे तो कुन्ती और पांडवोंको इतना क्लेश न हो।" यही सब सोचकर वे सभा में बैठे धृतराष्ट्र के समीप गये।"

छप्पय

विदुर सहित अक्रूर पृथाकूँ धीर बँधायौ।
सुतनि प्रभाव सुनाइ समयको फेर बतायौ॥
यों बहु बिधि समुझाइ चले मथुरा सुफलक-सुत।
अन्ध अम्बिका-तनय निकट पहुँचे सनेहयुत॥
जाइ धरमयुत बचन बर, सब सचिवनि सम्मुख कहे।
कठिन बचन हितकर समुझि, अन्धराजने सब कहे॥

अक्रूरजी और धृतराष्ट्र

(१०७७)

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदम्,
सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-
संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥*
(श्री भा० १० स्क० ४९ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

निरभय हैं अक्रूर अन्धकूँ डाँट बताई।
पांडु भूमिपति रहे तुम्हारे छोटे भाई॥
तिनिके पुत्रनि संग करैं तव तनय लड़ाई।
कौरव पाण्डव द्वेष बढ़ै नहिं होहि भलाई॥
परपीडा है पापको, आपु घड़ा नित नित भरो।
तुमहु मोहवश सुतनिको, देहु साथ अधरम करो॥

मनुष्य पापको समझकर भी मोहवश पुनः पुनः पापमें प्रवृत्त होता है। हम जानते हैं, यह काम अच्छा नहीं है। इसके

---

* धृतराष्ट्र भगवान्‌की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"जो भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति-माया के द्वारा इस दृश्य जगत् को उत्पन्न करके इसमें अनुप्रविष्ट हो जाते हैं और कर्म तथा कर्मफलों का पृथक्-पृथक् विभाग कर देते हैं, उन लीलाधारीकी अगम्य लीला ही इस संसार चक्रगति का प्रधान कारण है। उन परमेश्वर के लिये नमस्कार॥"

करनेसे लोकमें निन्दा और परलोकमें नरककी यातनायें सहनी पड़ेगी, किन्तु जिनमें अपनापन हो जाता है, जिनमें चित्त फँस जाता है, उन्हें प्रसन्न करने को मोहवश हम अनुचित समझते हुए भी उन कामों को करते हैं। यही भगवान् की माया है। यही उन लीलाधारी की लीला है, यही उन क्रीड़ाप्रिय कृष्णकी क्रीड़ा है। मोह में पड़कर प्राणी अपने कर्तव्य को भूल जाता है। चढ़ी हुई कीर्ति को नष्ट कर देता है, चिरकाल के संचित तपको खो देता है हाथ कुछ लगता नहीं। इस मोह नाशका भगवान्के शरण जानेके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं। भगवान् ही कृपा करें और हमारी इस मोहशृंखला को काटें तभी कल्याण हो सकता है, नहीं तो यह भगवान्की मोहिनी माया बड़ी दुस्तर है। इसमें फँसा प्राणी उनकी कृपाके बिना छूट नहीं सकता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अक्रूरजीने भाँतिभाँतिसे कुन्ती जी को समझाया। उन्हें धैर्य बँधाया। तब वे सबसे विदा लेकर मथुरा को चले। चलते समय अंधे धृतराष्ट्रसे मिलकर सब सत्य सत्य बात कह दें, यही सोचकर वे धृतराष्ट्रके समीप गये। उस समय अंधे राजा अपने मंत्रियोंसे घिरे हुए राजसभा में बैठे थे। उनके दुर्योधनादि पुत्र भी समीप में ही बैठे थे। अक्रूरजी के आने पर उनका आदर किया और राजाने उन्हे अपने समीप ही बिठा लिया। इधर उधरकी शिष्टाचार सम्बन्धी बातें होने के अनन्तर अक्रूरजी ने कहा—"राजन्, अब मुझे हस्तिनापुर में रहते हुए बहुत दिन हो गये, अब मैं मथुरा जाना चाहता हूँ।"

धृतराष्ट्रने स्नेहवश कहा—"अक्रूरजी ! आप कुछ दिन और निवास करें। आपके रहने से हमें बड़ा सुख मिलता है। आप बड़े धर्मात्मा हैं, आप की बातें नीतिधर्मयुक्त और हितकर होती हैं।"

अक्रूरजी ने कहा—"नहीं, महाराज ! अब तो मुझे जाना ही चाहिये। भगवान् वासुदेव मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आपने बड़ी कृपाकी, मेरे प्रति बड़ा प्रेम प्रदर्शित किया। मैं आपकी कृपाका आभारी हूँ। चलते समय मैं आप से कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, यदि आप बुरा न मानें तो ?"

धृतराष्ट्रने अत्यन्त स्नेह से कहा—"अक्रूरजी ! बुरा मानने की कौनसी बात है। आपको जो कहना हो निर्भय होकर कहें।"

यह सुनकर अक्रूरजी बोले—"देखिये महाराज! आप कौरवकुलकी कीर्तिको बढ़ाने वाले हैं। आप धर्मके मर्मको जानने वाले हैं। यद्यपि आप महाराज विचित्रवीर्य के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्र हैं, बड़े होनेसे राज्यके अधिकारी आपही थे किन्तु अन्धे होनेके कारण आपको राज्य नहीं मिला। आपके छोटे भाई पांडु राजा हुए। दैव की विचित्र गतिसे आपके छोटे भाई भी अपने छोटे छोटे पाँच बच्चों को छोड़कर परलोकवासी हुए। नियमानुसार महाराज पाँडुके परलोकवासके अनन्तर उनके ज्येष्ट पुत्र युधिष्ठिर को राजा होना चाहिये था, किन्तु वे अभी छोटे हैं। इसोलिये आपको राज्य सिंहासन पर बिठा दिया गया।"

धृतराष्ट्र ने कहा—"अक्रूरजी ! मुझे राज्य की इच्छा तो है नहीं, यह तो मेरे सिर पड़ गया। पांडु जब तक था, वह राज्य करता ही था। जब वह परलोकवासी हो गया तो राजकाज देखने वाला कोई रहा नहीं। विदुरजी दासी पुत्र होनेसे सिहासनपर बैठ नहीं सकते। बच्चे सब छोटे हैं इसीलिये विवश होकर मुझे राजसिंहासन पर बैठना पड़ा, राजा बनना पड़ा।"

अक्रूरजी ने कहा—"यह तो आपको करना ही चाहिये। राज्यसिंहासन पर आपके अतिरिक्त और कोई बैठ ही नहीं

सकता, किन्तु राज्यसिंहासन पर बैठकर उसके अनुसार कार्य कीजिये। धर्मका आचरण कीजिके, अधर्मको प्रश्रय न दीजिए। आप अपने सुन्दर स्वभावसे प्रजाका पालन कीजिये। प्रजा का रंजन करनेसे ही भूपतिकी राजा संज्ञा होती है। अतः आप प्रजाओंकी भावनाका सम्मान कीजिये। राजा प्रजासे पष्ठांश कर ही लेकर अपने कर्तव्यसे पृथक् नहीं हो जाता। उसे उनकी इच्छाओंका भी आदर करना पड़ता है। उसके पाप पुण्यमें भी वह भागीदार हो जाता है। आप अपने स्वजनोंके साथ धर्मका व्यवहार करें उनमें विषमता न देखें।"

धृतराष्ट्रने कहा—"अक्रूरजो! पांडुके मरनेके पश्चात् अब पांडवोंका मैं ही पिता हूँ। जैसे मेरे ये सौ पुत्र हैं वैसे ही ये पाँचों भी हैं।"

अक्रूरजीने कहा—"नहीं, महाराज! आप ऐसा नहीं करते। आपके मनमें भेदभाव है। आप कौरवों और पांडवोंमें विषम बर्ताव करते हैं। यह न्यायके, धर्मके, नीति और सदाचारके विरुद्ध है। आपका तो कर्तव्य है कौरव और पांडवोंका पालन समान भावसे करें। आपके पुत्र जो उनके साथ अन्यायका व्यवहार करते हैं, उन्हें दंड दें। ऐसे करनेसे आपका कल्याण होगा, संसार में आपका यश व्याप्त हो जायगा और इसके विपरीत आचरण करनेपर लोकमें निन्दा होगी और मरनेपर नरकमें जाना पड़ेगा। मनुष्य चाहे धर्मसे धन उपार्जन करे या अधर्मसे सब यहाँका यहीं रह जाता है, कोई उसे साथ बाँधकर नहीं ले जाता। जिन स्त्री, पुत्र, परिवारवालोंके लिये पाप किये जाते हैं वे सब भी अन्तमें बिछुड़ जाते हैं। औरोंकी तो बात ही क्या यह शरीर भी यहीं रह जाता है। पंचभूतोंमें पंचभूत मिल जाते हैं। मनुष्य अकेलाही मुट्ठी बाँधकर जन्मता है और अकेला ही हाथ पसार कर मर जाता है। जिन स्त्री, पुत्रों और प्रेमियोंके लिये पापकर

करके धन कमाता है, अधर्म अन्याय करता है, मरते समय वे इसका साथ नहीं देते। इसे अपने सुकृत दुष्कृतोंका अकेले ही फल भोगना पड़ता है।"

धृतराष्ट्रने कहा—"अक्रूरजी! मैं अन्धा हूँ। मेरे पुत्रने अपने आप राज्यपर अधिकार जमा लिया है। मैं क्या करूँ ?"

अक्रूरजीने कहा—"राजन्! अपने आप नहीं जमा लिया है। पुत्र अपने पिताकी वस्तुपर अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है। मत्स्यके पुत्र पौत्र उसके रहनेके स्थान जलको अपना समझ कर उसपर अधिकार करलेते हैं। आप सोचें संसारमें अपना कौन है। धर्मही अपना बन्धु है। जो धर्ममें रत है वह चाहें हमारा शत्रुही क्योंन हो, बन्धु है, पूज्य और माननीय है। इसके विरुद्ध जो अधर्ममें निरत है वह चाहें हमारा सगा पुत्रही क्यों न हो उसे उसी प्रकार निकालकर फेंकदेना चाहिये जैसे बुद्धिमान दूधमेंसे मक्खी को निकालकर फेंक देते हैं। आपतो बुद्धिमान हैं वृद्धसेवी हैं। आप इस दृश्य जगत्को स्वप्न माया और मनोराज्यवत समझकर अपने चित्तका स्वयंही संयम कीजिये। आप कौरव और पांडवोंमें जो विषम बर्ताव करते हैं उसे छोड़कर समदर्शी हो जायँ। राजन्! अधर्म कितना भी छिपकर एकान्तमें क्यों न किया जाय वह कभी न कभी अवश्यही प्रकट होजाता है। औरों पर प्रकट न भी तो-अपनी अन्तरात्मा ही टोंचती रहतीहै। चित्त सदा अशान्त और उद्विग्न बना रहता है। सदा भय बना रहता है। कोई हमारे पाप को देख न ले, कोई हमारी चेष्टासे हमारे मनोगत भावोंको जान न लें। राजन् अपने मनके चोरको निकाल दीजिये। आप स्वयं शान्त हो जायँगे। आपकी उद्विग्नता दूर हो जायगी।"

यह सुनकर अधीर होकर गद्गद वाणीसे धृतराष्ट्रने कहा—"हे दानपते! यदुनन्दन! आपका कथन यथार्थ है। आपके उपदेश बड़े ही सुन्दर हैं, प्रिय हैं, हितकर हैं और धर्मयुक्त हैं। आपके

कथनकी शैली बड़ी मधुर है। आपके मुखारविन्दसे इन अमूल्य कल्याणकारी वचनोंको सुनते-सुनते मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। चित्त चाहता है सदा तुम्हारे इन वचनोंको सुनताही रहूँ, तुम मेरे कर्ण कुहरोंमें अपना मधुर वचनामृत निरन्तर उड़ेलतेही रहो। मैं तुम्हारे उपदेशोंसे प्रभावित हूँ।"

अक्रूरजीने कहा—"राजन्! प्रभावित होनेसे ही काम थोड़ेही चलेगा। आप इन उपदेशोंके अनुसार कार्य कीजिये।"

धृतराष्ट्र बोले—"क्या करूँ अक्रूरजी! सब जान बूझकर भी मोहवश मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। दिनभर सोचता हूँ मैं पॉडवोंके साथ अन्याय न करूँगा, किन्तु जब मेरा पुत्र मेरे सामने आ जाता है, तो पुत्र प्रेमके कारण मेरा चित्त ऐसा विषम और चंचल हो जाता है कि फिर शास्त्रोंके सुखकारी वचन, आपकी यह सुन्दर शिक्षा इसी प्रकार हृदयमें नहीं टिकती जैसे चिकने घड़ेपर जलकी एक बूँद भी नहीं ठहरती। जैसे चंचला चपला विद्युत् चमककर फिर छिप जाती है वैसेही ये धर्मकी बातें आती हैं और फिर मोहके कारण छिप जाती हैं। जिस कामको नहीं करना चाहता उसे आसक्तिवश मुझे करना पड़ता है। हे दानपते! मेरा मन मेरे वशमें नहीं रहा। मैं एकतो ऊपरसे ही अंधा हूँ। फिर पुत्रके दुस्त्यज अनुरागने मुझे भीतरसे भी अंधा बना लिया है।"

अक्रूरजीने कहा—"राजन्! आप इतने विवेकी बुद्धिमान् होकर ऐसा धर्म विरुद्ध आचरण करतेही क्यों हैं?"

दुखित होकर धृतराष्ट्र ने कहा—"दानपते! मैं नहीं चाहता ऐसा करूँ, किन्तु मैं ऐसा करनेको विवश हो जाता हूँ। ये कोई पूर्वजन्मके संस्कार हैं जो अब उदय हो रहे हैं। कालरूप भगवान् मुझसे जो कराना चाहेंगे, अवश्य करावेंगे। जो उन्होंने विधान बना रखा है, वह अवश्य होकर रहेगा। कौन

चाहता हूँ लोग मेरे ऊपर उँगली उठावें, मेरे कार्यों में सन्देह करें। संसारमें मेरी अपकीर्ति हो। न चाहनेपर भी भाग्यवश हो ही जाती है। ईश्वरके विधानको बदल देनेको भवितव्यताको पलट देनेकी किसमें सामर्थ्य है? मैं उन भगवान्को जानता हूँ, ऐसा नहीं कि मैं सर्वथा मूर्ख ही हूँ। वे ही भगवान् भू का भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं; वे आजकल देवकी वसुदेवजीके पुत्र कहलाकर मथुरामें निवास कर रहे हैं। करने करानेवाले सब वे ही हैं। उन्हें जो करना होगा, उसे वे अवश्य करेंगे। उनका अवतार ही भू का भार उतारनेके लिये हुआ है। अतः मैं तो उन्हीं सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वगत, सत्यसंकल्प अच्युत, अविनाशी तथा अगम्यलीला वाले अनादि निधन भगवान् वासुदेवके पादपद्मोंमें प्रणाम करता हूँ। वे ही मुझे सद्बुद्धि प्रदान करेंगे, वे ही मेरा कल्याण करेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इसके आगे अक्रूरजी और कहही क्या सकते थे। यही अंतिम उत्तर है। विवशताकी पराकाष्ठा है। आस्तिक प्राणी जब अपने समस्त प्रयत्नोंमें असफल हो जाता है, तो अन्तमें उसे यही कहना पड़ता है। यह सुनकर अक्रूरजी सबसे मिल भेटकर अपने सभी कुरुवंशीय सुहृद् सम्बान्धियोंसे विदा होकर मथुरामें पहुँचे। वहाँ उन्होंने जाकर हस्तिनापुरमें जो जो देखा था, सबको विस्तृत सूचनायें दीं। पांडवोंके साथ धृतराष्ट्र किस प्रकार विषम व्यवहार करते हैं, कुन्ती किस प्रकार दुखी हो रही हैं, दुर्योधन किस प्रकार पांडवोंके नाशकी बातें सोचता रहता है, ये सभी बातें व्योरेवार अक्रूरजीने रामकृष्ण तथा सभी यादवोंको सुनाईं। अक्रूरजीकी बातें सुन कर भगवान्ने भू भार उतारनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। उन्होंने सोचा—"इन राजाओंको अपनी अपनी विपुल सेनाका ही गर्व है, पहिले सैनिकशक्तिको ही नष्ट करें। फिर कालयवन,

सन्ध, दुर्योधन तथा अन्यान्य दुष्ट राजाओंको जो पूर्वजन्मके तो असुर हैं, किन्तु पृथिवीपर मनुष्य रूपमें उत्पन्न होकर शक्तिशाली राजा बन गये हैं, इन सबका नाश किया जाय। जब सब दुष्ट राजा मारे जायँगे, तभी भू का भार हलका होगा। तभी संसारमें सुख शान्तिकी स्थापना होगी। जब तक ये शक्तिशाली दुष्ट विचार के राजा बने रहेंगे तब तक शान्ति स्थापित होना असंभव है। यही सोचकर वे असुर संहार करनेका विचार करने लगे। भगवानका सङ्कल्प होते ही दीपककी ज्योतिमें पतंगे अपने आप आकर प्राण गँवाने लगते हैं वैसेही दुष्ट राजा आने लगे। उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

भये दुखित धृतराष्ट्र कहें—हे दानपते ! सुनि ।
करता कारन काल कृष्णकूँ कहें सकल मुनि ॥
नाचूँ ह्वैके अवश नाच जो श्याम नचावें ।
अधरम अथवा धरम करूँ सब वे करवावें ॥
अन्ध-ज्ञान अक्रूर सुनि, मथुरा लौटे सब कही ।
हरन भार भू हरि गदा, असुर-विनासिनि कर गही ॥

आगे की कथा सैंतालीसवें खण्ड में पढ़िये ।